# अनुक्रमणिका




दूसरा संस्करण
१९४५





गोडल्स प्रेस,
नई दिल्ली

# प्राक्कथन

हिंदी भाषा में अनेकानेक उपन्यास हिंदू-समाज की त्रुटियों के सुधार का लक्ष्य रखकर लिखे गये हैं। दो-चार ऐसे भी हैं जो भारतवर्ष की आर्थिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हैं। लेखक की यह उत्कट इच्छा थी कि देश की राजनीतिक अवस्था को आधार बनाकर कुछ कहानियां लिखी जायें। इस इच्छा की पूर्ति में यह तुच्छ प्रयास किया गया है।

सामाजिक सुधार परमावश्यक होते हुए भी सामयिक आवश्यकताओं में राजनीतिक सुधारों से दूसरे दर्जे पर हैं। देश की परिस्थिति अति विकट है। यह भारतवासियों की उत्तरोत्तर अवनति में कारण बन रही है। इस परिस्थिति के सुधार करने में कई संस्थायें और कई व्यक्ति, अपनी २ मति के अनुसार, संलग्न हैं। ये सब, अपने २ पथ के पथिक, एक ही लक्ष्य स्थान पर पहुंचना चाहते हैं। इनमें से कुछ पथिकों का दिग्दर्शन कराना इस पुस्तक का ध्येय है।

सन् १६२१ के असहयोग-आंदोलन के असफल होने पर देश में स्थान २ पर हिंसात्मक क्रांतिकारी दल बन गये थे। सन् १६३० के सत्याग्रह-आंदोलन और क्रांतिकारी दलों से प्रतिपादित हिंसात्मक प्रवृत्ति में संघर्ष चल पड़ा था। इसी संघर्ष-काल की यह कथा है। हिंसात्मक उपाय और अहिंसात्मक उपायों पर निष्पक्ष रहकर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि दोनों पक्षों को अपने यथार्थ रूप में प्रकट किया जाय।

पाठकों को यदि कोई बात विवादास्पद प्रतीत हो तो लेखक यह

आशा करता है कि वे स्वयं विचार कर उसका निर्णय करेंगे। विचार-प्रोत्साहक साहित्य का स्थान बहुत ऊंचा है। लेखक का आशय इसी तक पहुँचने का था और इस कार्य में उसे कितनी सफलता मिली है इसका नाप-तोल तो पाठकों के पास ही है।

इस पुस्तक को पढ़ते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह एक उपन्यास है। इतिहास की पुस्तक नहीं। ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख कहानी का वातावरण बनाने के लिये है। पात्रों के नाम, स्थानों के नाम और घटनाओं की तिथियां सब की सब कल्पित हैं। इनका वास्तविक बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यदि कहीं कोई नाम अथवा स्थान ऐसा आगया है जो यथार्थ में उपस्थित है तो यह समझ लेना चाहिये कि उस व्यक्ति-विशेष अथवा स्थान से यह कहानी कोई सम्बन्ध नहीं रखती।

इस पुस्तक की भाषा के संशोधन में तथा कई स्थानों पर विषय प्रस्तुत करने में श्रीयुत रामप्रताप जी गोंडल एम० ए०, साहित्य-रत्न से विशेष सहायता मिली है। लेखक उनका इन और अन्य अनेकों सहायताओं के लिये अत्यन्त आभारी है।

गुरुदत्त

# पहला भाग

# कलक्टर की हत्या

टन'''टन'''टन'''टन''''''। मन्दिर का घण्टा बज रहा था।

देवता की आरती समाप्त हो चुकी थी। लोग चरणामृत पानकर अपना २ रास्ता पकड़ रहे थे। किम श्रद्धा, भक्ति, नम्रता और उत्साह से लोग आगे बढ़कर, दोनों हाथ जोड़, मस्तक नवा देवता को नमस्कार करते और हाथ की अंजुली बना चरणामृत के लिये पसारते थे। पुजारी नंगे सिर, बड़ी चोटी को गाठ दिये, केवल राम नाम छपी ओढ़नी ओढ़े, देवता के चरणों में चौकी पर बैठा अरघे से चरणामृत बांट रहा था।

पुजारी जब चरणामृत देता था तो आंखें नीची किये रखता था। उसकी दृष्टि अधिक से अधिक लोगों के हाथों पर जाती थी। धीरे-धीरे सब लोग चले गये। पुजारी यद्यपि लोगों को देख नहीं रहा था, पर अनुभव कर रहा था कि उसका काम समाप्त हो रहा है। अकस्मात उसकी दृष्टि एक स्त्री के हाथों पर पड़ी। ये हाथ चरणामृत पाने के लिये आगे बढ़े थे। इन हाथों को देखते ही पुजारी के हाथ कांपने लगे। अरघा चरणामृत सहित उसके हाथ से याचक के हाथों में गिर गया। पुजारी ने अरघे को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाया, परन्तु वे हाथ पीछे खिसक गये थे। पुजारी ने हाथ और आगे बढ़ाया। स्त्री के हाथ पुजारी की पहुँच से दूर हो चुके थे। पुजारी ने आंख उठाकर स्त्री की ओर देखना चाहा परन्तु स्त्री घूम गयी थी। अब उसकी पीठ पुजारी की ओर थी। वह चरणामृत पी रही थी। उसने चरणामृत पी लिया और अरघे को अपनी साड़ी के अंचल में छिपा लिया। इसके बाद वह बिना पीछे को देखे मन्दिर के बाहर निकल गयी। पुजारी हाथ फैलाये, अवाक मुख, मन्दिर से जाती हुई स्त्री की पीठ देखता रह गया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अरघा मांगना चाहता है परन्तु मुख से शब्द नहीं निकलता।

जब स्त्री आंखों से ओझल हो गयी तो पुजारी की बुद्धि ठिकाने

आई। उसे अपने हाथ फैलाने पर लज्जा प्रतीत हुई। उसने तुरन्त हाथ समेट लिये और मन्दिर में चारों ओर देखकर शान्त मन से कहा, 'ओह! चलो किसी ने देखा तो नहीं।'

[ २ ]

मन्दिर नगर के एक मोहल्ले में था। राय साहब सेट कुँजविहारी लाल ने अपनी वृद्धा माता के आग्रह पर श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर बनवा कर नगर के एक प्रसिद्ध कथावाचक पं० श्यामाचरण को पुजारी नियत कर दिया था। यह पं० श्यामाचरण अपने अकेले पुत्र मधुसूदन के साथ मन्दिर के पिछवाड़े वाले घर में रहता था। यह एक पुराने विचार का ब्राह्मण था। संसार की प्रगति से सर्वथा पृथक, सागर में द्वीप की भांति, अपने विचारों पर दृढ़, संसार-सागर की तरङ्गों की अवहेलना करता हुआ, अपने में लीन था। मधुसूदन पिता का लाड़ला पुत्र था। उसकी मां का देहान्त उसी समय हो गया था जब उसने इस संसार की वायु में पहला सांस खैंचा था। तब से पिता बालक का लालन-पालन माता से भी अधिक स्नेह से करता था। उसने बहुत कठिनाई से उसे पालकर बड़ा किया था परन्तु इस परिश्रम में भी वह मां के भाग का प्रेम, स्नेह, और वात्सल्य भूला नहीं था। मधुसूदन को यह कभी अनुभव नहीं हुआ कि वह मातृ-विहीन है। उसके लिये श्यामाचरण माता, पिता और मित्र सब कुछ था।

मधुसूदन अति निर्मल बुद्धि का था। संस्कृत में शास्त्री, अंग्रेजी में बी० ए०, हिन्दी में साहित्यरत्न, गायन विद्या में आचार्य, चित्रकला में निपुण, तात्पर्य यह है कि अनेक गुण सम्पन्न था। चौबीस वर्ष की आयु में इन सब बातों में उच्च कोटि की योग्यता प्राप्त करना कुछ सुगम बात नहीं थी। यह उसकी प्रतिभा-विशेष का ही परिणाम था कि एक छोटे से मन्दिर के पुजारी का लड़का होकर भी वह इतना योग्य बन सका।

मधुसूदन की शिक्षा का भार राय साहब ही उठा रहे थे। राय साह मधुसूदन की प्रतिभा को समझ गये थे। जब वह अभी बालक ही था त

से ही मधुसूदन ने उनके मन पर अपनी विशेषता की छाप लगा दी थी। वह आरम्भ से ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर रहे थे।

राय साहब की अपनी कोई सन्तान भी नहीं थी। निःसन्तान मनुष्य प्रायः तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली वगैरह पालने में बहुत उत्साह दिखाते हैं परन्तु राय साहब को यह पसन्द नहीं था। वह मधुसूदन के ही पालन और शिक्षा में अपने मन के अवकाश को भरने का यत्न करते थे।

श्यामाचरण जानता था कि राय साहब उसके पुत्र पर विशेष कृपा-दृष्टि रखते हैं, परन्तु इस कृपा की सीमा कितनी लम्बी-चौड़ी है वह अनुमान नहीं लगा सकता था। इस सीमा के जानने का उसने कभी यत्न भी नहीं किया।

मधुसूदन अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने पर भी प्राचीन सभ्यता का कट्टर अनुयायी था। यह उसके संस्कृत साहित्य के पढ़ने और भारतवर्ष की विभूति, प्राचीन सभ्यता, को एक पुजारी की ऐनक में देखने के कारण ही नहीं था, प्रत्युत युरोपीय सभ्यता को भारतीय न्याय और सांख्य के कांटे पर तोलने के कारण भी था। उसने शेक्सपीयर, कीट और शैले पढ़े थे परन्तु जब इनकी तुलना वह कालिदास और भवभूति से तथा व्यास और पातञ्जलि से करता था तो उन्हें समुद्र के किनारे पर केवल कंकर बटोरते हुए पाता था।

कुछ दिन से पुजारी को ज्वर आरहा था। वह स्वयं ठाकुर जी की पूजा करने मन्दिर में नहीं आसका था। मन्दिर का काम आजकल मधुसूदन को करना होता था। प्रातःकाल चार बजे उठना, मन्दिर को धो-पोंछकर साफ करना, स्नान इत्यादि कर, तिलक छाप लगा, छः बजे पूजा पर आ बैठना होता था। इस समय लोगों का आना आरम्भ हो जाता था।

जब से मधुसूदन ने मन्दिर का काम आरम्भ किया था पूजा तथा देव-दर्शन करने वालों की संख्या बढ़ रही थी। मधुसूदन ऊंचे, मीठे, संगीत भरे स्वर से पूजा के मन्त्र तथा श्लोक पढ़ता था। उसकी वाणी में माधुर्य, रस और प्रभाव था, मुख पर पूर्ण यौवन का तेज था, आंखों में

ब्रह्मचर्य की मस्ती थी। देखने तथा सुनने वालों के हृदय गद्गद् हो जाते थे। देवमूर्ति से सजीव मूर्ति कहीं अधिक आकर्षण का केन्द्र बन रही थी। पूजा करने वालों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं अधिक होती थी, परन्तु मधुसूदन की आंखें देवमूर्ति के चरणों पर गड़ी रहती थीं और उसे पता नहीं रहता था कि मन्दिर में कौन आया है और कौन नहीं आया।

उक्त घटना का दिन पूर्णिमा का दिन था। सत्यनारायण की कथा सुबह से ही आरम्भ होकर बारह बजे तक चलती रही और मन्दिर में विशेष समारोह था। इसका कारण भी मधुसूदन था। पुजारी की बीमारी के कारण कथा भी उसे ही करनी थी। सदा से भिन्न, कथा में सरलता, मधुरता और रोचकता अधिक थी। दृष्टांत पर दृष्टांत दिये जा रहे थे। उक्तियों की भरमार थी। बीच में एक-दो भजन भी होगये थे। यद्यपि कथा सदा से लम्बी हो गयी थी परन्तु किसी का जी नहीं उकताया, न ही कोई घबराया। समय से पूर्व कोई उठकर नहीं गया। सब मूर्तिमान बने मुग्ध मन से कथा की नवीन विवेचना सुनते रहे। भाषा की सरलता ने कथा के आशय को साधारण अपढ़ स्त्रियों पर भी स्पष्ट कर दिया था। पलक की झलक में समय व्यतीत हो गया।

[ ३ ]

जब अरघा लेकर वह स्त्री चली गयी तो किसी से न देखे जाने पर भगवान का धन्यवाद करता हुआ मधुसूदन आसन से उठा। वह मन्दिर का किवाड़ बन्दकर घर पहुँचा। पिता की लगभग स्वस्थ अवस्था देखकर बोला, "पिताजी ! आपका ज्वर गये तो कई दिन हुए, अब आपको मन्दिर का काम संभालना चाहिये।"

श्यामाचरण कुछ खिन्न मन से बोला, "क्या इतने में ही घबरा गये। आज पहली बार कथा तुमने की है, और जानते हो लोग क्या कहते हैं ?"

मधुसूदन—"क्या कहते हैं ?"

श्यामाचरण—"अभी गोपाल आया था। कहता था तुम तो मनुष्य रूप में साक्षात् भगवान प्रतीत होते हो। बेटा ! तुम जैसा योग्य पुत्र पाकर

मेरा मन फूला नहीं समाता।"

मधुसूदन—"परन्तु पिताजी! आपके बैठे मैं पुजारी के आसन पर बैठना नहीं चाहता।"

आज मधुसूदन का मन भोजन में नहीं था। पिता ने एक-दो बार कुछ पूछा तो उसका उत्तर भी वह ठीक नहीं दे सका। भोजनोपरान्त बाजार जाने के लिये तैयार होगया। इस पर फिर पिता ने कुछ पूछा परन्तु उसने टालमटोल कर दिया।

बाजार में सब से पहला काम अरथा खरीदना था। पश्चात् वह सीधा राय साहब कुंजबिहारी के मकान पर जा पहुँचा। राय साहब घर पर नहीं थे। नौकर जानता था कि राय साहब मधुसूदन को बहुत मानते हैं। अतएव वहां पहुँचते ही राय साहब के नौकर ने बड़े आदर से उसे बैठाया। वह उनसे मिलने ही निकला था, अस्तु बैठक में डटकर जम गया।

मधुसूदन राय साहब के घर दोपहर के दो बजे पहुँचा था। राय साहब की प्रतीक्षा करते २ सायंकाल के छः बज गये, परन्तु वह नहीं आये। ज्यों २ समय व्यतीत होता जाता था उसका निश्चय राय साहब से मिलने का और भी पक्का होता जाता था। नौकर ने एक-दो बार आकर पूछा भी, 'पण्डित जी, जल पीजियेगा?'; 'पण्डित जी, बहुत आवश्यक काम है क्या?'; 'राय साहब एक घण्टे तक आने के लिये कह गये थे' इत्यादि।

मधुसूदन ने 'हां' 'नहीं' 'ओह' के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा।

नौकर बाजार में कुछ लेने चला गया। बैठक में अंधेरा हो चला था परन्तु मधुसूदन को इसका ज्ञान नहीं था। वह अपने विचार में मग्न था।

अकस्मात किसी ने बैठक की बिजली जला दी। इस प्रकार प्रकाश हो जाने से मधुसूदन चौंक उठा। उसे समय का ज्ञात हो आया। जब उसने दृष्टि उठाई तो बिजली के बटन के पास एक स्त्री को खड़ी देख घबरा गया। स्त्री के मुख से ऐसा जान पड़ता था कि वह वहां किसी की उपस्थिति से अनभिज्ञ थी। प्रकाश होने पर मधुसूदन को एक कुर्सी पर विचार-मग्न बैठा देख चौंक पड़ी। विस्मय से बोली, "आप........",

परन्तु शीघ्र ही अपने आपको काबू में कर बोली, "हां! कब आये?"

इतने में मधुसूदन ने भी स्त्री को पहचान लिया था। वह अपने आपको संभालकर बोला, "राय साहब से मिलने आया था। परन्तु तुम.........क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा?"

स्त्री—"नहीं! यह स्वप्न नहीं है। आप ठीक ही देख रहे हैं। आपका विस्मित होना भी ठीक ही है। कल की देश-भक्तिनी, जाति-अभिमान से परिपूर्ण, देश-द्रोहियों से घृणा करने वाली पूर्णिमा आज अमावस्या होगई है। राय साहब देश-द्रोही हैं न? और मुझे यहां नहीं होना चाहिये था। यही या कुछ और?"

मधुसूदन बात काटकर बोल उठा, "पूर्णिमा! पूर्णिमा! नहीं! यह नहीं। मेरे अचम्भे का कारण तो यह था कि तुम्हारा राय साहब से कैसा सम्बन्ध है जो मुझे ज्ञात नहीं। राय साहब मेरे पुराने हितचिन्तकों में से हैं। मैं इनके प्रायः सब सम्बन्धियों को जानता हूँ। यह जानते हुए भी कि तुम इस नगर में हो, तुम्हारे यहां मिलने की आशा नहीं थी।"

"क्यों आशा नहीं थी?"

"तुम्हारा इनसे परिचय है, नहीं जानता था।"

"परिचय लेकर तो कोई पैदा होता नहीं। यह पैदा करने से ही होता है। बताइये आप यहां किस की प्रतीक्षा कर रहे हैं?"

"राय साहब की।"

"वह आज नहीं मिलेंगे। आपको मालूम नहीं कि आज कलक्टर के यहां दावत और नाच है, और राय साहब उसी का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

मधुसूदन—"ओह! ज्ञात तो था किन्तु अनुमान था कि राय साहब एक बार दावत से पहले अवश्य घर आयेंगे। तो उनसे मिलने के लिये यहां ठहरना व्यर्थ है? अच्छा! चलता हूँ। नमस्ते।"

इतना कह मधुसूदन उठ खड़ा हुआ, परन्तु पूर्णिमा की आंखों की चमक और होठों की मुस्कराहट से यह जानकर कि उसके मन में कुछ है जानने के विचार से ठहर गया। पूर्णिमा हँस पड़ी और बोली, "क्या

अपना अरघा नहीं मांगियेगा ?"

"बाजार से नया ले आया हूँ। मुझे क्या ज्ञात था कि तुम यहां विराज रही हो। व्यर्थ में छः आने गये।"

"बहुत शोक है। परन्तु बतलाओ कि देवता के सम्मुख पसारे हाथों में अगर कुछ मिल जाय तो क्या वह छोड़ देना चाहिये ?"

"नहीं! परन्तु तुम तो देवता को मानती नहीं। आज मन्दिर में कैसे पहुँच गयी थीं ?"

इस पर पूर्णिमा ने लम्बी सांस लेकर कहा, "पत्थर के देवताओं के पुजारी भला सजीव देवताओं को क्या जानें ?"

मधुसूदन की आंखों में विशेष चमक पैदा हो गई थी। उसका मुख लाल हो गया था और होंठ फड़कने लगे थे।

इस समय घड़ी ने सात बजाये। पूर्णिमा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा, "अब जाने का समय हो गया है। फिर दर्शन करूंगी।"

[४]

मधुसूदन वहां से चला तो सीधा कलक्टर के बङ्गले पर पहुँचा।

बङ्गले के अहाते में शामियाना लगा था। बिजली के प्रकाश से सब बङ्गला जगमगा रहा था। झंडियों और फूलों के हारों की भरमार थी। शामियाने के नीचे चारों ओर कौच व कुर्सियां पंक्तियों में लगी हुई थीं। बीच में दरी बिछी थी। दरी पर सफेद चादर और चादर के बीचोबीच एक बड़ा मखमली कालीन बिछा था। कालीन के एक कोने में तबलची और सारंगी बजाने वाले अपने अपने वाद्यों को सुर-ताल में ला रहे थे। दर्शक एक दूसरे शामियाने में से खाना खा खाकर यहां आकर बैठते जाते थे। पान, सुपारी, इलायची और सिगरेट के दौर चल रहे थे। कई राय साहब, खान बहादुर, रईस, सेठ और नगर के आम प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। सब प्रबन्ध राय साहब कुंजबिहारी का था। राय साहब स्वयं एक महमान से पूछ रहे थे, 'क्यों साहब! आप क्या लीजियेगा ? खाना खाया है या नहीं ? चाय आए या लैमनेड ? पान नहीं खाइयेगा ?

सिगरेट लीजिये' इत्यादि। प्रत्येक के आराम और मनोरंजन का सामान था। लोग भी तकल्लुफ़ से कहते थे, 'राय साहब, शुकरिया!'

किसी ने पूछा, "राय साहब! क्या देरी है? आठ तो बज रहे हैं।"

राय साहब ने बहुत शिष्टाचार के साथ जवाब दिया, "बस सब तैयार है। साहब बहादुर के आने की देरी है।"

राय साहब को इतनी महनत और उत्साह से काम करते देखकर लोग भांति भांति की बातें करते थे—'अब के यह राय बहादुर बनकर रहेंगे।' कोई दूसरा कहता, 'मेरे विचार में तो 'नाइट' की पदवी मिलेगी।' एक बीच ही में बोल उठा, 'अजी खिताब की कौन परवाह करता है। यहां तो साहब की बदौलत लाखों के ठेके मिलते हैं। आखिर घर-बार, शान-शौकत और राग-रंग सब साहब की कृपा से ही तो हैं।'

कलक्टर साहब काश्मीरी ब्राह्मण थे। वह कई वर्ष से. इस नगर में नियुक्त थे। प्रति वर्ष शरद-पूर्णिमा को अपने इष्ट मित्रों को दावत दिया करते थे। इस वर्ष इस दावत के साथ मदारी के खेल और एक बनारस की नाचने वाली का प्रबन्ध भी था। इसी से दावत में जमाव कुछ अधिक था। लगभग चार-पांच सौ महमानों को निमन्त्रण दिया गया था, और उपस्थिति कुछ अधिक ही थी।

ऐसे समय मधुसूदन वहां जा पहुँचा। वह बंगले के फाटक पर रोक दिया गया। चपरासी ने कार्ड मांगा।

"भाई, मैं तो दावत में नहीं आया। मुझे तो राय साहब कुंजबिहारी जी से कुछ निजी काम है," मधुसूदन ने कहा।

चपरासी ने सूखा जवाब दिया, "हम नहीं जानते कौन राय साहब कुंजबिहारी। यहां तो बिना पास के भीतर नहीं जा सकते।"

चपरासी एक मुसलमान, लम्बी दाढ़ी रखे, सरकारी वर्दी पहने, छः फुट का लम्बा जवान था। गवर्नर व कलक्टरों के चपरासी बद दिमाग़ तो होते ही हैं। इसके अतिरिक्त इस समय सैकड़ों महमानों के आने-जाने, मोटरों और तांगों की भरमार ने तो उसको पागल सा बना रखा था।

वह डपटकर बोला, "एक तरफ हट जाओ। नहीं, मोटर के नीचे दबकर मर जाओगे।"

मधुसूदन फाटक से एक तरफ हटकर खड़ा हो गया। वह सोच रहा था कि किस प्रकार राय साहब से भेंट हो। इतने में सर से एक मोटर फाटक के पास आकर खड़ी हो गयी। यों तो मोटर, तांगे बहुत आ जा रहे थे, परन्तु इस मोटर में विशेषता यह थी कि वह राय साहब कुँजबिहारी की थी। यही कारण था कि मधुसूदन का ध्यान इस मोटर गाड़ी की ओर विशेष रूप से गया। मधुसूदन के अचम्भे का ठिकाना न रहा जब उसने मोटर से पूर्णिमा को निकलते देखा। वह नाचने वाली की पोशाक पहने हुई थी। पूर्णिमा ने फाटक के पास मधुसूदन को खड़े और हैरान होते देख लिया था। वह मुस्कराकर फाटक में जाकर खड़ी हो गयी। चपरासी ने बिना पास देखे रास्ता छोड़ दिया, परन्तु वह वहीं खड़ी कुछ सोचती रही। पश्चात् उसने चपरासी को कुछ धीरे से कहा। चपरासी बहुत फुर्ती से मधुसूदन के पास आकर बोला, "आपको बाई जी बुलाती हैं।"

इस प्रकार बुलाये जाने पर मधुसूदन, जो गम्भीर विचार में डूब गया था, चौंक उठा और बोला, "कौन बाई?"

चपरासी ने पूर्णिमा की ओर संकेत कर कहा, "वही! मालती बाई! देखिये वह आपको बुला रही हैं।"

पूर्णिमा मधुसूदन को आने के लिये हाथ से संकेत कर रही थी। मधुसूदन मन में बड़बड़ाता हुआ 'मालती बाई, मालती बाई' फाटक के समीप पहुंचा और प्रश्न भरी दृष्टि से पूर्णिमा की ओर देखने लगा।

पूर्णिमा ने बहुत ही मीठी मुस्कराहट में होठों को गोल करते हुए बड़े आदर से कहा, "आप खड़े क्यों हैं? आइये न भीतर!"

मधुसूदन ने चपरासी का मुख देखते हुए कहा, "मेरे पास भीतर जाने के लिये परवाना नहीं है।"

पूर्णिमा ने गम्भीर भाव धारण कर दरबान से कहा, "इनको आने दो। इनका कार्ड मेरे पास है।"

चपरासी मधुसूदन का मार्ग छोड़कर एक तरफ खड़ा हो गया, ताकि वह भीतर जा सके। परन्तु मधुसूदन अपने स्थान से नहीं हिला। बोला, "नहीं मुझे भीतर जाने की आवश्यकता नहीं। आप जाइये। आपकी भीतर प्रतीक्षा हो रही होगी।"

पूर्णिमा के मस्तक पर एक क्षण के लिये बल दिखाई दिया। तुरन्त ही वह मिट गया और उसके मुख पर फिर मुस्कराहट दिखाई देने लगी। वह यह कहकर 'जैसे आपकी इच्छा' भीतर चली गयी। मधुसूदन के मुख से फिर एक बार निकल गया, 'मालती बाई' और वह अचम्भे में भीतर जाती हुई पूर्णिमा को देखता रह गया। चपरासी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए आसमान की ओर देखकर एक निःश्वास खैंचा और कहा, 'वाह री किस्मत।'

अब मधुसूदन ने वहां खड़ा रहना व्यर्थ समझ घर की ओर मुख किया। मार्ग में वह पूर्णिमा को इस नये रूप में देख इसका अर्थ सोचता रहा। कभी कभी उसके मन में पश्चाताप होता था कि वह सुविधा होने पर भी भीतर क्यों नहीं गया और अपना काम राय साहब से क्यों नहीं कर आया। फिर वह सोचता था कि उसने ठीक ही किया है। पूर्णिमा के वहां पहुँच जाने से उसे अपने काम की महत्ता कम प्रतीत होने लगी थी और वह पूर्णिमा के इस वेष, काम और रङ्ग-ढङ्ग के विरोध में अपने भाव प्रकट करने का और कोई उपाय भी नहीं पाता था। उसने पूर्णिमा की सिफारिश को ठुकराकर उसे बता दिया था कि वह उसे कितना छोटा समझता है।

घर पहुँच वह बिना खाये-पिये खाट पर जाकर लेट गया। पिता के पूछने पर उसने कह दिया, 'तबियत खराब है।'

[ ५ ]

श्यामाचरण आज मन्दिर में जाने को तैयार था, परन्तु पुत्र को भी तैयार देख स्वयं नहीं गया। यद्यपि मधुसूदन ने कल कह दिया था कि वह पुजारी का आसन ग्रहण करना नहीं चाहता इस पर भी आज वह

मन्दिर में जा पहुँचा और पूजा का सामान सजाने लगा।

आज पूजा में वह ठाठ नहीं जमा। पुजारी की कातर आंखें उपासकों में से किसी को ढूंड निकालने के लिये भाग-दौड़ कर रहीं थीं। पूजा समाप्त हुई। चरणामृत बांटा गया। लोग अपने २ घर लौट गये। मधुसूदन निराश, देवता को प्रणाम कर, चौकी से उठा और मन्दिर बन्द करने लगा। वह उपासकों के बैठने के लिये बिछी हुई चटाइयों को समेट रहा था कि जिसकी खोज थी वह दरवाज़े में आ खड़ी हुई। पूर्णिमा बहुत ही साधारण पोशाक में थी। रात के ठाठ में और अब के पहरावे में दिन-रात का अन्तर था। माथे पर बिंदी और सिंदूर भी था। एक हाथ पट्टी से गले में लटक रहा था। दूसरे हाथ में फूलों का दोना था। मुख पर भी कुछ पीलापन था।

मधुसूदन पूर्णिमा की यह अवस्था देख प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

पूर्णिमा ने दरवाज़े में खड़े २ ही पूछा, "आज पूजा शीघ्र ही समाप्त कर दी क्या?"

"कल तो सत्यनारायण का व्रत था और कथा हुई थी। आज साधारण पूजा ही थी। परन्तु यह तुम्हारे हाथ को क्या हुआ है?"

पूर्णिमा ने अपने पट्टी में लटके हांथ को देखकर कहा, "यह? ओह! कुछ नहीं। राय साहब के घर जाइयेगा तो पता चल जायगा। क्या अब देवता की पूजा नहीं हो सकती?"

"क्यों नहीं?"

पूर्णिमा ने लक्ष्मीनारायण की मूर्ति की ओर देखा। पश्चात् मधुसूदन के मुख की ओर देख, उसके सम्मुख घुटनों के बल हो, फूलों के दोने को उसके पावों के समीप रख दिया।

मधुसूदन घबराकर बोल उठा, "अरे! अरे!! यह क्या कर रही हो?" यह कहते हुए वह दो कदम पीछे हट गया।

पूर्णिमा ने जहां मधुसूदन के पांव थे वहां की मिट्टी को उठा माथे पर

चढ़ा लिया। वह उठ खड़ी हुई और सिर झुका प्रणामकर वापिस लौट गयी।

मधुसूदन कुछ काल तक तो विस्मय और घबराहट में पूर्णिमा और फूलों की ओर देखता रहा। जब वह चली गयी तो फूलों को फ़र्श पर से उठा, देवता की मूर्ति के सम्मुख रख, हाथ जोड़, आंखें मूंद कुछ काल तक खड़ा रहा। पश्चात अपने सिर को मूर्ति के चरणों में रख दिया।

इस प्रकार चित्त को शान्तकर, मन्दिर को बन्दकर, वह घर को चला गया।

श्यामाचरण आज पूजा के लिये तैयार हुआ था, परन्तु मधुसूदन के चले जाने पर पुनः खाट पर बैठ गया। पहले तो वह रुग्ण होने से देरी से उठा करता था और मधुसूदन के पूजा पर से लौट आने पर दवाई इत्यादि लिया करता था, परन्तु आज वह स्नान इत्यादि कर प्रातः काल ही तैयार था। कुछ देर बैठे रहने के पश्चात उसने उठकर दवाई खाई। इस पर भी समय पहाड़ प्रतीत होने लगा। चित्त को लगाने के लिये रामायण पढ़ने लगा। अभी भी मधुसूदन के आने का समय नहीं हुआ। रामायण से जी उकता जाने पर उसे बन्दकर कमरे में इधर उधर टहलने लगा। जब इस प्रकार भी समय व्यतीत होता प्रतीत नहीं हुआ तो वह मन्दिर की ओर चल पड़ा। उसकी इच्छा हुई कि पुत्र को पूजा पर बैठा देखकर गोपाल के कथन की सत्यता की परीक्षा करे। क्या सत्य ही मधुसूदन साक्षात भगवान का अवतार प्रतीत होता है ?

घर से मन्दिर में जाने का एक मार्ग था जो मन्दिर के मुख्य दरवाज़े के सम्मुख पहुँचता था। श्यामाचरण जब मन्दिर में पहुँचा तो मधुसूदन मुख्य दरवाजे की ओर मुख किये खड़ा था। उसकी पीठ घर से आने वाले मार्ग की ओर थी। श्यामाचरण ठिठककर रह गया। उसने देखा कि एक लड़की घुटनों के बल बैठ मधुसूदन के पांवों के आगे फूल-पत्र चढ़ा रही है। उसके पश्चात जो कुछ भी हुआ उसने देखा। पूर्व इसके कि मधुसूदन देवता के चरणों से सिर उठाये श्यामाचरण घर को लौट

आया। मधुसूदन ने पिता को नहीं देखा।

वह जब घर पहुँचा तो श्यामाचरण ने पुत्र को समीप बुलाकर बैठा लिया और बहुत स्नेह भरे शब्दों में पूछा, "बेटा! वह लड़की, जो तुम्हारे चरणों पर फूल चढ़ा रही थी, कौन थी?"

मधुसूदन कुछ घबराया अवश्य। उसे यह ज्ञान नहीं था कि पिता ने घटना का कितना अंश देखा है। आज तक बाप-बेटे में कोई भेद-भाव नहीं था। जब से पुत्र ने होश संभाला पिता ने उससे मित्र की भांति व्यवहार किया था। पुत्र भी, माता के अभाव में, अपनी सब छोटी-बड़ी समस्यायें लेकर पिता के पास पहुँचा करता था और पिता उसकी समस्याओं को सुलझाने में यथा शक्ति उसकी सहायता करता रहता था।

आज यह पहली बात थी जिसके बताने में मधुसूदन झेंप गया। पिता ने पुत्र को चुप देख उसको मन की बात बताने में सहायता देने के विचार से कहा, "बैठे २ मेरे मन में आया कि गोपाल भैया के कहने की सत्यता की परीक्षा करूं। तुम्हें पूजा करते देखने की इच्छा से मन्दिर में गया तो देखा कि वह तुम्हारे पांवों पर फूल चढ़ा रही थी। तुम्हारे चरण-रज को माथे पर चढ़ाकर वह चुपचाप चली गयी। क्या तुम्हें मालूम है कि वह कौन थी, बेटा?"

मधुसूदन ने प्रश्न का उत्तर उतना ही दिया जितना आवश्यक था। वह बोला, "हां पिता जी! वह नरोत्तम की पगली बहिन पूर्णिमा थी।"

"नरोत्तम? वही बनारस वाला?"

"जी"

"बेटा! वह पगली नहीं है। मैंने उसकी आंखों को देखा था। वह पागल की आंखें नहीं थीं। परन्तु तुम तो कहते थे वह नास्तिक है।"

"जी। वह देवी-देवताओं को पत्थर की मूर्ति समझती है। उनकी पूजा से कुछ लाभ नहीं समझती। इसी कारण सजीव की पूजा करने लगती है।"

श्यामाचरण हँस पड़ा और बोला, "मेरा बेटा कितना भोला है।"

चढ़ा लिया। वह उठ खड़ी हुई और सिर झुका प्रणामकर वापिस लौट गयी।

मधुसूदन कुछ काल तक तो विस्मय और घबराहट में पूर्णिमा और फूलों की ओर देखता रहा। जब वह चली गयी तो फूलों को फर्श पर से उठा, देवता की मूर्ति के सम्मुख रख, हाथ जोड़, आंखें मूंद कुछ काल तक खड़ा रहा। पश्चात अपने सिर को मूर्ति के चरणों में रख दिया।

इस प्रकार चित्त को शान्तकर, मन्दिर को बन्दकर, वह घर को चला गया।

श्यामाचरण आज पूजा के लिये तैयार हुआ था, परन्तु मधुसूदन के चले जाने पर पुनः खाट पर बैठ गया। पहले तो वह रुग्ण होने से देरी से उठा करता था और मधुसूदन के पूजा पर से लौट आने पर दवाई इत्यादि लिया करता था, परन्तु आज वह स्नान इत्यादि कर प्रातः काल ही तैयार था। कुछ देर बैठे रहने के पश्चात उसने उठकर दवाई खाई। इस पर भी समय पहाड़ प्रतीत होने लगा। चित्त को लगाने के लिये रामायण पढ़ने लगा। अभी भी मधुसूदन के आने का समय नहीं हुआ। रामायण से जी उकता जाने पर उसे बन्दकर कमरे में इधर उधर टहलने लगा। जब इस प्रकार भी समय व्यतीत होता प्रतीत नहीं हुआ तो वह मन्दिर की ओर चल पड़ा। उसकी इच्छा हुई कि पुत्र को पूजा पर बैठा देखकर गोपाल के कथन की सत्यता की परीक्षा करे। क्या सत्य ही मधुसूदन साक्षात भगवान का अवतार प्रतीत होता है ?

घर से मन्दिर में जाने का एक मार्ग था जो मन्दिर के मुख्य दरवाज़े के सम्मुख पहुँचता था। श्यामाचरण जब मन्दिर में पहुँचा तो मधुसूदन मुख्य दरवाजे की ओर मुख किये खड़ा था। उसकी पीठ घर से आने वाले मार्ग की ओर थी। श्यामाचरण ठिठककर रह गया। उसने देखा कि एक लड़की घुटनों के बल बैठ मधुसूदन के पांवों के आगे फूल-पत्र चढ़ा रही है। उसके पश्चात जो कुछ भी हुआ उसने देखा। पूर्व इसके कि मधुसूदन देवता के चरणों से सिर उठाये श्यामाचरण घर को लौट

"परन्तु यह हुआ कैसे ?"

इस प्रश्न पर सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। यथार्थ बात यह कि कोई आंख देखी बात तो जानता नहीं था, एक दूसरे से सुन कर बातें बताते थे। ऐसी बातों से सन्तोष न होने के कारण मधुसूदन से निकल मकान के भीतर चला गया। दरवाजे पर पुलिस ने पहले , परन्तु बताने पर कि वह घर का आदमी है भीतर जाने दिया।

राय साहब बैठक में एक पलङ्ग पर लेटे थे। उनके मुख, सिर, हाथों टांगों पर पट्टियां बंधी थीं। पलङ्ग के एक तरफ डाक्टर हाथ में स्कोप लिये कुर्सी पर बैठा था और दूसरी तरफ एक मैजिस्ट्रेट कागज, म और दवात लिये बयान लिख रहा था। मैजिस्ट्रेट के पास एक इन्सपैक्टर पुलिस तथा दो सफेद-पोश, जो खुफिया-पुलिस के अफ- प्रतीत होते थे, बैठे थे। पूर्णिमा कुछ दूर कुर्सी पर बैठी किसी ीर विचार में मग्न प्रतीत होती थी। समीप ही राय साहब की बहिन कौच पर बैठी थी।

मधुसूदन को भीतर आते देख राय साहब ने उसे एक ओर बैठ जाने लये आंख से संकेत किया।

मैजिस्ट्रेट ने पूछा, "हां ! तो राय साहब ! फिर क्या हुआ ?"

"जब बड़े साहब कुर्सी पर बैठ गये तो और लोग भी अपने अपने न पर डट गये और सब से पहले फज़लू मदारी के खेल आरम्भ हुए। खेल लगभग पौन घण्टे तक होते रहे। तब नाच का प्रोग्राम था। यह ाती बाई मञ्च पर आई, और एक गाना, प्रर्थना का, गाने के बाद इन्होंने खड़े होकर नाचना आरम्भ किया। जब फ्लेश लाइट पर फेंकी गयी तो बिजली फेल होगई। ऐसा प्रतीत हुआ कि फ्यूज़ या है। बिजली बुझे एक सैकण्ड भी नहीं हुआ था कि धम से कुछ हुआ। उस समय मैं साहब की कुर्सी के पीछे खड़ा था। साहब से मालती देवी का परिचय ले रहे थे। यह धमाका साहब की कुर्सी ो-तीन कदम आगे हुआ। वहां पर आग की एक लपट, जैसी बारूद

जलने के समय उठती है, दिखाई दी। साहब एकदम कुर्सी से उठे। यह नहीं कह सकता कि वह बिजली बुझ जाने से घबराकर उठे थे, या कोई और बात थी। न ही मैं यह बता सकता हूँ कि धमाका होने से पहले उठे थे या पीछे। सब बातें इतनी जल्दी २ हुईं कि मैं यह नहीं बता सकता कि पहले क्या हुआ और पीछे क्या। इसके बाद, मुझे यह ज्ञात है कि, साहब मेरे उपर लुढ़क पड़े और मैं उनके बोझ से अथवा किसी और कारण से भूमि पर गिर पड़ा। साहब मेरे ऊपर थे। अभी मुझे होश था। गिरने के पश्चात् तुरन्त ही मैंने तीन धमाकों के शब्द और सुने। मुझे भी चोटें आईं और मैं बेहोश होगया।

"मुझे जब होश आया तो मैं इस कमरे में था। मैं और कुछ नहीं जानता।"

यह सब कुछ लिख लेने के पश्चात् एक सफेद-पोश पुलिस-अफसर ने पूछा, "खां साहब रहमानअली खां कहां बैठे थे?"

"वह घटना के समय साहब के बिल्कुल साथ दाहिनी ओर बैठे थे।"

"दावत के कार्ड किसने बांटे थे?"

"यों तो यह काम साहब के पी० ए० के हाथ में था परन्तु नगर के रईस अपने महमानों के लिये भी कार्ड मांग लाये थे।"

"आपने कितने कार्ड लिये थे?"

"मैंने? कोई नहीं। मुझे एक कार्ड डाक द्वारा आया था और यथार्थ में मैं जाने के समय वह भी नहीं लेगया। वह कार्ड मेरी लिखने की मेज पर होना चाहिये।"

"राय साहब! धन्यवाद। आपको अब अधिक कष्ट देना नहीं चाहते। हां! केवल एक बात रह गई है। यह मालती देवी आपको कहां मिली थीं?"

"लगभग दो मास हुए मैं बनारस गया था। वहां एक मित्र के घर मैंने इनका नाच और गाना देखा। मुझे बहुत पसन्द आया। उस समय मैंने इनका पता नोट कर लिया था। अब साहब के यहां दावत

का प्रबन्ध करते समय मैंने इनको यहां बुला लिया।"

मैजिस्ट्रेट के सम्मुख राय साहब के बयान लेने में जल्दी इस कारण की गयी थी कि उनकी अवस्था कुछ अच्छी नहीं समझी जाती थी और डाक्टर उनके बचने में सन्देह करते थे। ज्योंही उन्हें होश आया पुलिस ने मैजिस्ट्रेट बुलाकर बयान कलम-बन्द कर लिये।

पश्चात सब लोग उठकर बाहर चले गये। राय साहब के पास केवल डाक्टर, पूर्णिमा, राय साहब की बहिन और मधुसूदन रह गये। अब ये लोग राय साहब के पलँग के समीप कुर्सियां ले आये। भीतर से राय साहब की स्त्री भी चली आईं।

डाक्टर ने घायल की फिर परीक्षा आरम्भ की। देखभाल कर बोला, "आपको एक इंजेक्शन ले लेना चाहिये।" मधुसूदन ने भी राय साहब की नाड़ी-परीक्षा की और डाक्टर साहब से कहा, "इसकी विशेष आवश्यकता तो है नहीं। नाड़ी ठीक चलती है। कुछ खुराक देनी चाहिये।"

राय साहब की भी इच्छा थी कि कुछ खाने को मिले। डाक्टर की इच्छा न रहने पर भी दूध और शिलाजीत दे दी गयी। यथार्थ में राय साहब की चोटें तो साधारण सी थीं केवल उनके दिल को धक्का बहुत लगा था। साथ ही रात को पार्टी के प्रबन्ध में उन्हें बहुत कम खाने का अवसर मिला था। दूध पीने से उनके चित्त को बहुत शान्ति मिली और हृदय की गति जो मन्द हो रही थी ठीक होगयी।

डाक्टर साहब, कुछ देर में फिर आने के लिये कहकर, चले गये। राय साहब की अवस्था कुछ ठीक हुई तो वह पूर्णिमा की ओर घूमकर बोले, "मालती देवी! आपको भी चोट आई है क्या?"

"हां! जब बिजली बुझी तो मैं जहां थी वहीं खड़ी होगयी। मेरा भी विचार यही था कि फ्यूज़ हो गया है। पहले धमाके के समय ही मेरे हाथ पर एक कंकर आकर लगा। धमाका होते समय ही मैं समझ गई थी कि क्या हो गया है। मैं कूदकर मेज पर, जिस पर मदारी का

[ ७ ]

बैठक की बगल में एक छोटा सा कमरा था। यहां पूर्णिमा ठहरी हुई थी। मधुसूदन और पूर्णिमा बैठक से निकले तो उसमें पहुंच गये। पूर्णिमा एक कुर्सी पर, जो ड्रेसिंग टेबल के सम्मुख रखी थी, बैठ गई और आईने में अपना मुख देखने लगी। मधुसूदन कुर्सी के पीछे खड़ा होकर आईने में पूर्णिमा का मुख देखने लगा। कुछ काल तक दोनों चुप रहे। दोनों के मन में कहने के लिये बातें भरी थीं परन्तु कोई आरम्भ करना नहीं चाहता था। आखिर मधुसूदन ने कहना आरम्भ कर ही दिया, "तुम यहां क्यों आई थीं?"

"बताया तो है कला की उपासना करती हूं। जहां उसके प्रियजन हैं वहां मैं जाती हूँ।"

"तो यह बम चलवाना कला है?"

पूर्णिमा चौंक पड़ी। घूमकर देखने लगी, परन्तु मधुसूदन वैसे ही आईने में, जिसमें अब पूर्णिमा की पीठ दिखाई दे रही थी, देखता रहा। पूर्णिमा ने उद्वेग में कहा, "यह झूठ है।"

मधुसूदन ने वैसे ही गम्भीर भाव स्थिर रखते हुए कहा, "मैं तुम्हें पुलिस के हवाले नहीं करूंगा। तुम जानती हो मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं मित्र हूँ, यद्यपि आतङ्कवाद को गलत समझता हूं।"

पूर्णिमा ने घबराये हुए स्वर से फिर कहा, "परन्तु मैं कहती हूं यह सत्य नहीं है। इसका कोई प्रमाण नहीं है।"

मधुसूदन मुस्कराने लगा। उसने आईने पर से अपनी दृष्टि हटाकर पूर्णिमा के मुख पर गाड़ दी। वह कहने लगा, "पिछले मास, जब मैं बनारस में था, नरोत्तम भैया की बैठक में मैंने दस-बारह लोग ऐसे देखे थे जिनके हाथ में ऐसी अंगूठी थी जैसी तुम्हारे हाथ में है। जब बहुत से लोग एक जैसा कोई विशेष चिन्ह लगाते या बनाते हैं तो संगठन की उपस्थिति को सिद्ध करते हैं।"

"परन्तु यह संगठन आतंकवादियों का है यह तुम कैसे कहते हो?

यह परिणाम तुम्हारे मन की कल्पनामात्र है।"

"मैं कहता ही नहीं प्रत्युत जानता भी हूं। इसका प्रमाण भी रखता हूं। इस पर भी मैं तुम्हें या तुम में से किसी को फँसाने नहीं जाऊँगा। मैं मानता हूँ ये हत्याएँ तुम लोगों ने भूल से की हैं। तुम्हारी भूल से मैं, कम से कम, कुछ लोगों को बचाना चाहता था। इसी कारण कल राय साहब से मिलने का प्रयत्न करता रहा था। तुम जानती हो मिलने में मैं सफल नहीं हो सका। जो होना था उसे मैं रोक नहीं सका।"

पूर्णिमा का मुख पीला पड़ गया। उसके होंठ जो नीले पड़ गये थे कांप रहे थे। मधुसूदन ने अपना कहना जारी रखा :—

"एक रात मैं बहुत थका हुआ था। नरोत्तम भैया से मिलने गया। वह बैठक में नहीं थे। मैं उनकी प्रतीक्षा में एक कोने में बैठ गया। सरदी कुछ अधिक थी, चादर जो ओढ़कर बैठा तो नींद आगयी। मुझे नहीं मालूम कब तक सोया रहा। धीरे धीरे मुझे चैतन्य होने लगा। इसके साथ ही कानों में किसी के बातें करने की भनभनाहट आने लगी। कोई कह रहा था, 'इलाहाबाद के कलक्टर ने तो अन्धेर मचा रखा है। उसे सबक सिखाना चाहिये। अगली पूर्णिमा को उसके यहां नाच और दावत होगी। बस दवाई की पांच खुराकें उसके लिये भेजनी चाहियें। नाच के समय ही ठीक रहेगा।'

"इसके उत्तर में नरोत्तम की आवाज़ थी, 'परन्तु भीड़ में तो अपराधी और निरपराधी में भेदभाव नहीं हो सकता।'

"वही आवाज़ फिर बोल उठी, 'अपराधी के जलसों में सम्मिलित होने वाले निरपराधी नहीं होते। सब लोग कलक्टर के अन्याय से तङ्ग हैं फिर भी उसके निमन्त्रण पर सैकड़ों वहां जायेंगे। वे लोग कोई धर्म-कार्य करने नहीं जायेंगे। न ही नाच-कला को वे समझते होंगे। वे तो साहब की खुशामद करने के लिये वहां पहुँचेंगे।'

"इतने में नरोत्तम ने शायद मुझे देख लिया था। मैंने अपना मुख चादर से छिपा रखा था। वह बोला, 'कौन हो जी तुम?' उसकी आवाज़

में घबराहट के चिन्ह थे।

"मैंने जो कुछ सुना उसे न सुना हुआ प्रकट करना चाहता था। इस कारण उठा नहीं। चादर में मुँह लपेटे पड़ा रहा। इस पर नरोत्तम के साथी ने खैंचकर चादर मेरे मुख से उतार दी। अब जागने के अतिरिक्त और कोई उपाय न देख आखें मलता हुआ उनकी ओर देखने लगा। नरोत्तम ने मुझे पहचान कर कहा, 'ओह! यह तो मधुसूदन दादा हैं।' फिर मुझसे कहने लगे, 'दादा कब आये? तुमने तो हमें डरा ही दिया था। हम समझे थे कोई चोर है।'

"मैंने बात टालने के लिये कह दिया, 'चोर चोरी करने जाकर सोया नहीं करते, भैया!'

"मेरे इस प्रकार जवाब देने से वे निश्चिन्त हो इधर-उधर की बातों में लग गये।

"जब से मैं बनारस से आया हूँ पिता जी बीमार थे। मुझे राय साहब से मिलने का अवसर ही नहीं मिला। मैं जानता था कि पूर्णमासी को कलक्टर साहब के दावत है परन्तु पिता जी की बीमारी के कारण सब भूल गया। कल जब तुमने चरणामृत के लिये हाथ बढ़ाया तो मैंने यह अंगूठी पहचान ली। विद्युत की भांति मेरे मन में वे सब बातें दौड़ गयीं। पांच खुराकें। अपराधी निरपराधी। सब के लिये एक ही औषधि की बात याद आते ही मैं घबरा गया था और अरघा मेरे हाथ से नीचे गिर गया। पहले मैंने तुम्हें नहीं पहचाना, केवल हाथ में अंगूठी देखी; परन्तु जब अरघा ले जाने वाले की पीठ देखी तो जान गया कि तुम हो। परन्तु इसका तो मुझे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि तुम राय साहब के घर ठहरी होगी और जलसे में तुम्हारा ही नाच होगा। जब मैंने देखा कि तुम जलसे में नाचने जा रही हो तो मैंने विचार किया कि नरोत्तम अपनी बहिन के जीवन को कभी खतरे में न डालेगा। मैंने सोचा कि शायद इसमें कोई 'एक्शन' नहीं होगा। परन्तु अब देखता हूँ यह मेरी भूल थी।"

"यदि कल भूल न करते तो क्या करते ?"

"मैं तुम्हें कदापि नाचने न देता।"

"ओह !"

"राय साहब को वहां से घसीटकर घर ले आता।"

"खूब ! और नरोत्तम भैया को।"

"नरोत्तम ! क्या वह भी वहां था ?"

पूर्णिमा हँस पड़ी। यद्यपि अब उसके मुख पर घबराहट नहीं थी और मुख से हँसी भी निकल आयी थी, इस पर भी उसका चित्त प्रसन्न नहीं था। वह ऐसा अनुभव करती थी कि मधुसूदन कुछ बातें आवश्यकता से अधिक जान गया है। यह तो वह निश्चय से कह सकती थी कि मधुसूदन उनका भेद नहीं खोलेगा। परन्तु बहुत सी बातें अनजाने हो जाती हैं, जिनका परिणाम बहुत भयङ्कर हो सकता है। जिस सहज भाव से मधुसूदन उसको बता रहा था कि वह कितना जानता है, यदि वह यही बातें राय साहब अथवा किसी और को बता दे तो क्या अनर्थ हो जायगा। यह विचार अब उसके मन को दुखित कर रहा था। वह मधुसूदन से आज खुलकर बातें करना चाहती थी। वह यह जानना चाहती थी कि उसे अथवा उसके दल के लोगों को उससे कितना सम्बन्ध रखना चाहिये। तुरन्त इस बात का निर्णय करने के लिये वह उस घर से कहीं बाहर चली जाना चाहती थी। उस स्थान पर उसे भय था। वहां बात करना सुरक्षित नहीं था। अतएव उसने मधुसूदन की आंखों में अपनी दृष्टि गाड़कर कहा, "मैं त्रिवेणी स्नान करने जाऊँगी।"

"अब ! इस समय ?"

"अभी तो ग्यारह बजे हैं और प्रयाग में आकर संगम-स्नान के बिना कैसे लौटूंगी।"

"परन्तु तुम्हें चोट जो लगी है। स्नान कैसे कर सकोगी ?"

"चोट तो साधारण सी है और आज अभी स्नान भी नहीं किया।"

पूर्णिमा ने सूटकेस से धोती निकाली और चलने को तैयार हो गयी।

मधुसूदन अभी वहीं खड़ा यह देख रहा था। पूर्णिमा को स्नान के लिये जाने को तैयार देख विस्मय से पूछने लगा, "परन्तु पूर्णिमा ! यह पूजा, मन्दिर, स्नान, ध्यान कब से सीखा है ? तुम तो कर्म-काण्ड के नाम पर गालियां दिया करती थीं।"

"बुद्धि से तो अब भी वैसा ही समझती हूं, केवल हृदय से मानने लगी हूं।"

मधुसूदन चुप रहा। पूर्णिमा ने खूँटी से तौलिया उतारते हुए कहा, "एक तांगा कर लीजिये।"

मधुसूदन तांगा किराये का कर लाया। पूर्णिमा उसमें बैठकर बोली, "आप आगे बैठ जाइये।"

"मैं ?"

"हां ! आपको साथ ले चलूंगी।"

"परन्तु मैं तो स्नान कर चुका हूं और मुझे त्रिवेणी-स्नान में कुछ महत्व भी प्रतीत नहीं होता।"

"सब बातें जो हम करते हैं, महत्वपूर्ण ही होती हैं क्या ? कभी-कभी साधारण सांसारिक बातें भी करनी पड़ती हैं। चलिये, बैठ जाइये।"

मधुसूदन तांगे में आगे कोचवान के समीप बैठ गया।

तांगा नदी तक नहीं जाता। वह बांध से इधर ही खड़ा हो जाता है। वहां से सङ्गम तक पहुंचने में पैदल आधा घण्टा लगता है। पूर्णिमा उतरकर चलने के लिये तैयार हो गयी। मधुसूदन अभी भी यह नहीं समझ सका था कि उसे साथ लाने में पूर्णिमा का अभिप्राय क्या केवल एक साथी के लाने के अतिरिक्त कुछ और भी था।

जब दोनों तांगे से कुछ दूर निकल गये तो पूर्णिमा ने कहना आरम्भ किया, "यद्यपि तीर्थ-स्नान में मैं कुछ विशेषता नहीं समझती परन्तु हमारे पूर्वजों ने तीर्थों को अति मनोरम स्थानों पर बनाकर मेरे जैसे नास्तिकों को भी यहां आने के लिये बाध्य कर दिया है।"

मधुसूदन ने धीरे से कहा, "यही तो ईश्वरभक्ति अर्थात् आस्तिकता है।"

"क्या आस्तिकता है ?"

"यही सुन्दर, मनोहर वस्तुओं तथा स्थानों को देखना और सौन्दर्य को अपने भीतर उत्पन्न करना।"

"क्या सुन्दर पदार्थों को देखने से अपने में सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है ?"

"निःसन्देह ! जिस बात का मन में चिन्तन किया जावे मनुष्य वैसा ही बनने लग जाता है। हां, यह सत्य है कि कई बातों के होने में बहुत समय लगता है। कुछ कार्य हैं जो एक दो दिन में पूरे हो जाते हैं। कुछ ऐसे कार्य हैं जिनको पूर्णतः करने के लिये वर्षों की आवश्यकता होती है और कई काम हैं जिनको करने के लिये कई जन्म लग जाते हैं।"

"इतना समय ?" पूर्णिमा ने हैरानी में पूछा, "इतनी प्रतीक्षा के लिये किसमें धैर्य है ?"

"साधारण सी बात के लिये, यथा अंग्रेजी भाषा सीखने के लिये, कई वर्ष लग जाते हैं; तो सुन्दर रूप, लावण्य अथवा सुन्दर हृदय प्राप्त करने के लिये अधीर होना क्यों कर ठीक हो सकता है। और आत्मा को सुन्दर बनाने के लिये तो कई जीवनों का समय होना ही चाहिये।"

"परन्तु इसका प्रमाण क्या है कि ऐसा हो सकेगा ? यदि मुझे इसका निश्चय हो जाय कि लक्ष्मीनारायन की सुन्दर मूर्ति के सम्मुख बैठे रहने से मैं सुन्दर हो जाऊंगी तो मैं जीवन-पर्यन्त उसकी उपासना करती रहूँगी।"

मधुसूदन ने पूर्णिमा के मुख की ओर देखकर कहा, "परन्तु तुम तो पहले ही वैसी सुन्दर हो। प्रतीत होता है पिछले जन्मों में तुम किसी अतीव सुन्दर मूर्ति की उपासना करती रही हो जिससे तुम्हें इस जन्म में इतना सुन्दर रूप मिला है।"

पूर्णिमा ने बात रोककर कहा, "छि ! संस्कृत पढ़ों को प्रशंसा करना बहुत आता है। इसी से तो पण्डित लोग प्रायः खुशामदी होते हैं।"

"क्या सत्य कहना भी खुशामद कहाता है ?"

"बस, बस, ऐसी बातें ठीक नहीं।"

"तो क्या एक भालू जैसे पुरुष के चरणों पर फूल चढ़ाना ठीक है?"

"भालू! कौन कहता है? और फिर तुम तो सजीव हो, गतिमान पत्थर नहीं।"

"शारीरिक सौन्दर्य में तो वह पत्थर की मूर्ति मुझसे अच्छी है।"

"होगी! परन्तु उसमें हृदय नहीं। उसमें विचार-शक्ति नहीं। वह किसी का भला नहीं कर सकती। वह ईश्वर तो हो तो हो पर सहाई नहीं हो सकती। दुःख में, सुख में वह निष्ठुर की भांति एक समान देखती रहती है। विपत्ति में जब हमें सहानुभूति और सहायता की आवश्यकता होती है तब वह अपने स्थान पर अकड़कर बैठी रहती है। वह निर्दयी है, कठोर है और हृदय-शून्य है।"

"इन बातों को प्राप्त करने के लिये तो ठाकुर जी की मूर्ति की उपासना पर्याप्त नहीं। ठाकुर की मूर्ति सुन्दर है। उसकी उपासना से बाह्य सौन्दर्य मिलता है। मन के तथा हृदय के सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिये अवतारों के जीवन की उपासना करो। अवतार सजीव थे। उनके चरित्र में जो सौंदर्य था वह उनकी उपासना से मिल सकता है। वह सौंदर्य भी ईश्वरीय शक्ति था। इसी कारण तो रामायण, गीता, तथा अन्य महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ना भी ईश्वर की भक्ति करना है। यह भी आस्तिकता है।"

"तब तो आस्तिकता बहुत सहज है। क्या शेक्सपीयर का पढ़ना भी ईश्वर-भक्ति है?"

"हां! इसमें किंचितमात्र भी सन्देह नहीं। सुन्दर बातों, सुन्दर भाषा और सुन्दर कृत्यों को पढ़ने से हम ईश्वर की उपासना करते हैं। सौन्दर्य ही परमात्मा है और परमात्मा ही सौन्दर्य है।"

"बहुत विचित्र है। आपकी विवेचना मौलिक है। ऐसी आस्तिकता तो मैं एकदम स्वीकार कर लूँगी।"

"स्वीकार क्या कर लोगी? सो तो तुम पहले ही हो। जब तुम सुन्दर, प्राकृतिक स्थानों और दृश्यों को देखकर आत्मा में आनन्द अनुभव

करती हो तो तुम नास्तिक कैसे हो सकती हो ? जब तुम महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़कर उनका अनुकरण करना चाहती हो तो तुम्हारा अपने आपको नास्तिक कहना भूल है। तुम आस्तिक हो और इसीलिये शरीर, मन, वचन और कर्म से सुन्दर हो।"

पूर्णिमा ने मुस्कराते हुए कहा, "बस ! बस ! फिर प्रशंसा आरम्भ हो गयी।"

इस समय वे नदियों के संगम-स्थान पर पहुँच गये थे। पूर्णिमा घाट पर पहुंच स्नान के लिये तैयार होने लगी। यहां नदी के बीच में लकड़ी के तख्त गाड़कर स्नान करने के लिये स्थान बने हुए हैं। स्त्रियों के लिये पृथक स्थान बने हैं और पुरुषों के लिये पृथक। पूर्णिमा मधुसूदन से अलग हो गयी।

जब पूर्णिमा स्नानकर बाहर आई तो मधुसूदन गङ्गा के किनारे रेत पर बैठा उसके निर्मल जल में न जाने क्या देख रहा था। वह विचार में इतना मग्न था कि उसे पूर्णिमा का आना ज्ञात नहीं हुआ। उसे चैतन्य तब हुआ जब वह खिलखिलाकर हँसती हुई उसके पास बैठ गयी। मधुसूदन ने अचम्भे से पूछा, "क्यों क्या हुआ ? हँसने क्यों लगी हो ?"

"आप किस ध्यान में मग्न थे। कई बार बुलाने पर भी आपको पता नहीं चला कि मैं आगयी हूँ।"

"ओह ! तुमने पुकारा था ? मुझे नहीं पता चला। मैं सोच रहा था कि, देखो, यह स्थान कितना सुन्दर है। जहां इस संसार में ऐसे सुन्दर स्थान हैं वहा पर भी लोग मन में इतना द्वेष और घृणा रखते हैं कि एक दूसरे को मार डालने पर तैयार हो जाते हैं।"

पूर्णिमा की हँसी बन्द हो गयी। वह गम्भीर हो गयी। यद्यपि वह यही बात करने के लिये मधुसूदन के साथ इतनी दूर आई थी, परन्तु जब वह बात समीप आगयी तो डर गयी। वह इस समय बोल नहीं सकी। मधुसूदन ने बहते गंगा-जल की ओर देखते हुए कहा, "हत्या करने से क्या और कैसे लाभ हो सकता है ? ईश्वर की बनाई सुन्दर सृष्टि में

सर्वोत्कृष्ट वस्तु मनुष्य का नाश करना किस प्रकार उचित हो सकता है ? मैं यही बात समझने में लीन था। एक ओर गंगा की यह पवित्र धारा और दूसरी ओर नर-रक्त-प्रवाह जो कल कुछ भूले-भटके भाइयों ने नगर में बहाया है। दोनों में कितना अन्तर है। देखो पूर्णिमा !" मधुसूदन ने गंगा की प्रशान्त धारा से अपनी दृष्टि उठाकर पूर्णिमा की आंखों पर, जिनमें पहले जल का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा था, डाल दी, "देखो पूर्णिमा ! तुम इन लोगों से अलग क्यों नहीं हो जाती ?"

"मैं ! आप मुझे ही ऐसा क्यों कहते हैं ? मैं तो मशीन का एक पुर्जा हूं। बिना सारी की सारी मशीन का सुधार किये मुझे अलग करने से क्या होगा ? मान लो मैं अलग हो जाऊं तो क्या इससे पार्टी टूट जायगी ? हत्याएँ तो होती ही रहेंगी।"

"यह ठीक है। परन्तु जब तुम इसमें विश्वास नहीं रखती तो फिर क्यों इसमें पड़ी हो ?"

"यह आपने कैसे जाना कि मैं इन बातों में विश्वास नहीं रखती ?"

"एक सहज उपाय से। जो सङ्गीत और नृत्यकला जैसी सुन्दर और ईश्वरीय विद्याओं में प्रवीण है, जो सुन्दर स्थानों, विचारों और कामों को देख आनन्द अनुभव करती है, वह नर-हत्या जैसी भयानक और कठोर बात को कैसे अच्छा समझ सकती है ?"

"परन्तु मैं तो इसे अच्छा समझती हूँ। यदि इस गङ्गा की निर्मल धारा में कोई मैला फेंकना आरम्भ कर दे तो क्या आप उसे मना न करेंगे ? मना करने पर न माने तो क्या उसे बलपूर्वक न रोकेंगे ?"

"जो इतनी स्वच्छ और पवित्र जल-धारा को अपवित्र करने आया है उसे यह समझा देना क्या पर्याप्त नहीं कि वह अनर्थ कर रहा है ? मनुष्य को तुम पशु मत मानो। मनुष्य में बुद्धि है, ऐसा विश्वास करो। इस विश्वास से यदि हम समझाने का यत्न करेंगे तो कौन मूर्ख से मूर्ख मनुष्य होगा जो न मानेगा।"

"आपकी बात तो केवल आपके हृदय की शुद्धता का परिचय देती

है। यह जन साधारण की मानसिक अवस्था की सूचक नहीं। देखिये अंग्रेज इस देश में राज्य करते हैं। उन्हें इस देश को अपने आधीन रखने में भारी आर्थिक व राजनैतिक लाभ हो रहा है। वे सदा इस यत्न में रहते हैं कि हम स्वतन्त्र न हो सकें। भला इनको समझाने से, कि उन्हें हमको परतन्त्र रखना उचित नहीं, कैसे वे मान सकते हैं। स्वार्थ उन्हें अन्धा किये हुए हैं। उनके अन्धेपन को दूर करने के लिये चीरे की आवश्यकता है। यह चीरा पीड़ायुक्त तो होगा ही परन्तु इसका परिणाम तीस करोड़ भारतवासियों की पीड़ा दूर करने वाला होगा।"

"जो बात खराब है उससे भला परिणाम कैसे निकल सकता है। यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है।"

अब पूर्णिमा ने मधुसूदन के मुख की ओर देखते हुए पूछा, "अच्छा तो आप यह बतायें कि कल की कार्यवाही को आप खराब समझते हैं?"

"हां! बिलकुल।"

"इस कार्यवाही करने वालों को आप पुलिस के हवाले करना ठीक समझते हैं या नहीं?"

"मैं उनको समझाना अधिक अच्छा समझूँगा।"

"यदि समझाने पर वे न मानें तो?"

अब मधुसूदन बहुत असमञ्जस में पड़ गया। उसका मन कहता था कि हत्यारों को पकड़वा देना ही उचित है, परन्तु नरोत्तम, पूर्णिमा, ये हत्यारे नहीं हो सकते। नरोत्तम ने मधुसूदन के साथ बी० ए० पास किया था। पीछे उसने इतिहास का विषय लेकर एम० ए० पास कर लिया। पूर्णिमा ने इन्टर तक कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी। पीछे संगीत में रुचि होने के कारण अपना सब समय इसी कला को सीखने में व्यय करने लगी। नरोत्तम के सब साथी पढ़े-लिखे, सुशील और सभ्य परिवारों से सम्बन्ध रखते थे। वे कैसे हत्यारे हो सकते हैं। यह ठीक है कि उन्होंने कई मनुष्यों की हत्या चन्द मिनटों के अन्दर कर डाली थी परन्तु फिर

भी पूर्णिमा को हत्या करने में रुचि है वह मान नहीं सकता था। वह काम उसकी बुद्धि में पाप था, परन्तु पूर्णिमा पापी है यह उसका मन मानने को तैयार नहीं होता था। वह कुछ उत्तर नहीं दे सका। चुपचाप पूर्णिमा का मुख देखता रहा।

पूर्णिमा यही बात जानने के लिये मधुसूदन को वहां ले गयी थी और वह इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट चाहती थी। इस कारण उसने प्रश्न को फिर दुहराया, "यदि नरोत्तम भैया और उसके साथी आपके समझाने पर भी अपनी इस लीला को न छोड़ें तब आप क्या करेंगे? देखिये यह आपको जान लेना चाहिये कि उनके मन में यह दृढ़ धारणा है कि वे ऐसा करने से देश-सेवा कर रहे हैं और आपकी युक्तियां उनको इस विचार से बदल नहीं सकतीं।"

दुबारा पूछने पर और पूर्णिमा को उत्सुकता से अपनी ओर देखते हुए पाकर मधुसूदन उत्तर देने पर बाध्य होगया। वह धीरे २ कहने लगा, "नरोत्तम को? नहीं! नरोत्तम को नहीं पकड़वा सकता।"

"नरोत्तम को क्यों नहीं और दूसरों को क्यों?"

"यह उपाय देश-सेवा का ठीक नहीं है, परन्तु नरोत्तम की बात दूसरी है।"

"कैसे दूसरी है?"

'कैसे?' इतना कह मधुसूदन अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और वापिस चलने के लिये तैयार होगया। पूर्णिमा भी उठ खड़ी हुई परन्तु वह बिना पूर्ण उत्तर पाये छोड़ने वाली नहीं थी। उसने मधुसूदन के साथ धीरे २ चलते हुए फिर पूछा, "जो बात पाप है वह नरोत्तम से की जाने पर क्यों बुरी नहीं है?"

"पूर्णिमा! जाने दो इस बात को। इसका उत्तर पाने से क्या लाभ होगा?"

"और हानि ही क्या है?"

"तो लो सुनो! नरोत्तम पूर्णिमा का भाई है और पूर्णिमा मेरे..."

इतना कहकर वह रुक गया।

पूर्णिमा के दिमाग़ में शरारत समाई हुई थी। वह बोली, "हां! हां! कह दीजिये न। रुक क्यों गये?"

"मैं कह रहा था जब अपना हाथ कोई खराब काम करे तो उसे काट नहीं दिया जाता। उसका तो सुधार ही करना उचित है।"

"ओह! तो आप मुझे अपना समझते हैं! धन्यवाद। परन्तु आपने अपने आपको तो बुद्धि-रूप मान लिया और मुझे केवल एक हाथ। इससे उलटा सत्य क्यों नहीं?"

"हां, उलटी बात भी हो सकती है परन्तु युक्ति वैसी ही है। यदि किसी के विचार उलटे हो जायें तो उसको ठीक मार्ग पर भी तो समझाने से ही लाया जा सकता है।"

पूर्णिमा वार्तालाप के इस अन्तिम भाग से सन्तोष अनुभव कर रही थी। वह यही चाहती थी और मधुसूदन ने उसे सांत्वना दी थी। अब उसने बात को पुनः घुमाव दिया और अकस्मात खड़ी होकर मधुसूदन की ओर देखकर पूछने लगी, "मैं एक बात आपसे पूछूं?"

"हां! पूछो।"

"आप एक बार हमारी पार्टी में शामिल होकर उसके आन्तरिक कार्यों और उपायों का अध्ययन क्यों नहीं करते?"

"इस अध्ययन का मैं लाभ नहीं समझता।"

"क्यों?"

"इस कारण कि मैं हिंसावाद में विश्वास नहीं रखता।"

"क्या आप देश के कभी स्वतन्त्र हो सकने में भी विश्वास रखते हैं?"

"कभी? क्यों नहीं। परन्तु अभी नहीं।"

"कब तक नहीं?"

"जब तक हम में चरित्र उत्पन्न नहीं हो जाता।"

"और चरित्र बनाने का उपाय?"

"प्राचीन आर्य संस्कृति का अवलम्बन।"

"तो क्या पृथ्वी भर के दूसरे स्वतन्त्र देश आर्य सभ्यता का अवलम्बन किये हुए हैं ?"

मधुसूदन ने बिना विचारे उत्तर दिया, "नहीं, और उनकी स्वतन्त्रता क्षणभंगुर है। उनकी सभ्यता का मरणकाल समीप है। जर्मन और रूस में काले-काले बादल उठ रहे हैं जो बहुत शीघ्र ही संसार भर में छा जाने वाले हैं। तदनन्तर अपने आपको स्वतन्त्र समझने वाले अपनी यथार्थ स्थिति समझ जायेंगे। वे लोग जो केवल इन्द्रियों के सुख को परम सुख मानते हैं, जो सांसारिक विभूति को परमोन्नति समझते हैं, जो दूसरों को ठग लेने को अपनी शिक्षा का ध्येय समझते हैं, जो बाहिरी सजावट को सौंदर्य मानते हैं, जो केवल मीठी बातें करने को शिष्टाचार समझते हैं और जो पांच वर्ष के पश्चात् उद्वेग में आकर वोट डालने को स्वतत्रता मानते हैं, वे भारी भूल में हैं। समय आरहा है जब उनको अपनी भूल का ज्ञान होने वाला है। शीघ्र ही उन कहे जाने वाले स्वतन्त्र देशों के लोग अपने आपको तोपों, बन्दूकों, टैंकों, हवाई जहाजों और अनेकानेक प्रकार के घातक यन्त्रों के आधीन सर्वथा पराधीन समझेंगे।"

पूर्णिमा मधुसूदन की इस भविष्यवाणी को सुन रही थी और गम्भीर विचार में मग्न थी। वह सोच रही थी कि जब भारतवर्ष में आर्यों का साम्राज्य था तब कहीं वर्णाश्रम के झगड़े थे और कहीं ईर्षा-द्वेष की अग्नि भड़क रही थी, कहीं ब्राह्मण श्राप देते फिरते थे तो कहीं क्षत्री बल-परीक्षा में देश-विदेश पर निष्प्रयोजन आक्रमण कर रहे थे। क्या यही सभ्यता है जिसकी प्रतीक्षा में मधुसूदन देशोद्धार के काम को स्थगित कर देना चाहता है ?

मधुसूदन की बात अभी समाप्त नहीं हुई थी कि वे तांगे के पास आ पहुँचे।

# दूसरा भाग
## विवाह-प्रस्ताव

इस घटना को एक वर्ष व्यतीत हो चुका था। पुलिस के अथक प्रयत्न करने पर भी इलाहाबाद के कलक्टर के बङ्गले की घटना करने वालों का पता नहीं चला। इलाहाबाद के कई लोगों को पकड़ा गया। कॉलेजों के अकेले रहने वाले विद्यार्थियों की भाग-दौड़ करवाई गयी। नगर के पढ़े-लिखे वेकारों और अविवाहितों की मर्दुमशुमारी की गयी। अभिप्राय यह कि जहां २ और समाज के जिस २ भाग में षड्यन्त्रकारियों का होना सम्भव था जांच-पड़ताल की गयी परन्तु पुलिस को न तो कहीं बम के मसाले की बू आई और न ही कहीं किसी व्यक्ति में बम बनाने की योग्यता मिली। धीरे २ खोज ठण्डी होने लगी। कलक्टर के बङ्गले में बम चलाने के विषय की जो पुलिस में फाइल आई थी उसमें अफसरों के सफर-खर्च के बिलों के अतिरिक्त और खोज के नाम पर कुछ नहीं था।

राय साहब कुञ्जबिहारी ठीक तो होगये परन्तु उनकी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था पहले जैसी नहीं हुई। साथ ही उनके मन पर कलक्टर साहब के बङ्गले की घटना का प्रभाव इतना गहरा पड़ा था कि वह उसका स्मरण कर कांप उठते थे। मधुसूदन पहले की भांति कभी कभी उनसे मिलने आया करता था। एक दिन उन्होंने उससे पूछा, "मधुसूदन, वह मालती बाई क्या तुम्हारी पहले से परिचित थी?"

"जी! राय साहब," मधुसूदन का उत्तर था।

"क्या तुम जानते हो वह कौन है और क्या करती है?"

"जी हां! मेरा एक सहपाठी और मित्र है। उसका नाम नरोत्तम प्रसाद सक्सेना है। वह जब यहां कॉलेज में पढ़ता था तो हमारे घर में ही रहता था। वह बनारस का रहने वाला है और मालती उसकी छोटी बहिन है। उसका यथार्थ नाम पूर्णिमा है। वह एफ० ए० पास है और

को खराब समझते हैं। यह भरसक यत्न करते रहते हैं कि मैं यह सब कुछ छोड़कर विवाह कर लूं और किसी के घर का चूल्हा सेका करूं।"

मधुसूदन हँस पड़ा, परन्तु कुछ बोला नहीं। राय साहब ने कुछ अचम्भे में पूछा, "तो क्या आप विवाह नहीं करेंगी? यह तो मैं अच्छा नहीं मानता।"

पूर्णिमा ने लापरवाही का भाव दिखाते हुए कहा, "आपका कहना ठीक भी हो सकता है और नहीं भी। यह आशा करनी कि वे सब बातें जो आप मानते हैं अवश्य ही ठीक हों, उचित नहीं। आप समझते हैं कि प्रत्येक हिन्दू कन्या को विवाह कर ही लेना चाहिये। मैं ऐसा नहीं समझती।"

अब मधुसूदन से नहीं रहा गया। वह बोल ही उठा, "मीठा मीठा हज़म और कड़ुआ कड़ुआ थू। यही है न आपकी नीति।"

इस पर राय साहब मुस्कराने लगे और बहुत ही मीठे स्वर से बोले, "परन्तु मधुसूदन पण्डित, मीठा और कड़ुआ भी तो अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही होता है। सब का स्वभाव एकसा नहीं होता, न ही वह सदैव एकसा रहता है। जिसे तुम आज मीठा समझते हो उसे तुम कल कड़ुआ मान सकते हो। मनुष्य के स्वभाव के बदलने के साथ उसकी अच्छे-बुरे की धारणा भी बदलती रहती है।"

मधुसूदन ने फिर कहा, "किसी के कहने से न तो कोई बात सत्य होती है और न असत्य। जो जैसा है वह सदैव वैसा ही रहता है। हम भ्रम में पड़ सकते हैं परन्तु सत्य नित्य है और वह अपरिवर्तनशील है।"

पूर्णिमा ने उत्तर में कहा, "यह तो ठीक है, पर हम कैसे जानें कि अमुक निर्विकल्प सत्य है और अमुक असत्य। अब इसी बात की बाबत विचार करें तो पता चल जायगा। यह कैसे पता चले कि विवाह करना ही ठीक है? इसमें मतभेद तो है ही।"

"शास्त्र की कसौटी पर परखने से पता चल सकता है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है।"

"क्या देंगे ?"

"तीन हज़ार रुपया। चित्र चार मास में समाप्त करना होगा।"

"बस !"

"मैं समझती हूं कि अभी इतना ही ठीक है।"

"अच्छी बात है। यदि मेरे योग्य कोई काम हो तो बतलावें।"

"मेरे आने का एक आशय यह भी था कि आपसे प्रार्थना की जाय कि आप अपने स्वस्थ होने की खुशी में एक जलसा करें और मैं अपनी सेवायें उसके लिये निःशुल्क दूं।"

"अत्यन्त धन्यवाद ! परन्तु मैंने जलसों में सम्मिलित होना बन्द कर दिया है !"

"अच्छा ! क्या मैं इसका कारण जान सकती हूँ ?"

"बात यह है कि पिछले साल जो घटना हुई थी उस पर मैंने बहुत विचार किया। यह बात तो सत्य है कि स्वर्गवासी कलक्टर साहब ने बहुत अन्याय किये थे। मैं यह सब जानता था, इस पर भी मैं दिन रात उनकी सेवा में यत्नशील रहता था। उन्होंने कुछ बातें ऐसी की थीं जिनसे यदि वह एक साधारण व्यक्ति होता तो शायद दस वर्ष के लिये कारावास पाता। परन्तु कानून के एक सिरे को वह पकड़े बैठे थे और उसके पंजे से बचे हुए थे।

"शायद उस दिन जो कुछ हुआ वह एक दैवी घटना थी। जिसने भी वह कार्यवाही की, ईश्वर की प्रेरणा से की प्रतीत होती है। हमने जो कष्ट भोगा वह दुष्टता से संसर्ग रखने का फल था। आप यह सुनकर हैरान होंगी कि जितने भी मरे अथवा घायल हुए वे सब के सब साहब के कृपा-पात्रों में से थे। उनके कामों में सहयोग देने वाले थे। साहब का कुत्ता तो मर गया परन्तु उसे पकड़े हुए चपरासी बाल-बाल बच गया। मरने वालों में कोई गरीब नहीं था, यद्यपि बहुत से नौकर-चाकर मरने वालों को सिगरेट, पान, तथा सुपारी बांट रहे थे। क्या यह अचम्भा करने की बात नहीं है ? मैं तो इस सब में ईश्वर का हाथ देखता हूँ।

"मगर शास्त्र भी तो मनुष्य के बनाये हैं।"

"नहीं। ऋषियों के बनाये हुए हैं और वे त्रिकालज्ञ थे।"

"इसका प्रमाण ? एक तो किसी ने ऋषियों को शास्त्र लिखते देखा नहीं और फिर इसका क्या प्रमाण है कि वे त्रिकालज्ञ थे ही ?"

"विश्वास।"

पूर्णिमा ने जब देखा कि मधुसूदन उत्तररहित होगया है तो अपने विचारों को पुष्ट करने के लिये बोली, "विवाह करना अथवा न करना कोई अटल सिद्धान्त नहीं है। यह तो समाज का रिवाज है जो समय समय पर बदलता रहता है। मेरे विषय में विवाह एक अनावश्यक सी बात है।"

अब राय साहब ने उत्सुकता से पूछा, "क्यों ?"

"मैंने जिस काम की शिक्षा प्राप्त की है उससे मेरा निर्वाह भली-भांति हो सकता है। घर-गृहस्थी के लिये न तो मैंने शिक्षा प्राप्त की है और न ही मुझे उसमें रुचि है।"

"कहती तो आप ठीक हैं परन्तु यह माना जाता है कि विवाह तो परमात्मा के किये से होता है। इसमें शिक्षा, रुचि और प्रयत्न का प्रयोजन नहीं होता।"

"अच्छी बात है। तो फिर जब ईश्वर करेगा हो जायगा। मुझे उसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये।"

"जैसी भगवान की इच्छा।" अब इस बातचीत को समाप्त करने के विचार से राय साहब ने पूछा, "हां ! तो आप कहां ठहरी हैं ? क्या फिर किसी गाने की पार्टी में आई हैं ?"

"नहीं, मैं सिनेमा-डायरेक्टर से मिलने आई थी। यहां पण्डित जी के घर पर ठहरी हुई हूँ।"

"सिनेमा-डायरेक्टर से ! क्या भेंट हुई है ?"

"हां हुई है। उन्होंने वचन दिया है कि एक-दो दिन में नियुक्ति हो जायगी। अभी तो वह मुझे 'मेरे भगवान' चित्र के लिये लेंगे।"

"क्या देंगे ?"

"तीन हज़ार रुपया। चित्र चार मास में समाप्त करना होगा।"

"बस !"

"मैं समझती हूं कि अभी इतना ही ठीक है।"

"अच्छी बात है। यदि मेरे योग्य कोई काम हो तो बतलावें।"

"मेरे आने का एक आशय यह भी था कि आपसे प्रार्थना की जाय कि आप अपने स्वस्थ होने की खुशी में एक जलसा करें और मैं अपनी सेवायें उसके लिये निःशुल्क दूं।"

"अत्यन्त धन्यवाद ! परन्तु मैंने जलसों में सम्मिलित होना बन्द कर दिया है !"

"अच्छा ! क्या मैं इसका कारण जान सकती हूँ ?"

"बात यह है कि पिछले साल जो घटना हुई थी उस पर मैंने बहुत विचार किया। यह बात तो सत्य है कि स्वर्गवासी कलक्टर साहब ने बहुत अन्याय किये थे। मैं यह सब जानता था, इस पर भी मैं दिन रात उनकी सेवा में यत्नशील रहता था। उन्होंने कुछ बातें ऐसी की थीं जिनसे यदि वह एक साधारण व्यक्ति होता तो शायद दस वर्ष के लिये कारावास पाता। परन्तु कानून के एक सिरे को वह पकड़े बैठे थे और उसके पंजे से बचे हुए थे।

"शायद उस दिन जो कुछ हुआ वह एक दैवी घटना थी। जिसने भी वह कार्यवाही की, ईश्वर की प्रेरणा से की प्रतीत होती है। हमने जो कष्ट भोगा वह दुष्टता से संसर्ग रखने का फल था। आप यह सुनकर हैरान होंगी कि जितने भी मरे अथवा घायल हुए वे सब के सब साहब के कृपा-पात्रों में से थे। उनके कामों में सहयोग देने वाले थे। साहब का कुत्ता तो मर गया परन्तु उसे पकड़े हुए चपरासी बाल-बाल बच गया। मरने वालों में कोई गरीब नहीं था, यद्यपि बहुत से नौकर-चाकर मरने वालों को सिगरेट, पान, तथा सुपारी बांट रहे थे। क्या यह अचम्भा करने की बात नहीं है ? मैं तो इस सब में ईश्वर का हाथ देखता हूँ।

"मैंने इसी कारण सब सरकारी अफसरों और उनकी चापलूसी करने वालों से सम्बन्ध तोड़ दिया है। न मैं किसी दावत अथवा जलसे में सम्मिलित होता हूँ और न ही कोई उत्सव करता हूं।"

पूर्णिमा मुस्करा रही थी। मधुसूदन किसी गम्भीर विचार में मग्न था। राय साहब की बात समाप्त होने पर कहने लगा, "ये आपके विचार तो आतङ्कवादियों का प्रोत्साहन करेंगे।"

"मैं किसी आतङ्कवादी को तो यह बता नहीं रहा। यह मैं हृदय से मानता हूँ इस कारण आपको कह रहा हूं। कोई भी काम ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं होता। यदि ईश्वर को स्वीकार न होता तो बम फेंके हुए भी न फटते, अथवा कुछ और गड़बड़ हो जाती, कोई मरता ही न अथवा निरपराधी मर जाते और न जाने क्या हो जाता।"

इस पर पूर्णिमा ने आंखें नीची किये हुए पूछा, "तो आपके विचार में आतङ्कवादियों का यह आयोजन बहुत सफल रहा।"

राय साहब—"प्रत्यक्ष में तो ऐसा ही प्रतीत होता है।"

मधुसूदन—"राय साहब ! आप डर गये हैं।"

राय साहब—"हा ! परन्तु बम से नहीं, ईश्वर के न्याय से।"

मधुसूदन—"परन्तु न्याय में साधन तो बम ही थे।"

राय साहब—"मैं साधनों से नहीं डरा, मैं तो ईश्वर के कोप से डर गया हूं। मैंने उन लोगों से सम्बन्ध सर्वथा तोड़ दिया है।"

इस पर पूर्णिमा ने पुनः बात घुमाकर कहा, "तो आप भले लोगों से तो सम्बन्ध रखते हैं। पार्टी में उनको ही बुला लीजियेगा। क्या इतने बड़े नगर में बीस-तीस भी ऐसे नहीं मिलेंगे जिनको आप ईश्वरीय कोप से मुक्त समझते हों ?"

"हैं तो। परन्तु जीवन भर तो चापलूसों में व्यतीत किया है, अब दूसरों से परिचय कठिन हो गया है।"

"तो परिचय करने का इससे अच्छा अवसर और कहां मिलेगा ? देखिये, पण्डित जी गायेंगे और मैं नाचूंगी। मेरा विचार है कि देखने

वाले निराश नहीं होंगे।"

"परन्तु......"

"परन्तु क्या ?"

"यही कि आप हमारी बिरादरी की लड़की हैं। मुझे आपको पब्लिक में नाचते देख लज्जा लगती है।"

"यदि मैं आपकी बिरादरी की न होती तो।"

"बात यह है कि मैं आपसे अधिक आशा रखता हूं। अभी तो आप यहां कुछ दिन हैं ही। इस विषय पर फिर विचार करेंगे।"

"अच्छी बात है। आपसे हम फिर मिलेंगे।"

इतना कह हाथ जोड़ प्रणाम कर दोनों उठ खड़े हुए। राय साहब भी उठ खड़े हुए। अकस्मात मधुसूदन को एक ओर ले जाकर वह धीरे धीरे कुछ कहने लगे। कई मिनट तक बताते रहे। मधुसूदन के मुख पर गम्भीरता प्रकट होने लगी। सिर झुकाये वह राय साहब की बातें सुनता रहा। अन्त में उन्होंने उसके कन्धों पर हाथ रखकर कुछ ऊंचे स्वर में कहा, "मेरा यह काम तुम्हें करना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है। यदि तुम यत्न करोगे तो सफलता अवश्य होगी। बताओ कब तक उत्तर लाओगे ?"

"कल इसी समय।"

"अच्छी बात, नमस्कार।"

मधुसूदन ने हाथ जोड़ बिदा ली और दोनों घर से बाहर निकल आये।

[ २ ]

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था परन्तु मधुसूदन ने पूजा समाप्त कर गाना आरम्भ कर दिया। तम्बूरा निकालकर स्वर मिलाने लगा। हा...हा ...हा इत्यादि। जब गला कुछ स्थिर हुआ तो गाना आरंभ किया:—

निर्विकल्प निर्विकार निराधार निराकार।
आदि देव हो अनन्त पाया न तेरो पार॥

तुम सब के पालन हारे सब के रखवारे।
पूर्ण जगत है माया, तुम पूर्ण जगदाधार ॥
हम दीन हीन अनाथ हैं आश्रय तुम्हारे।
निर्बलों के रक्षक हो तुम पतित-पावन हार ॥

पूर्णिमा अभी तक अपने कमरे में सो रही थी। स्वभाव से देर तक सोने वाली थी। इस पर भी मधुसूदन के जादू भरे स्वर में तानालाप सुन उठ बैठी। जहां इतने मीठे स्वर में भैरव गाया जारहा हो वहां एक दूसरे गाने वाले के शरीर में सुस्ती और नींद समायी रहे, असम्भव है। वह उठी, बिखरे बालों को ठीककर मधुसूदन के कमरे के दरवाजे पर आगयी। मधुसूदन दरवाजे की ओर पीठ किये बैठा था। उसके सम्मुख दीवार पर कृष्ण की मूर्ति बनी थी। आंखें मूंद वह अपने भजन में लीन था। उसे प्रतीत नहीं हुआ कि दरवाज़े के बाहर से कोई उसे देख रहा है। वह गा रहा था:—

अहिल्या को तार कर भीलनी उभार कर,
द्रोपदी की लाज रख भक्तन कष्ट निवारे।
गहरे भवसागर से टूटी सी नौका के,
खेवट मतवारे को पार लगावन हारे।

पूर्णिमा कुछ देर तक दरवाज़े पर खड़ी भजन सुनती रही। फिर दबे पांव अपने कमरे में वापिस चली आई। वहां पहुँच उसने अपने सूटकेस में से घुंघरू निकाल पावों से बांध लिये और बहुत धीरे २ पांव रखती हुई, जिससे आवाज़ सुनाई न दे, वापिस मधुसूदन के कमरे पर पहुंची। एक मिनट तक दरवाज़े पर अटकी रही। फिर कमरे में चली गई। मधुसूदन गारहा था:—

मनमोहन श्याम हमारे।
शरणागत की लाज रखो, हम आये द्वार तिहारे।
मन-मोहन········।

पूर्णिमा ने धीरे २ पावों से ठनका देना आरम्भ किया। मधुसूदन

का इस पर भी ध्यान भंग नहीं हुआ। पूर्णिमा का नाचना आरम्भ होगया। मधुसूदन गाता गयाः—

सखा सखी सब विरह भरी बातें करें मन भर भर के।
आओगे, कब आओगे, वृन्दावन के रखवारे ॥
मन-मोहन·········।

छुन-छुन-छुनन, छुन-छुन-छुनन-छुन·····अब पूर्णिमा का नाचना हाव-भाव सहित होने लगा। उसे नाचते हुए कोई नहीं देख रहा था। कृष्ण की मूर्ति और आंखें मूंदे उसका उपासक दोनों उसके नाचने में अविचलित थे। और कोई था ही नहीं। परन्तु वह किसी को दिखाने के लिये अथवा किसी का ध्यान आकर्षित करने के लिये नहीं नाच रही थी। कोयल का गाना, मोर का नाचना, किसी दूसरे के लिये नहीं होता। यह उनकी अपने मन की तुष्टि के लिये होता है। यही बात पूर्णिमा की थी। किसी सभा में वह शायद इतने सुन्दर रूप, हाव-भाव न बना सकती जो यहां सहज भाव से ही बनते जाते थे। गाना जारी थाः—

नाच रहीं, नाच रहीं, सब सखियां तेरी आशा में।
ओ मधुर बंसरी वाले, आ मीठी तान सुना रे ॥ मन·····।

नाच में और गाने में समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। दिन निकल आया था। मधुसूदन के पिता श्यामाचरण मन्दिर से लौट आये थे। तम्बूरे के स्वर के साथ मधुसूदन का मधुर स्वर में भगवत-भजन और उसके साथ घुंघरुओं की झंकार उसे पुत्र के कमरे में ले आये। वहां का दृश्य देख वह चकित रह गया। मधुसूदन आंखें मूंदे गा रहा था। पूर्णिमा उसकी पीठ की तरफ नाच रही थी। श्यामाचरण ने ऐसा अलौकिक नृत्य पहले कभी नहीं देखा था। मधुसूदन के गाने की प्रशंसा वह पहले कई बार सुन चुका था परन्तु पूर्णिमा को अथवा किसी को भी नाचते उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसने सुना था कि दक्षिण में वैष्णवों के मन्दिरों में नृत्य और कीर्तन होते हैं। क्या वे भी ऐसे ही बढ़िया होते हैं, वह नहीं जानता था। उसे यह सब कुछ बुरा प्रतीत नहीं

हुआ। एक बात जो उसके मन में आरही थी वह यह थी कि पूर्णिमा भगवत-भक्ति में लीन है अथवा मधुसूदन की। वह उसे मधुसूदन के चरणों में फूल चढ़ाते और चरण-रज माथे पर लगाते देख चुका था। इसी संशय में पड़ा हुआ वह अचम्भे में देख रहा था। चकित हुआ जहां था वहीं जड़वत खड़ा रह गया। कितनी ही देर तक वह हृदय को शांत करने वाला गाना सुनता रहा और मन की सच्ची भक्ति प्रकट करने वाले नृत्य-चित्र देखता रहा। मधुसूदन और पूर्णिमा अपने काम में इतने लीन थे कि उन्हें श्यामाचरण की उपस्थिति वहां बहुत देर तक ज्ञात न हुई।

अकस्मात पूर्णिमा की दृष्टि दरवाजे के बाहर गयी। उसने देखा कि मधुसूदन के पिता विस्मय-मूर्ति हुए खड़े हैं। वह एकदम ठहर गयी, फिर जोर से हँस पड़ी और छन-छन करती हुई वेग से अपने कमरे में चली गयी।

एकदम नाच बन्द होने, किसी के जोर से हँसने और फिर भाग जाने के शब्द से मधुसूदन का ध्यान टूट गया। उसका मधुर स्वप्न भंग हुआ। वह घूमकर देखने लगा। पिता दरवाज़े में खड़ा भागती पूर्णिमा की ओर देख रहा था। मधुसूदन आसन से उठ खड़ा हुआ। मूर्ति को हाथ जोड़, शीश नवा, प्रणाम कर पिता जी की ओर घूमा। नमस्कार कर पूछने लगा, "क्या था पिता जी?"

श्यामाचरण ने मुस्कराते हुए कहा, "वही! नरोत्तम की पगली बहिन पूर्णिमा।"

"पूर्णिमा नाच रही थी क्या?"

"तो तुम्हें नहीं मालूम?"

"हां होगी, वह होगी। मुझे प्रतीत हो रहा था—वृन्दावन के समीप यमुना-तट है। विरह भरे ग्वाल-बाल सखा-सखी कृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किसी ने कहा वह श्यामसुन्दर रास में अवश्य आयेंगे। कुछ लोग नाच-नाच कर उस मुरली की तान से मधुवन को सजीव कर देने

वाले का आवाहन करने लगे हैं। खट से परदा गिरा और सब कुछ लोप होगया। हां! तो पूर्णिमा नाच रही थी, पगली सी।"

श्यामाचरण हँस पड़ा और धीरे २ अपने कमरे की ओर चल पड़ा।

मधुसूदन ने तम्बूरे पर कपड़ा चढ़ा दिया। करताल को एक ओर रख दिया और कमरे से बाहर चला आया। पूर्णिमा ने कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया था। वह उससे कुछ पूछना चाहता था परन्तु किवाड़ बन्द देख पुनः अपने कमरे में लौट आया और रामायण का पाठ करने लगा।

[ ३ ]

दोपहर के समय जब भोजन हो चुका तो पूर्णिमा आज पहली बार मधुसूदन के सम्मुख हुई थी। मधुसूदन अपने कमरे में बैठा कुछ पढ़ रहा था। इन दिनों वह आयुर्वेद का अध्ययन कर रहा था। पूर्णिमा जब वहां आई तो मधुसूदन उसे देख मुस्कराने लगा। उसे मुस्कराते देख वह हँस पड़ी। मधुसूदन ने पूछा, "क्यों, हँस क्यों रही हो?"

"आप भी तो हँसने लगे थे।"

"हां। परन्तु मेरे हँसने का तो कारण है।"

"क्या है?"

"पहले तुम बताओ।"

"नहीं! पहले आप मुस्कराये थे, इसलिये पहले आप बताइये।"

"अच्छा! तो लो सुनो। तुम भगवान को नहीं मानती न! परन्तु भगवत-भजन में आनन्द अनुभव करती हो। ये परस्पर विरोधी बातें क्यों हैं? प्रायः ऐसे लोग हैं जो अपने मन की बात नहीं जानते। तुम भी ऐसी ही हो। यह क्या हंसने का विषय नहीं?"

पूर्णिमा इससे कुछ गम्भीर हो उठी और चुप रही। अब मधुसूदन ने पूछा, "भला तुम क्यों हँसी थी?"

"इसलिये कि आप सदा से मुझे गलत समझते आये हैं। जिस कारण आप मुस्कराये थे वह भी आपकी भूल थी। आपकी भूलों को

हो वह तुम्हारी बातों में विशेष रुचि प्रकट करने लगे हैं। कल ही तुम्हारे विवाह के विषय में बहुत कुछ पूछ रहे थे।"

"कल! क्या पृथक होकर मेरी ही बातें हो रही थीं?"

मधुसूदन ने प्रकट में कुछ झिझक दिखाते हुए कहा, "अ ... अ ...... हां।"

पूर्णिमा और जानने के लिये अब उत्सुक हो उठी। वह बोली, "तो हां, वह क्या पूछते थे?"

"बता दूं? सुनोगी?"

"हां! हां! सुन तो रही हूं।"

"वह पूछते थे कि पूर्णिमा का विवाह निश्चित हुआ है या नहीं। मेरे यह कहने पर कि 'अभी नहीं' तो कहने लगे 'इसका निश्चय पूर्णिमा की मां करेगी अथवा भाई'। मैंने उत्तर दिया, 'पूर्णिमा स्वयं' तब उन्होंने एक लड़के की बात की।"

पूर्णिमा मुस्कराकर पूछने लगी, "और वह कौन महापुरुष हैं? क्या आप उनको जानते हैं?"

"हां! बहुत भली भांति जानता हूं। बहुत धनी हैं, प्रसिद्ध हैं, सुन्दर हैं, सुशील हैं और अनेक गुण-सम्पन्न हैं।"

"ओह, तब तो उनकी बात विचार करने योग्य है।" इतना कह पूर्णिमा खिलखिलाकर हंस पड़ी।

मधुसूदन ध्यानपूर्वक पूर्णिमा के मुख पर देख रहा था। वह उसके मन की बात समझना चाहता था। परन्तु हंसी ने उसके मन के भावों को आवरणमय कर दिया। इस आवरण को दूर करने के लिये उसने फिर कहा, "हां! यह प्रस्ताव तिरस्कार योग्य नहीं। उस लड़के के धनी होने के विषय में मैं इतना कह दूं कि वह आपको विवाह होते ही एक हजार रुपया मासिक जेब-खर्च देने को तैयार है, और अपने मरणोपरान्त अपनी आधी सम्पत्ति लिख देगा। प्रसिद्धि उसकी इतनी है कि नगर के बच्चे बच्चे के मुख पर उसका नाम है?"

"क्या वह कोई राजनैतिक नेता है?"

"तो क्या तुम समझती हो कि केवल राजनीति का क्षेत्र ही है जहां प्रसिद्धि प्राप्त की जा सकती है?"

पूर्णिमा ने कुछ गम्भीर भाव धारण कर कहा, "परन्तु आपने यह नाऊ का काम कब से आरम्भ किया है?"

मधुसूदन ने हँसते हुए कहा, "नाऊ का काम? हां, जब से पूर्णिमा देवी के लिये वर ढूढने की आवश्यकता हुई है।"

"अच्छा तो अब अपने नाऊपन को बन्द करो। मुझे इन बातों में रुचि नहीं।"

"नाराज़ हो गयी हो? बताओ इसमें मेरा क्या दोष है? तुमने स्वयं ही तो एक दिन कहा था कि भैया और मां इस विषय में तुम्हारी इच्छानुकूल ही करेंगे। यदि तुमने अपने लिये पति ढूँढने का काम अपने हाथ में न लिया होता और भारतवर्ष में प्रचलित प्रणाली के अनुसार यह काम तुम्हारी माता अथवा भाई के हाथ में होता तो इस प्रकार की अरुचिकर बातें सुनने की आवश्यकता न होती।"

"अच्छा! तो मेरे इस समाज के नियम का उल्लङ्घन करने के लिये मुझे दण्ड दिया जा रहा है? बहुत अच्छी बात है। मैं अपनी स्वतन्त्रता की कीमत देने के लिये तैयार हूँ। आपने और जो बुरा-भला मुझे कहना है कह लीजिये।"

मधुसूदन ने क्षमा मांगने का भाव दिखाते हुए कहा, "बुरा-भला! और तुमको? यह कैसी बात कह रही हो, पूर्णिमा। तुम अपने आपको नवयुग की लड़की मानती हो तो फिर नवयुग की ठोकरों से डरती क्यों हो? साथ ही तुमने स्वयं ही तो पूछा था, और मैंने तुम्हें गाली कब दी है? एक मनुष्य की सच्ची प्रशंसा तुम नहीं सुन सकती?"

"सुन क्यों नहीं सकती! बात यह है कि कोई धनी मनुष्य सज्जन भी हो सकता है इसमें मुझे सन्देह है। धन और सौजन्यता एक स्थान पर नहीं हो सकते ऐसी मेरी धारणा कई वर्षों से बनी हुई है। इसे आप

निर्मूल नहीं कर सकते। मेरा विश्वास है कि धन का एक स्थान पर एकत्रित होजाना ही इस बात का सूचक है कि कहीं स्वार्थ, अन्याय, पाप और दुष्टता उपस्थित हैं।"

"परन्तु मैं धनवानों की तो प्रशंसा नहीं कर रहा। तुम्हारी बात प्रायः सत्य हो सकती है, सदैव नहीं। ऐसे एक-आध धनी का होना असम्भव नहीं जो उक्त दुर्गुण न रखता हो। यह सज्जन तुम्हारी बिरादरी के हैं। जीवन को सुखी रखने के लिये धन एक मुख्य साधन है और वह बहुत धनी हैं। विवाहित जीवन में बुद्धि युक्त धन का व्यवहार सुख और शान्ति की गारन्टी है। और वह महानुभाव तुम्हें प्यार करेंगे, तुम्हारा आदर करेंगे। उनके मन में किंचित मात्र भी पाप, झूँठ और दगा नहीं है। वह निष्कलङ्क हैं। उन........"

पूर्णिमा ने कानों में अंगुली डालकर कहा, "बस! बस!! और अधिक प्रशंसामय कविता न करो। संस्कृत पढ़ों में यही तो दोष है कि प्रत्येक स्त्री को कादम्बरी और प्रत्येक पुरुष को धर्मावतार बना देते हैं। मुझे आपकी इन बातों पर विश्वास नहीं होता और विश्वास करके करूंगी भी क्या........"

मधुसूदन ने उसे बात समाप्त करने नहीं दी। वह जानता था कि पूर्णिमा कहेगी कि उसने तो चुनाव कर लिया है। वह उसके पहले के चुनाव की इस नये प्रस्तावित वर के मुकाबिले में तुलना करवाना चाहता था। वह कहने लगा, "मानों चाहे न मानों, विश्वास करो अथवा न करो, परन्तु सुन तो लो। सुन लेने में क्या दोष है?"

इस पर पूर्णिमा बोली, "सुनूं क्या? मैं सब समझ गयी हूँ। बताऊँ वह महापुरुष, धर्म-मूर्ति, कुबेर के समान धनी, संसार के नियम का उल्लङ्घन करने वाला कौन है?"

"हां कौन है?"

"मेरी बिरादरी में है, धनी है, सुशील है, इलाहाबाद में विख्यात है, मुझे भली भांति जानता भी है, दया और न्याय की मूर्ति पचास

वर्ष का बूढ़ा भी है। क्यों ठीक है न ?"

"यह तुमने कैसे जाना ?"

"और वह राय साहब कुँजविहारी माथुर हैं। क्यों कैसा ठीक समझा ?"

"ओह !"

"आप मुझे मूर्ख समझते हैं न ! परन्तु मैंने कितना ठीक अनुमान लगाया है।"

"मैंने तो तुम्हें मूर्ख कभी नहीं समझा। अच्छा तो श्रीमती जी का क्या उत्तर है जो मैं उनसे कह दूं ?"

पूर्णिमा खिलखिलाकर हंसी और बोली, "इसी कारण तो मैंने आपको बुद्धू कहा था।"

मधुसूदन बुद्धू बनकर मन ही मन प्रसन्न था। इस पर भी वह अभी और स्पष्ट उत्तर चाहता था। उसने कुछ तेज आवाज में कहा, "कैसे बुद्धू हूँ ? तुम्हारे मन की बात न जानने से बुद्धू बन गया क्या ? मैं तो समझता हूँ कि तुम स्वयं भी अपने मन की बात को स्पष्ट रूप में नहीं पढ़ सकी हो। इसी कारण तो टालमटोल कर रही हो।"

इस पर तो पूर्णिमा को क्रोध आगया। वह उद्वेग में कहने लगी, "टालमटोल कर रही हूँ ? नहीं बिलकुल नहीं। यदि मैं आपके स्थान पर होती तो कल ही राय साहब को उत्तर दे देती। कह देती, 'आपका यह प्रस्ताव धर्म-शास्त्र और मानव-शास्त्र के विपरीत है। आप विवाहित हैं इस कारण आपको ऐसा विचार करते भी लज्जा आनी चाहिये। आपके इस प्रस्ताव के स्वीकार होने की कोई भी आशा नहीं।' साथ ही यह कह देती, 'मैं पूर्णिमा को कई वर्षों से जानता हूँ। वह धन के लोभ से अपने विचारों को बदल नहीं सकती। वह दृढ़ निश्चय है और फिर धन तो कुछ बहुत उत्तम पदार्थ भी नहीं है। धनी के पास रखा धन मजदूरों के रक्त से रंजित होता है। ऐसे धन को हाथ लगाना भी वह पाप समझती है'।"

इतना कह पूर्णिमा ठहर गयी, परन्तु वह अपने मन के आवेश को न रोक सकने के कारण फिर कहने लगी, "और आप तो मेरे विचारों से

मधुसूदन भी चटाई पर बैठ गया।

श्यामाचरण ने जब से पूर्णिमा को नाचते देखा था तब से अनेकानेक विचार उसके मन में उठ रहे थे। वह उन सब का स्पष्टीकरण मधुसूदन से करना चाहता था। मधुसूदन भी पिता के मुख पर गम्भीर मुद्रा देख समझ गया था कि कुछ विशेष बात है जिसके लिये वह वहां बैठा है। चटाई पर बैठ उसने काग़ज, कलम, दवात आदि सब डैक्स में बन्द-कर दिये और बात को टालने के विचार से तम्बूरा निकाल स्वर करने लगा।

श्यामाचरण ने बात आरम्भ कर दी, "बेटा! राय साहब ने क्या पूछा था? नौकर कहता था राय साहब ने तुरन्त उत्तर मांगा है।"

मधुसूदन यद्यपि यह चाहता था कि अभी इस विषय पर बात न की जाय तो भी वह पिता से कोई बात छिपाने की क्षमता नहीं रखता था। पिता के प्रश्न पूछने पर वह न तो कोई बात छिपा सकता था और न छिपाना चाहता था। अतएव कहने लगा, "कल राय साहब ने पूर्णिमा के विवाह के विषय में मुझसे पूछा था। मैंने उत्तर दिया था कि अभी निश्चय नहीं हुआ। इस पर उन्होंने उससे अपने विवाह का प्रस्ताव किया। मैंने आज पूर्णिमा का विचार इस विषय में जानने का यत्न किया और जो कुछ उसने बताया है सो लिख दिया है।"

श्यामाचरण ने कुछ अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "पूर्णिमा से क्यों पूछा था? उसके भाई अथवा माता से पूछना चाहिये था।"

मधुसूदन ने मुस्कराते हुए कहा, "पिता जी! आज-कल पढ़े-लिखे लोगों में ऐसा ही रिवाज है। लड़के लड़कियां स्वयं निर्णय करते हैं और माता-पिता प्रायः उनके निर्णय को स्वीकार कर लेते हैं।"

"यह तो किस्तानों का ढंग है। हिन्दू समाज में ऐसा होना ठीक नहीं। परन्तु पूर्णिमा ने क्या उत्तर दिया है?"

"मैंने राय साहब को लिखा है कि आपके प्रस्ताव के स्वीकार होने की कोई आशा नहीं।"

इस पर तो मधुसूदन के पिता के अचम्भे का ठिकाना न रहा।

वह पूछने लगा, "तो क्या उसने राय साहब को अस्वीकार कर दिया है ? उन जैसा धनी, धर्मात्मा और विशाल हृदय पुरुष उसे कहां मिलेगा ?"

मधुसूदन ने साधारण भाव से ही उत्तर दिया, "परन्तु उनकी आयु बहुत बड़ी है और उनका विवाह भी हो चुका है।"

"इससे क्या होता है ? पुरुष तो कई विवाह कर सकता है और उसके लिये आयु का भी कुछ झगड़ा नहीं।"

"आज का शिक्षित समाज तो ऐसा नहीं मानता।"

"भाड़ में जाय तुम्हारा शिक्षित समाज। यह तो पूरा दुराचार का मार्ग है। जब लड़कियां अपने लिये वर देखती फिरती हों और पुरुष पुरुष की वर बनने में योग्यता और अयोग्यता की परीक्षा करती हों तो कितना अनर्थ होने की सम्भावना है।"

मधुसूदन की इच्छा थी कि पिता के साथ वाद-विवाद न करे। इस कारण उसने केवल इतना ही कहा, "जो कुछ भी हो। अब तो ऐसी प्रथा चल गयी है और इस प्रथा को रोकने की मुझ में अथवा आप में सामर्थ नहीं।"

श्यामाचरण ने कुछ चिन्तित भाव से कहा, "परन्तु ऐसे शिक्षित लोगों से तुम्हारा सम्पर्क अच्छा नहीं। आखिर हमें तो अपनी समाज में रहना है। वहां नाता-रिश्ता भी करना है। तुम अब बड़े हुए हो। पढ़-लिख कर योग्य हुए हो। किसी अच्छे ब्राह्मण परिवार में तुम्हारे भी तो विवाह की बात होगी ही। ऐसी अवस्था में इस शिक्षित समाज के लोगों से तुम्हारा मेल-जोल तुम्हारी उन्नति में बाधक होगा।"

मधुसूदन ने अब भी बात टालने के विचार से कह दिया, "इन लोगों से सम्बन्ध सर्वथा तो टूट नहीं सकता। नरोत्तम और उसकी माता ने पूर्णिमा को कुछ समय तक यहां रहने के लिये भेजा है। देखिये वे हम पर कितना विश्वास करते हैं, हमें कितना अच्छा समझते हैं। अन्यथा भरे नगर में एक धनी आदमी के लिये और कोई स्थान नहीं क्या ? जब वे हम पर विश्वास करते हैं तो हम उनसे कैसे तटस्थ हो

सकते हैं ?"

"परन्तु इसमें तो उनकी ही हानि है।"

"वह कैसे ?"

"एक विवाह-योग्य युवा लड़की को ऐसे घर में रहने भेज दिया है जहां और किसी स्त्री का वास भी नहीं है। इससे तो उसके लिये वर ढूंढना कठिन हो जायगा।"

"जहां तक मुझे पूर्णिमा की बातों से पता चला है वह यह है कि उसके लिये वर का निश्चय हो चुका है। यह भी एक कारण है जिससे राय साहब के प्रस्ताव के स्वीकार होने की कुछ भी आशा नहीं।"

"ओह ! तब तो और भी आवश्यक है कि वह ऐसे स्थान पर न रहे। उसका भावी पति क्या समझेगा ?"

"उसका यहां आना उसके भावी पति की अनुमति से ही है।"

ये सब बातें श्यामाचरण जैसे प्राचीन विचारों के मनुष्य के लिये नितान्त अनोखी और नवीन थीं। वह नहीं समझ सकता था कि ऐसा भी हो सकता है। वह कहने लगा, "परन्तु यह कैसे होसकता है ? मेरी तो समझ में यह नहीं आ सकता। परन्तु वह यहां आई किस लिये है ?"

"यहां एक फिल्म-कम्पनी में नाचने का काम उसे मिला है। यह काम चार मास तक चलेगा और तब तक वह यहां रहेगी।"

यह सुनकर तो श्यामाचरण की हैरानी का कुछ भी टिकाना नहीं रहा। उसे क्रोध भी आया परन्तु ये सब बातें उसे इतनी चकाचौंध करने वाली थीं कि उसके मुख से कोई बात निकलते नहीं बनी। वह अवाक मुख उठ खड़ा हुआ और मधुसूदन के कमरे से बाहर होगया।

[ ४ ]

श्यामाचरण इस नवीन युग में भी प्राचीन विचारों को पकड़े बैठा था। वह नवीन सभ्यता को पापमय समझता था। उसके विचार में कोट-पतलून पहनना एक ब्राह्मण का चमार के हाथों से खाने के समान था। वह संसार की प्रगति से सर्वथा पृथक था। इसका कारण यह था

कि जब से उसने मन्दिर का काम संभाला था वह एक प्रकार से बाहरी संसार से, जो डाक गाड़ी में बैठा भागा चला जाता था, सर्वथा पृथक होगया था। उसका प्रातःकाल पूजा-पाठ में व्यतीत होता था, दोपहर रामायण पढ़ने में और सायंकाल मधुसूदन से बात-चीत करने तथा यजमानों के घर संस्कार, पूजा-पाठ इत्यादि कराने में। दिन-रात इसी प्रकार व्यतीत होते जाते थे। मधुसूदन बाहरी संसार की रेलगाड़ी में बैठा तेजी से आगे चला जा रहा था; परन्तु घर के वातावरण के कारण अथवा संस्कृत में शास्त्रों के अध्ययन करने से अथवा कुछ पूर्व जन्म के कर्म-फल से वह नवीन जगत की रेलगाड़ी में बैठा हुआ भी प्राचीन सभ्यता-रूपी जन्म-स्थान से सम्बन्ध रखे हुए था।

श्यामाचरण को पूर्णिमा का उनके घर में रहना रुचिकर नहीं था। वह यह जानकर कि यह लड़की नाचने-गाने का काम करती है उसे पतित समझने लगा था। विशेष कर एक लड़की जिसकी सगाई हो चुकी है कैसे दूसरों के घर में महीनों रहकर और पर पुरुष के चरणों पर फूल चढ़ाकर अथवा उसकी चरण-रज मस्तक पर चढ़ाकर पतिव्रता कहा सकती है? यह बात उसके विचार में अनुचित थी। इस प्रकार के आचरण से वह मधुसूदन की संगति में रहकर उसे कलंकित किये बिना नहीं रहेगी, अपनी इस कल्पना के कारण वह अधीर हो उठा। वह जानता था कि राय साहब कुँजबिहारी मधुसूदन पर बहुत प्रभाव रखते हैं। इस कारण मन ही मन उसने उनके पास जाने का निर्णय कर लिया।

उक्त घटना के तीन चार दिन पीछे की बात है। पूर्णिमा और मधुसूदन स्टूडियो गये हुए थे। श्यामाचरण ने कपड़े पहने और राय-साहब के घर जा पहुँचा। राय साहब बैठक में बैठ सिगार पी रहे थे। पण्डित जी को देखते ही बोले, "आइये पण्डित जी! कैसे आना हुआ? तबियत तो ठीक है।"

श्यामाचरण आशीर्वाद देकर समीप ही एक कुर्सी पर बैठ गया और कहने लगा, "यदि आपको कुछ अवकाश हो तो एक परामर्श

करना है।"

"हां हां! मुझे इस समय कुछ काम नहीं। फरमाइये क्या बात है?"

श्यामाचरण ने इधर उधर की बात किये बिना मतलब की बात आरम्भ कर दी। बोला, "आप पूर्णिमा को जानते हैं न।"

"हां"

"वह आज-कल हमारे घर में रहती है।"

"हां! मैं जानता हूँ।"

"वह फिल्म-कम्पनी में नाचने का काम करती है।"

"तो क्या हुआ?"

इस प्रकार के दो टूक उत्तरों से श्यामाचरण घबरा गया। उसका विचार था कि राय साहब इस सब बात को नहीं जानते। इस पर भी उसने हार नहीं मानी। कहने लगा, "परन्तु राय साहब मधुसूदन का क्या होगा?"

राय साहब ने अभी भी अपनी दृढ़ता स्थिर रखते हुए कहा, "होगा क्या? कुछ नहीं होगा। पण्डित जी महाराज! यह आजकल की लड़कियां बहुत चतुर हैं। पढ़ने-लिखने में लड़कों से कम नहीं। बात-चीत करने में और अपना भला-बुरा सोचने में तो ये उनसे अधिक योग्य होती हैं। रहा मधुसूदन। क्या आपको अपने लड़के पर विश्वास नहीं? भाई! मुझे तो मधुसूदन पर इतना विश्वास है जितना कि अपने पर। उसका मन अति निर्मल है। उसमें पाप का लेशमात्र भी नहीं है।"

"आपका यह कहना सर्वथा सत्य है। परन्तु प्रलोभन प्रबल होने पर तो देवताओं को भी डगमगा देते हैं। देखिये मैं आपको एक-दो आंख देखी घटनाओं का वृत्तान्त बताता हूँ। पिछले वर्ष मैं एक दिन बीमार था। मधुसूदन मन्दिर में पूजा करने गया था। मेरी इच्छा हुई कि मैं एक बार मन्दिर में जाकर देख आऊं। मैं वहां गया तो देखा कि मधुसूदन मन्दिर में खड़ा है। उसके पावों के सम्मुख फूल-पत्र धरे हैं और एक स्त्री भूमि पर मस्तक टेके मधुसूदन की चरण-वन्दना कर रही

है। पश्चात उस स्त्री ने उसकी चरण-रज को सिर पर चढ़ा लिया और उठकर चल पड़ी। वह पूर्णिमा ही थी।

"अभी तीन चार दिन की बात है कि मैं पूजा समाप्त कर मन्दिर से घर पहुँचा तो मधुसूदन के गाने के साथ घुँघरू बजने का शब्द हो रहा था। मैं मधुसूदन के कमरे में गया तो देखा मधुसूदन आंखें मूँदे भजन गा रहा था और पूर्णिमा खड़ी नाच रही थी। यह सब कुछ और भी बुरा है क्योंकि पूर्णिमा की सगाई कहीं हो चुकी है।"

राय साहब ने कुछ सोचते हुए पूछा, "कहां हो चुकी है?"

"यह तो मैं नहीं जानता। हां, इतना मधुसूदन कहता था कि पूर्णिमा का फिल्म-कम्पनी में नाचने का काम करना तथा उसका हमारे घर में रहना उसके भावी पति की अनुमति से हो रहा है।"

राय साहब के मुख से निकल गया, "ओह!"

श्यामाचरण इस 'ओह' का अभिप्राय नहीं समझ सका। वह अचम्भे में राय साहब का मुख देखने लगा। राय साहब 'ओह' कहकर फिर गम्भीर विचार में मग्न हो गये। कुछ देर तक श्यामाचरण उनका मुख देखता रहा। यह मुख वार्तालाप के आरम्भ में कठोर था, पश्चात् गम्भीर हो उठा और अब धीरे धीरे प्रफुल्लित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके मन में प्रकाश हो रहा है और मधुसूदन और पूर्णिमा का व्यवहार उनके लिये दिन के समान स्पष्ट हो उठा है।

राय साहब खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्होंने प्रसन्न-वदन श्यामाचरण की ओर देखकर कहा, "पण्डित जी, बहुत बहुत बधाई। आपके लड़के का विवाह पूर्णिमा देवी से निश्चित हो चुका है। जाइये, अब विवाह की तैयारी कीजिये।"

श्यामाचरण चकित सा राय साहब के मुख की ओर देखता रह गया। यह बात तो उसको स्वप्न में भी सम्भव प्रतीत नहीं होती थी कि कैसे एक ब्राह्मण लड़के का विवाह कायस्थ लड़की से हो सकता है। उसने राय साहब को केवल मज़ाक करते समझ कहा, "राय साहब!

यह विषय हंसी करने योग्य नहीं है। मुझे ऐसी बातें सुनकर दुख होता है। मैं उच्च कुल का ब्राह्मण हूं। मेरा विवाह लखनऊ के तिवारियों के घर हुआ था और मैं अपनी सन्तान को जाति से बाहर विवाह करने नहीं दूंगा। साथ ही यह धर्म के विपरीत है। शास्त्र ऐसे विवाह की आज्ञा नहीं देते।"

राय साहब ने कुछ गम्भीर होकर कहा, "आपके शास्त्र तो मैं जानता नहीं। हां, परन्तु जहां तक मुझे प्रतीत होता है पूर्णिमा और मधुसूदन में विवाह का वचन हो चुका है।"

"मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।"

"क्यों?"

"ब्राह्मण और कायस्थ में विवाह नहीं हो सकता।"

"तो ब्राह्मण कायस्थ हो जावेगा।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"जैसे हिन्दू मुसलमान हो सकता है।"

"यह तो अनर्थ है।"

"फिर क्या किया जाय? आप में इस अनर्थ को रोकने की शक्ति है क्या?"

"हां है।"

"कैसे?"

"मैं लड़के को घर से बाहर निकाल दूंगा।"

राय साहब हंस पड़े। कहने लगे, "पण्डित जी महाराज! आपने आज तक लड़के के लिये क्या किया है जो घर से निकाल देने पर आप न कर सकेंगे? उसके खान-पान, भोजन, शिक्षा इत्यादि में आपका कितना भाग है जिससे आप उसे वंचित कर देंगे? यथार्थ में आपके आधीन वह न कभी था और न है।"

इस पर श्यामाचरण घबरा उठा। अब एक अन्तिम उपाय सोचा कर बोला, "तो क्या आप इसमें मेरी सहायता न करेंगे?"

"मैं क्यों करूं ?"

"इस कारण कि यह अनर्थ है, अनुचित है। जिसको आपने शिक्षा देकर इतना योग्य बनाया है, उसका अहित है।"

"मैं ऐसा नहीं समझता। मेरे विचार में तो यह विवाह बहुत ही उचित और दोनों पक्षों के लिये हितकर है।"

श्यामाचरण इस कथन से दङ्ग रह गया। अभी भी वह यही समझ रहा था कि राय साहब यह सब कुछ व्यंग के भाव से कह रहे हैं। वह विचार करता था कि राय साहब के स्वयं पूर्णिमा से विवाह कर लेने के प्रस्ताव के ठुकराये जाने के पश्चात उनका इस मूर्ख युवती पर हँसी करना अधिक सम्भव है। परन्तु जब वह उनके मुख की ओर देखता था तो उसे उस पर कोई हँसी-मज़ाक अथवा व्यङ्ग की रेखा प्रतीत नहीं होती थी। वह बहुत हैरान था। एक बार अपने मन के संशय को दूर करने के लिये उसने कहा, "मैं आपके विचारों को समझता हूँ। आपके विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देने के पश्चात आपका व्यवहार ऐसा होना ही चाहिये, ताकि इन मूर्खों को विवाह कर जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में जलने दिया जाय। परन्तु यह प्रतिकार तो आपको उससे नहीं लेना चाहिये जिसे आपने पालपोस कर इतना बड़ा किया है तथा पढ़ा-लिखा कर इतना योग्य बनाया है। यही समय है कि उसे इस गड्ढे में गिरने से बचा लिया जाय।"

राय साहब ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "पण्डित! तुम तो सर्वथा मूर्ख हो। तुम यह समझते हो कि मैं इतना कुचक्री हूँ कि बदला लेने के लिये इतनी दूर की योजनायें करूंगा। सुनो! मैं तुम्हें अपने मन की बात बताता हूँ। मैंने पूर्णिमा को जब देखा और समझा तो उसे एक अमूल्य रत्न पाया। मैं एक सांसारिक जीव हूँ और इतनी बढ़िया वस्तु को पाने, अपने पास रखने और उसे किसी दूसरे के पास न जाने देने की इच्छा मुझ में प्रबल हो उठी। मेरे प्रस्ताव का यही कारण था। इसके पश्चात मधुसूदन का उत्तर आया कि उसकी सगाई हो चुकी है।

के आधीन काम करेंगे। —कमल

नरोत्तम ने चिट्ठी पढ़कर नेता को वापिस कर दी और विस्मय में उसका मुख देखने लगा। नेता ने कहा, "मुझे त्याग-पत्र देने में कुछ भी आपत्ति नहीं परन्तु धमकी से मान जाने का अभिप्राय तो यह होगा कि वास्तव में मैं दोषी हूँ। साथ ही मैं यह नहीं चाहता कि लड़कियों के विषय में बातें भरी सभा में हों। इसी सोच में पड़ा हुआ था कि तुम आगये। अब तुम अपनी राय बताओ कि क्या किया जाय?"

नरोत्तम ने तुरन्त उत्तर दिया, "डरकर त्याग-पत्र देना मेरी सम्मति में ठीक नहीं और मैं चाहता हूँ कि सब बातें प्रकट हो जावें तो और भी ठीक होगा। यह सभा पर छोड़ दिया जाय कि वह किस को दोषी समझती है। जो भी दोषी हो उसे दण्ड देना चाहिये। त्याग-पत्र दे देने से तो पार्टी में फूट पड़ जायगी और हम सबके गले में फांसी लगने में देरी नहीं रह जायगी।"

धीरेन्द्र, जो नरोत्तम की बातों को ध्यान से सुन रहा था, कहने लगा, "तुम कहते तो ठीक हो, परन्तु तुम कमल को भली भांति नहीं जानते। वह बड़े जीवट का आदमी है। बहुत तू-तू-मैं-मैं में मुझे डर है कि कहीं गोली न चल जाय।"

नरोत्तम ने कुछ क्रोध में कहा, "दादा तो हम भी चूड़ियां पहनकर नहीं बैठे हुए। हम भी जान पर खेल जाना जानते हैं।"

इस पर धीरेन्द्र ने कहा, "इस आपस में लड़कर मरने से क्या लाभ? यदि मरना ही है तो और क्या कम स्थान हैं। भारतवर्ष में तो पग पग पर अपमान किया जा रहा है। कहीं भी जाकर 'एक्शन' कर मरा जा सकता है। अच्छा सुनो! मैं न तो त्याग-पत्र दूंगा और न ही इस पत्र को सभा में उपस्थित करूंगा। यदि उसने लांछन लगाये तो फिर इसका निर्णय सभा में हो जायगा।" इतना कह नेता ने घड़ी की ओर देखा। अभी समय में पांच मिनट थे।

अब सीढ़ियों पर कुछ और लोगों के आने की आहट हुई। इस

समय कई युवक और दो युवतियां आईं। नेता ने उनको देख, आकर बैठने को कहा। ये लोग अभी बैठ ही रहे थे कि कुछ और लड़कियां आगयीं। इनमें पूर्णिमा भी थी। नेता ने फिर घड़ी की ओर देखा। अभी नौ बजने में दो मिनट थे। इक्का दुक्का युवक युवतियां अभी आरहे थे। नौ बजे के पूर्व युवकों का एक गिरोह और आया। कमरा खचाखच भर गया। नेता ने घड़ी फिर देखी। अब कुछ सैकण्ड बाकी थे। सब से अन्त में एक युवक दरवाजे में आ खड़ा हुआ। वह अपने बैठने के लिये उचित स्थान ढूँढ रहा था। नेता ने कुछ ऊँची आवाज में कहा, "कमल भैयां! आगे चले आओ।" इस पर भी वह युवक कमरे के एक कोने में जा बैठा।

अब समय हो गया था। नेता ने आवाज़ दी, 'रामदीन।' इस आवाज़ के साथ ही नीचे का दरवाज़ा बन्द होने का शब्द हुआ और एक हृष्ट-पुष्ट काले रङ्ग का पुरुष सीढ़ियों से ऊपर चढ़ कमरे में आगया। संकेत पाते ही उसने अपनी जेब से मुट्ठी भर अंगूठियां नेता के सम्मुख रख दीं। नेता ने उन अंगूठियों को गिन डाला। सब इक्कीस थीं। ये अंगूठियां नेता ने एक डिबिया में, जो उसके सम्मुख कागजों के पास रखी थी, बन्द कर दीं। अब उसने उपस्थिति गिन डाली। अपने समेत इक्कीस युवक युवतियां उपस्थित थे। नौ लड़कियां थीं और ग्यारह लड़के। इक्कीसवां नेता स्वयं था। यह प्रारम्भिक कार्यवाही होजाने पर नेता उठ खड़ा हुआ और उसने कहना आरम्भ किया :—

"प्रिय साथियो! आज हमारी पार्टी का वार्षिक अधिवेशन है। इसमें पिछले वर्ष की कार्यवाही आपके सम्मुख मंजूरी के लिये रखी जायगी और पश्चात नये वर्ष का कार्यक्रम बनाया जायगा। सब से पहले पार्टी के मन्त्री आपको पिछले वर्ष की रिपोर्ट सुनायेंगे।"

इतना कह नेता अपने स्थान पर बैठ गया। नरोत्तम ने जेब से कागजों का एक पुलन्दा निकाला और खड़े होकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। वह प्रारम्भिक और साधारण विवरण सुनाकर विशेष बातों की

ओर आया।

"इस वर्ष सभासदों की संख्या में दो की वृद्धि हुई। इनके नाम माया और मोहिनी हैं। ज्यों ज्यों सभासदों की संख्या बढ़ती जाती हैं पार्टी के नेता का उत्तरदायित्व भी बढ़ता जाता है। यह अधिकाधिक आवश्यक होता जाता है कि नवीन सभासदों को भली भांति परखकर सम्मिलित होने की आज्ञा दी जाय। इस समय सभासदों की पूरी संख्या ब्यालीस है। इन ब्यालीस व्यक्तियों की रक्षा का भार नेता पर है। यदि एक भी डरपोक, कायर अथवा धोखेबाज इस पार्टी में आगया तो सब की जान खतरे में पड़ जावेगी। इस कारण नये सभासदों का प्रवेश इतने वेग से नहीं हुआ जितना पहले वर्षों में होता रहा है। नये सभासदों को पार्टी में सम्मिलित करने में यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक पार्टी को छोटे २ हिस्सों में विभक्त न कर दिया जाय। इस विषय की आयोजना को पिछले वर्ष पार्टी ने स्वीकार नहीं किया था। अब नये वर्ष की आयोजनाओं में पुनः विचार के लिये इसको रखा जायगा।

"इस वर्ष धन की बहुत कठिनाई रही। इस कारण नहीं कि पिछले वर्षों से इस वर्ष की आय कम थी प्रत्युत इस कारण कि इस वर्ष कार्यक्रम को अधिक विस्तृत कर दिया गया है। चन्दा केवल दो सौ पैंतालीस रुपये हुआ। शेष रकम पैदा करने के लिये तीन डाके डाले गये। तीनों सफल रहे। इस पर भी रुपया कुछ अधिक नहीं मिला। सफलता इस रूप में समझनी चाहिये कि तीनों काम इतनी सफाई से किये गये कि किसी प्रकार की जान व माल की हानि नहीं हुई। इन उपायों से भी जब आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो सकीं तो पूर्णिमा दीदी ने एक फिल्म-कम्पनी में नौकरी कर रुपया एकत्रित किया। मैंने भी एक बीमा कम्पनी का काम करना आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार इस वर्ष चन्दा दो सौ पैंतालीस रुपया, पूर्णिमा की आय का भाग जो पार्टी को मिला एक हजार पांच सौ रुपया, मेरी आय का भाग एक हजार रुपया, डाकों से प्राप्त धन आठ हजार चालीस रुपया। इस प्रकार कुल आय दस हजार सात सौ पिच्यासी

रुपये हुईं।

"कुल व्यय दस हजार तीन सौ रुपये हुए। इसका व्योरा इस प्रकार है। दो हजार तीन सौ रुपया सफर-खर्च और आठ हजार रुपया कारखाने का खर्चा। इसमें रिवाल्वर, कारतूस और कुछ बन्दूकों की खरीद भी सम्मिलित है। सब से अधिक व्यय उस मशीनरी के लगाने में हुआ है जिसमें बन्दूकों की नालियां बनाई जा सकती हैं। बकाया चार सौ पिच्यासी रुपये की रकम हाथ में है।

"इस वर्ष डाके के अतिरिक्त लाल चिट्ठियां देश भर में बांटी गयीं। बहुत सा सफर-खर्च इसी काम में हुआ है।"

इतना कह नरोत्तम ने कागज लपेट नेता के सम्मुख रख दिये और अपने स्थान पर बैठ गया। अब नेता ने सबको सम्बोधन कर कहा, "रिपोर्ट पढ़ दी गयी है। यदि किसी को इस पर कोई आपत्ति हो तो कर सकता है।"

इस पर एक कोने में बैठा हुआ एक युवक, जिसको नेता ने कमल कह कर सम्बोधन किया था, उठ खड़ा हुआ। उसने पूछना आरम्भ किया, "कुल आय जो पूर्णिमा को फिल्म कम्पनी से हुई कितनी थी?"

"तीन हजार रुपया", नेता ने उत्तर में कहा।

"वह सब रकम पार्टी को क्यों नहीं दे दी गई?"

"उसने कुल आय नहीं दी।"

"क्यों नहीं दी?"

"उसकी इच्छा ऐसी ही थी।"

"मैं पूछना चाहता हूँ कि यदि किसी सदस्य को कहीं से पार्टी के लिये धन लाने के लिये कहा जाय तो क्या उसका किसी प्रकार यह अधिकार हो जाता है कि वह उसमें से कुछ रख ले?"

नेता ने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं।"

इस पर कमल ने फिर पूछा, "तो पूर्णिमा को डेढ़ हजार रुपया रख लेने की इज़ाजत क्यों दी गई है?"

नेता ने अब खड़े होकर कहना आरम्भ किया, "पूर्णिमा पार्टी के कोष के लिये न तो चन्दा मांगने गयी थी और न ही डाका डालने। अन्य कई सदस्यों की भांति वह फिल्म-कम्पनी में काम रोजगार के रूप में करती थी। उसने अपनी आय का पचास प्रति शत ही देना उचित समझा है।"

अब प्रश्नकर्ता ने विषय को बदल डाला और पूछा, "इस वर्ष में कोई राजनैतिक 'एक्शन' क्यों नहीं किया गया?"

नेता ने खड़े २ ही उत्तर देना आरम्भ कर दिया : "इस वर्ष परिस्थिति अनुकूल नहीं थी। आतंक के कार्य तो तभी सफल होते हैं जब जन-साधारण की मानसिक अवस्था आतंक के कामों को स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत हो। गांधी-आन्दोलन के कारण सर्व-साधारण की रुचि दूसरी ओर लग रही है। ऐसी अवस्था में मैंने यही उचित समझा कि हम चुपचाप तैयारी करते जायें। अब सत्याग्रह-आन्दोलन के लिये क्षेत्र प्रस्तुत किया जा रहा है। यह आंदोलन निश्चय रूप में असफल होगा। उस समय हमारे 'एक्शन' का समय होगा। इतने समय तक हम लोगों को साधन इत्यादि एकत्रित करने में संलग्न रहना चाहिये।

"मैं समझता हूँ कि भाई कमल के प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है। यदि किसी और को कुछ पूछना हो तो पूछ सकता है।"

अब कमल के समीप बैठा हुआ एक युवक उठ खड़ा हुआ। वह पूछने लगा, "इस वर्ष केवल दो लड़कियों को ही पार्टी में सम्मिलित किया गया है। क्या किसी पुरुष ने अपने आपको सदस्य बनने के लिये उपस्थित नहीं किया?"

"हमारी पार्टी का नियम यह है कि पार्टी में रंगरूट सदस्यों की सिफारिश पर लिये जाते हैं। जब किसी सदस्य को यह प्रतीत होता है कि अमुक व्यक्ति हमारी पार्टी का सदस्य बनने के योग्य है तो वह नेता को इस बात की सूचना देता है और नेता उस व्यक्ति के मन के भावों की तथा उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों की परीक्षा करता व कराता

है। परीक्षा का परिणाम ठीक होने पर वह व्यक्ति सदस्य बना लिया जाता है। इस वर्ष किसी भी उपयुक्त पुरुष के लिये किसी भी सदस्य की सिफारिश नहीं आई।"

"मैंने मिस्टर राम आप्टे का नाम आपके पास भेजा था। वह क्यों नहीं लिया गया?"

"वह हमारी पार्टी में रहने के लिये ठीक व्यक्ति नहीं है।"

"उसमें क्या दोष है?"

"वह खुफिया पुलिस में है।"

"यह ग़लत है।"

"मैंने भली भांति जांच पड़ताल करवा ली है।"

"आपने भूल की है।"

नेता ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु रिपोर्ट पास करने का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। उसने कहा, "इस वाद-विवाद से अब कुछ लाभ नहीं है। मन्त्री ने जो पिछले काम की रिपोर्ट उपस्थित की है उसे स्वीकार किया जाय।"

इस प्रस्ताव के उपस्थित होते ही कमल उठकर कहने लगा, "मैं रिपोर्ट के स्वीकार किये जाने का विरोध करता हूँ। रिपोर्ट को स्वीकार करने का अभिप्राय यह होगा कि हम सब पिछले वर्ष की कार्यवाही पर सन्तोष प्रकट करते हैं, और उसे अस्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि हमें पिछले वर्ष के काम पर सन्तोष नहीं है और साथ ही हम नेता पर, जो हमारी पार्टी का पूर्णरूपेण कर्ताधर्ता है, अविश्वास का प्रस्ताव करते हैं। मैंने जो प्रश्न अभी पूछे थे और जिनका उत्तर नेता ने दिया है उनका अभिप्राय भी यह था कि आप लोगों को पार्टी में मची हुई धांधली का नमूना दिखाया जाय।

"यदि आप पार्टी में अकर्मण्यता का कारण जानना चाहते हैं तो आपको नेता के निजी जीवन का अध्ययन करना होगा। यह पार्टी कर्मवीरों की है; विषय-लोलुप, कामुकता में रत, वासना के दासों की नहीं।

जिस पार्टी में ऐसे नेता हों वहां क्या काम हो सकता है? जब हम पार्टी के लिये धन प्राप्त करने के लिये डाका डालते हैं तो हम वहां से प्राप्त धन में से अपने लिये कुछ रख नहीं लेते तो फिर पूर्णिमा ने जब इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर फिल्म-कम्पनी में काम किया तो उसे प्राप्त-धन में से क्यों पचास प्रति शत रख लेने की छूट दे दी गयी? इसी प्रकार कुछ और खर्चे हैं जो पार्टी के फण्ड से किये गये। तपस्विनी को कलकत्ते जाने का खर्च दिया गया। मैं पूछना चाहता हूँ ऐसा क्यों किया गया? तपस्विनी वहां केवल अपनी चिकित्सा करवाने गयी थी और वह चिकित्सा भी ऐसे रोग की थी जो नेता जी महाराज की कृपा से हुआ था। मैं..."

अभी कमल ने अपना कहना समाप्त नहीं किया था कि नरोत्तम बीच में खड़ा हो गया और कुछ कहना ही चाहता था कि नेता ने उसे बैठ जाने की आज्ञा दी। नेता ने कहा, "शान्ति! शान्ति! इस सभा का मैं प्रधान और प्रबन्धकर्ता हूँ। जब तक मैं बोलते हुए सदस्य को बन्द नहीं करता तब तक कोई दूसरा सदस्य बीच में नहीं बोल सकता। मैं कमल को, यदि वह चाहे तो, अपना वक्तव्य जारी रखने की आज्ञा देता हूँ।"

कमल ने फिर कहना आरम्भ किया, "मुझे और अधिक नहीं कहना। मैं केवल इतना और कहना चाहता हूँ कि नेता का जीवन हमारी पार्टी की कुछ लड़कियों ने पतित कर दिया है और हम उसके प्रबन्ध और काम को सन्तोष से नहीं देख सकते। मेरा प्रस्ताव यह है कि पिछले वर्ष की रिपोर्ट स्वीकार न की जावे। इस प्रकार नेता और अन्य कार्यकर्ताओं पर अविश्वास का प्रस्ताव हो सकेगा। पश्चात हम नया नेता चुनेंगे।"

जब कमल इतना कह चुका तो नरोत्तम जिसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं उत्तर देने के लिये उठा। परन्तु नेता ने उसे यह कहकर बैठा दिया कि अभी उसे कुछ कहना है। नेता ने सब को सम्बोधन करते हुए कहा, "जहां तक रिपोर्ट के स्वीकार करने का सम्बन्ध है मैं कहूँगा; परन्तु जो लाञ्छन मुझ पर लगाये गये हैं यद्यपि पिछले वर्ष में कार्य-शिथिलता

का कारण बताये जाते हैं तो भी व्यक्तिगत होने से मैं सभा में लाने की स्वीकृति नहीं देना चाहता।"

इस पर कमल ने कहा, "कार्य और कारण का सम्बन्ध अटूट है। एक पर बहस नहीं की जासकती जब तक दूसरे का उल्लेख न किया जाय।"

उत्तर में नेता ने फिर गम्भीर भाव से कहा, "कमल भैया ने कुछ ऐसी बातें कह डाली हैं जो मेरे तथा कुछ अन्य सदस्यों के निजी चरित्र से सम्बन्धित हैं। अच्छा तो यह था कि उनका उल्लेख न किया जाता। अब भी मेरी सम्मति यही है कि इन बातों को छोड़ दिया जाय और केवल पिछले वर्ष के काम पर ही ध्यान दिया जाय। परन्तु यदि एक पक्ष के लोग ऐसी असभ्यतापूर्ण बातें करेंगे तो मुझे उनके उत्तर देने वालों को भी कहने का अवसर देना होगा।"

अब वह युवक जो कमल के समीप बैठा था और जिसने पहले अपने एक मित्र के सदस्य न बनाये जाने के विषय में आपत्ति उठाई थी खड़ा होगया और बोलने लगा, "मैं कमल भैया की बात का समर्थन करता हूँ कि कार्य और कारण को पृथक पृथक नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि पिछला वर्ष तो व्यतीत हो चुका और उसमें किये गये कामों को अथवा अपव्यय किये गये काल को वापिस लौटाया नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य किया जा सकता है कि भविष्य में ऐसा न हो सके। हमारा विश्वास है कि नेता तथा उसके साथियों के कारण पिछले वर्ष में कुछ भी काम नहीं हो सका और जब तक वे अधिकारी बने रहेंगे कुछ भी काम नहीं हो सकेगा। इसलिये इस बात की आवश्यकता पड़ जाती है कि हम उनके व्यक्तिगत जीवन की आलोचना करें। हमारी पार्टी कोई मज़हबी सभा नहीं जहां पर बाहिरी जीवन ही के साथ दूसरों का सम्बन्ध हो। आर्य-समाज तथा सनातन-धर्म सभा में या और ऐसी ही संस्थाओं में तो चन्दा देना, सन्ध्या-हवन करना, मन्दिर में जाना इत्यादि बातें हैं जिनसे सभासदों का मूल्य लगाया जाता है। वहां एक वकील झूठा

मुकद्दमा करता हुआ भी, एक दूकानदार झूठ बोलता हुआ भी समाज में प्रतिष्ठित माना जा सकता है। कारण यह है कि वहां सदस्यों के निजी जीवन की समाज में आलोचना नहीं हो सकती। इसके विपरीत हमारी पार्टी में प्रत्येक सदस्य अपना सर्वस्व पार्टी के हाथ में दे बैठा है। प्रति क्षण हमारा जीवन मौत के मुख में रहता है। ऐसी स्थिति में हम एक भी भूल किसी एक भी सदस्य की स्वीकार नहीं कर सकते।

"केवल डाके डालने से हमारी पार्टी का ध्येय पूरा नहीं हो सकता। न ही केवल लाल चिट्ठियां बांटना ही पर्याप्त है। क्रान्तिकारी आन्दोलन इस प्रकार नहीं चल सकता। इसमें सजीवता होनी चाहिये। पिछले वर्ष इलाहाबाद के कलक्टर के बंगले वाला 'एक्शन' सफल हुआ तथा उसका प्रभाव भी बहुत पड़ा। इस प्रकार की चमत्कारक बातें ही इस आंदोलन को सजीव रख सकती हैं। हमारा नेता, प्रतीत होता है, मोह-ममता में फँस गया है। वह वासना में लिप्त होने से पिछले वर्ष कोई नया कार्यक्रम नहीं बना सका। मैं ऐसा नेता चाहता हूँ जिसका मस्तिष्क बिजली की भांति काम करता हो, जिसका हृदय वज्र की भाति कठोर हो, जिसके कान लड़कियों के मीठे वचनों के लिये लालायित न होकर अस्त्र-शस्त्रों की झंकार सुनना चाहते हों, और जो प्रेमालाप के कोमल उपचारों को दूर हटाकर रण-क्षेत्र में आजाना चाहता हो।

"इन शब्दों के साथ मैं कमल के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।"

नेता ने अब उठकर कहा, "जब इतना कुछ कहा जा चुका है तब दूसरे पक्ष को सफाई देने का अवसर न देना अन्याय होगा। इस कारण मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि अब चित्र का दूसरा रुख भी देख लें। पहले कारणों पर ही विवाद होगा।"

अब नरोत्तम के स्थान पर पूर्णिमा उठी। पूर्णिमा के क्रोध की मात्रा नरोत्तम से कम नहीं थी। हां, अन्तर यह था कि वह दृढ़ निश्चय से उठी थी और उक्त बातों का उत्तर धमकियों से न देकर केवल युक्तियों से ही देना चाहती थी। नरोत्तम से यह सम्भव नहीं था। एक तो वह

पुरुष होने से उदण्डता का उत्तर उदण्डता में देना सुगम समझता था। दूसरा, वह सब बातों से परिचित नहीं था। पूर्णिमा ने कहा, "अन्तिम वक्ता और मिस्टर कमल ने जो कुछ अभी कहा है मैं उससे सोलह आने सहमत हूँ। मैं भी चाहती हूँ कि हमारी कोई भी बात एक दूसरे से छिपी न रहे। मैले को छिपाने से दुर्गन्ध बढ़ती है, घटती नहीं। इस कारण जो कुछ गन्दगी है वह आज ही निकाल बाहर करनी चाहिये। दुष्टता करने वाले, पार्टी में अत्याचार, झूठ और ठगी फैलाने वाले को पार्टी से बाहर कर देना ही उचित होगा। परन्तु प्रश्न तो यह उपस्थित होता है कि नेता इसमें दोषी है भी या नहीं।

"मैं आपके सम्मुख उस समय का वृत्तान्त रखना चाहती हूँ जब बहिन तपस्विनी पार्टी में सम्मिलित हुई थी। सब से पूर्व मिस्टर कमल उससे प्रेम प्रकट करने लगे थे। तपस्विनी बहिन ने उसके इस चलन को ठीक नहीं समझा और उसे ऐसी बातें करने से रोक दिया। एक दो बार तो कमल डांटा भी गया। इस पर भी जब वह नहीं माना तो तपस्विनी ने उससे एकान्त में मिलना-जुलना बन्द कर दिया। इन दिनों उसने सब बातें मुझे बता दीं और मुझे अपने साथ रखने लगी। एक दिन हम मकान नं० ३ में डुप्लीकेटर पर चिट्ठियां छाप रही थीं कि कमल आगया। काम लगभग समाप्त हो चुका था। छपे पर्चों को कायदे में रखते रखते कमल ने बिना मेरी उपस्थिति का ध्यान किये तपस्विनी से बहुत ही अश्लील भाव में बातचीत करनी आरम्भ कर दी। मैंने उसे मना किया। इस पर वह तपस्विनी का मुख चुम्बन करने को लपका। मेरे हाथ में डुप्लीकेटर में स्याही लगाने का बेलन था। मैंने उसी को दे मारा। बेलन कमल के घुटने पर इस जोर से लगा कि वह वहीं बैठ गया। वह चल नहीं सकता था। उसे तांगे में बैठाकर घर भेजा गया। आप में से बहुतों को स्मरण होगा कि सन १९२८ के आरम्भ में कमल तीन महीने तक टांग के दर्द से बीमार रहा था।"

यह बात सुन सब लोग हंसने लगे।

पूर्णिमा ने फिर कहना आरम्भ किया, "तपस्विनी ने इस घटना की सूचना नेता को दे दी थी और जहां तक मुझे ज्ञात है कमल को नेता ने स्पष्ट बता दिया था कि यदि उसने अपने आचरण को न सुधारा तो पार्टी की ओर से उस पर नियमानुकूल कार्यवाही की जायगी। परन्तु कमल कब मानने वाला था। बस, बीमारी के दिनों में ही उसकी घनिष्टता मलिन्द कुमारी से होगयी। आपको ज्ञात होगा कि इस वर्ष के आरम्भ में उसने पार्टी में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु नेता की जांच-पड़ताल से पूर्व ही वह बीमार होगयी और कॉलेज छोड़ घर चली गयी। वहा उसका देहान्त हो गया। उसकी बीमारी का हाल और कारण कमल को भली भांति ज्ञात है। यदि पार्टी इसकी बाबत जांच करना चाहे तो मलिन्द की सहेलियां, जो यहां कॉलेज में पढ़ती हैं, इस विषय पर बहुत प्रकाश डाल सकती हैं। चूँकि मलिन्द हमारी पार्टी की सदस्या नहीं बन सकी इसलिये पार्टी उसके विषय में जांच करने में कदाचित कुछ लाभ न मानती हो, परन्तु इससे एक बात का निश्चय तो अवश्य हो जायगा कि नेता और पार्टी की स्त्री-सदस्याओं पर लांछन लगाने वाले का अपना चरित्र कैसा है।

इतने पर कमल क्रोध में आ बैठा २ ही कहने लगा, "यह झूठ है, सर्वथा झूठ है। इसका कोई प्रमाण नहीं।"

दूसरे सदस्यों ने 'ऑर्डर! ऑर्डर!' की आवाज़ें करनी शुरू कर दीं। नेता ने उठकर कहा, "कमल भैया! जब तुम बोल रहे थे तब मैंने सब को शांत रखा और किसी को तुम्हारे कहने में विघ्न डालने नहीं दिया। अब तुमको भी वैसा ही करना चाहिये। किसी के केवल कहने मात्र से न तो कोई बात सत्य हो सकती है, न असत्य। सत्य असत्य का निर्णय तो प्रमाणों पर होगा।"

पूर्णिमा ने अपना कथन जारी रखा :"इसी वर्ष में, मलिन्द के चले जाने के पश्चात्, श्रीमान जी की कृपा-दृष्टि मुझ पर पड़ी। मैंने इसने चिट्ठी-पत्री से बातचीत आरम्भ की। मैं समझती थी कि इसकी दुष्टता

को एक न एक दिन प्रकट करना होगा। इस कारण लिखत में आई बात से यह इन्कार नहीं कर सकेगा। मेरे साथ जो इसकी चिट्ठी-पत्री हुई है वह मेरे पास अब भी मौजूद है।" इतना कह पूर्णिमा ने अपने ब्लाउज़ के नीचे से कागजों का एक पैकट निकाला। ठीक उस समय जब पूर्णिमा यह कागजों का पैकट नेता को दे रही थी खट से एक गोली चली जो कागजों के पैकट को छेदती हुई सामने दीवार में जा लगी। गोली चलाने वाला कमल था। वह शायद और गोली चलाता परन्तु नरोत्तम ने लपककर कमल को जा दबाया। इस समय सभा में भारी गड़बड़ मच गयी। प्रायः सबने अपने २ रिवाल्वर निकाल लिये। यदि इस समय नेता गुत्थम-गुत्था होते हुए नरोत्तम और कमल के सम्मुख स्वयं न खड़ा हो जाता तो निश्चय कमल के पक्ष के लोग नरोत्तम को और नरोत्तम के पक्ष के लोग कमल को गोलियों का निशाना बना देते। उसके पश्चात उस छोटे से कमरे में रक्त-प्रवाह चल जाता। नेता ने अपने शरीर से उन दोनों को आड़ में करते हुए जोर से कहा, 'आर्डर!' नेता की ज़बान में कुछ जादू का प्रभाव था। इसी सम्मोहिनी शक्ति के कारण वह नेता बन सका था। सब लोगों का ध्यान उस ओर खिंच गया। नेता ने फिर तेज़ आवाज़ में कहा, "बन्द करो और हैंड्स अप"। पार्टी के सदस्यों में नियम और नेता की आज्ञा का पालन अनिवार्य था। इसलिये सदस्यों में इसका स्वभाव सा होगया था। अतएव प्रायः सब ने तुरन्त रिवाल्वरों को जेब में रख लिया और हाथ खड़े कर नेता की ओर देखने लगे।

इतने समय में नरोत्तम ने कमल के हाथ से रिवाल्वर छीन लिया था और कमल पीत-मुख हांफता हुआ भूमि पर बैठा था। नरोत्तम ने उसका रिवाल्वर नेता के हाथ में देकर कहा, "वह अब तुम्हारा कैदी है। उसके साथ उचित न्याय होना चाहिये।"

नेता ने सबको बैठ जाने के लिये कहा। जब सब बैठ गये तो उसने कमल को खड़े होने की आज्ञा दी। या तो कमल की टांगें उसे उठाने में अशक्त थीं या वह नेता की आज्ञा की अवहेलना करना चाहता था। वह

उठा नहीं। नेता ने उसकी दयनीय दशा का विचार कर कहा, "यदि कमल चाहे तो इस विषय की बात अभी बन्द कर दी जाय और इसकी जांच के लिये कुछ सदस्यों की एक छोटी कमेटी नियुक्त कर दी जाय जो अपनी सम्मति पूरी पार्टी के सम्मुख उपस्थित करे।"

कमल अब भी नहीं उठा। वह चुपचाप बैठा सोचता रहा। इस पर उसका साथी द्विवेदी उठा और कहने लगा, "हम छोटी-बड़ी कमेटियों की नियुक्ति में समय का अपव्यय समझते हैं और चाहते हैं कि इस विषय के सम्बन्ध में जो कुछ भी होना है अभी होजाय।"

इस पर नेता ने अन्य सदस्यों का मत जानने के लिये सब की ओर देखा। नरोत्तम ने बैठे २ कह दिया, "मैं भी चाहता हूँ कि अभी निर्णय होजाय। नित्य प्रति की खच २ हमें पसन्द नहीं।"

नेता ने जब स्थिति यह देखी तो रक्तपात होने की सम्भावना को रोकने के लिये एक प्रस्ताव रखा। उसने कहा, "इस विषय पर पुनः बात-चीत होने से पूर्व मैं चाहता हूं कि आप सब लोग अपने २ रिवाल्वर, चाकू और छुरियां निकालकर यहां जमा कर दें। मैं नहीं चाहता कि इस विषय में प्रमाणों और युक्तियों के साथ अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति से भी अपना अपना पक्ष सिद्ध किया जाय।"

इस प्रस्ताव पर सब एक दूसरे का मुख देखने लगे। सबसे पूर्व नेता ने अपनी जेब में से एक चाकू निकालकर सम्मुख रख दिया। पश्चात् नरोत्तम ने अपना रिवाल्वर निकाला और नेता के सम्मुख रखा। तब पूर्णिमा और दूसरी सदस्याओं ने नरोत्तम का अनुकरण किया। इसके पश्चात् धीरे २ सबने अपने २ हथियार निकाल नेता के सम्मुख रख दिये।

नेता ने इन हथियारों को सम्मुख रखी सन्दूकची में बन्द कर दिया। अब उसने पूर्णिमा को अपना वक्तव्य समाप्त करने को कहा। वह बोली, "ये चिट्ठियां जो मैंने नेता को दी हैं सब की सब लिखने वाले की बहुत ही पतित मानसिक अवस्था प्रकट करती हैं। मजबूर होकर मुझे एक दो चिट्ठियां आपको पढ़कर सुनानी पड़ेंगी। मेरी इच्छा नहीं थी कि इन्हें

इस प्रकार पढ़ा जाय। मैं तो केवल नेता के सम्मुख रखने के लिये ही इन्हें अपने साथ लेती आई थी। मैं चाहती थी कि पार्टी में से एक या दो न्यायकर्ता नियत कर दिये जाते और वे इस विषय में जांच-पड़ताल कर दोषी के लिये दण्ड नियत करते। परन्तु जब आप चाहते हैं कि यह बात स्पष्ट सब के सम्मुख रखी जाय तो कम से कम एक चिट्ठी मैं पढ़ देना चाहती हूँ।"

इतना कह पूर्णिमा ने चिट्ठियों के बंडल में से एक चिट्ठी निकालकर पढ़ना आरम्भ की। "मिस्टर कमल लिखते हैं:—'प्रिय वदनी! तुम प्रेम प्रेम बहुत कहती हो। मैं कहता हूँ कि प्रेम शब्द धनी लोगों ने तथा शक्तिशालियों ने अपने पाप-कर्मों को छिपाने के लिये एक सुनहरी पर्दा बना रखा है। यथार्थ में शारीरिक आकर्षण ही सब कुछ है। तुम सुन्दर हो, मैं तुमको पाना चाहता हूँ, यही यथार्थ प्रेम है। और मैं सब प्रकार से तुम्हारे योग्य भी हूँ।'........

'मैं आत्मा का आत्मा से मेल नहीं मानता। शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति ही सर्वोपरि है। जैसे धूर्त शक्तिशालियों ने परमात्मा का ढोंग रचा रखा है वैसे ही उन्होंने स्त्रियों को अपने पंजे में फंसा रखने के लिये प्रेम का जाल बिछा रखा है।'........'जब एक स्त्री अपनी सब शारीरिक कामनाओं, इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति एक पुरुष से होती देखती है तो वह उसको अपना प्रेम-भाजन, पति, स्वामी, देवता अर्थात् सब कुछ मान लेती है।'........'छोड़ो इन मानसिक दुविधाओं को। संसार में जीवन चिरकाल नहीं रहेगा। यौवन के चार दिन हैं। आओ एक बार हम इस आनन्दमय सागर में डुबकी लगा लें। कल के लिये छोड़ना ठीक नहीं। जितना सुख-आनन्द पाना है उसके लिये यही समय है। नहीं तो पीछे हाथ मलती रह जाओगी'........"

"मैं और अधिक नहीं सुनाना चाहती। यदि ऐसी चिट्ठियों तक ही बात रहती तो चिन्ता की बात न होती। परन्तु कमल तो क्रियाशील व्यक्ति है, कोरी बातों तक ही नहीं रह सकता। हां, एक भूल वह करता

रहा है। वह भूल यह थी कि इस पार्टी में जो अन्य सदस्य हैं उनको वह अपने से अधिक दुर्बल और अकर्मण्य मानता है। एक बार अपनी इच्छाओं को कार्यरूप में परिणित करने के यत्न में उसे तीन महीने तक खाट पर लेटना पड़ा। दूसरी बार उसे मेरे साथ एकान्त में मिलने का स्थान निश्चयकर अपने बायें हाथ की एक उंगली खोनी पड़ी। मैं फिल्म कम्पनी के काम से इलाहाबाद में थी; उस समय उसका पत्र पर पत्र आ रहा था। अन्त में एक पत्र में उसने सायंकाल में किले की दीवार के नीचे यमुना की सड़क पर मुझे अकेले बुलाया। मेरे न पहुँचने पर धमकी दी।"

इस समय पूर्णिमा ने एक और चिट्ठी लेकर पढ़नी आरम्भ की। लिखा था, "'प्रिये! यह अन्तिम बार विनती कर रहा हूँ। नियत स्थान पर आज अवश्य आना। अन्यथा यह बात तुम भूल नही सकती कि मैं इस संसार में जान हथेली पर रखकर घूमता हूँ। जो मनुष्य मरने से नहीं डरता वह क्या कुछ नहीं कर सकता? मेरे सम्मुख तुम्हें पाने से बढ़कर और कोई बात नहीं। निश्चित स्थान पर मिलना अन्यथा अनिश्चित स्थान पर मिलने की शक्ति भी रखता हूँ।'

"भैया के मित्र पं० मधुसूदन, जिनके घर मैं ठहरी हुई थी, मेरी सहायता के लिये किले तक जाने को तैयार हो गये। उनके हाथ में केवल एक डण्डा था। मैं उनसे पृथक वहां पहुँची। सायंकाल का समय था। कमल मधुसूदन को वहां टहलता देख घबराया। जब मैं वहां पहुँची तो पण्डित जी को वहां से टलता न देख कमल उनके पास पहुँचा और पूछने लगा, 'आप यहां किस मतलब से आये हैं?'

"पण्डित जी ने लापरवाही से उत्तर दिया, 'आपको क्यों बताऊँ?'

"इस पर कमल बहुत चकराया और जेब से पिस्तौल निकालकर बोला 'इसलिये।'

"परन्तु उसने पण्डित जी का गलत अनुमान लगाया था। पूर्व इसके कि पिस्तौल वाला हाथ उठता पण्डित जी का डण्डा इतने ज़ोर

से हाथ पर पड़ा कि पिस्तौल हाथ से निकलकर दस कदम के अन्तर पर जा गिरा। पण्डित जी लपककर पिस्तौल पर अपना पांव रख डण्डा तानकर खड़े हो गये। पण्डित जी ने धमकी देकर कहा, 'भाग जा साले, नहीं पुलिस के हवाले कर दूंगा।' कमल इतनी धमकी से नहीं डरा। वह पण्डित जी की ओर लपका, परन्तु उनका डण्डा उससे अधिक सचेत था। उसने डण्डा रोकने के लिये हाथ उठाया। डंडा बायें हाथ की उंगली पर इतने जोर से लगा कि उसको वहां से भाग जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं मिला। वह पिस्तौल मेरे पास अभी तक मौजूद है और पंडित जी के डंडे का चिन्ह उसकी उंगली पर जीवन भर रहेगा।"

पूर्णिमा का कथन समाप्त होने पर तपस्विनी ने नेता से आज्ञा मांग कहना आरम्भ किया, "मेरे विषय में जो कुछ कमल ने कहा है वह सर्वथा असत्य है। पूर्णिमा ने जो कुछ कहा है उसका मेरे पास एक प्रमाण भी है। मुझे भी कमल ने एक पत्र लिखा था, परन्तु मैंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। इस कारण उसने भी और कोई पत्र नहीं लिखा। मेरे कलकत्ते जाने के विषय में यह बात ग़लत है कि मैं बीमार होकर गयी थी। बात यह थी कि बहिन कमलिनी को, जो बाबू महेश्वरलाल जी की लड़की को पढ़ाती थी, बाबू जी का रिवाल्वर चुराने के लिये नियुक्त किया गया था। कमलिनी ने कुछ दिन को बाबू साहब के यहां से छुट्टी ले ली और उनकी स्त्री को बताया कि वह अपने एक रिश्तेदार के यहां कलकत्ते जा रही है। मैं उसके साथ कलकत्ते गयी। वहां सरकारी अस्पताल में कमलिनी केवल बहानाकर दवाई लेने जाती थी। कुछ दिन के पश्चात कमलिनी का टिकट लेकर मैं दवाई लेने जाने लगी। इसके पश्चात मैं वहां अस्पताल में दाखिल होगयी, परन्तु मैंने कमलिनी का ही नाम वहां पर लिखवाया था। इस बीच में कमलिनी चोरी से बनारस आई और एक दिन यहां रही। इस समय में वह रिवाल्वर चुराकर फिर कलकत्ते चली गयी। इस सारे झंझट का आशय यह था कि यदि कमलिनी पर सन्देह हो तो उसकी 'एलिबी' बनाई जा सके। इस बात को

कितना बिगाड़कर आपके सम्मुख रखा गया है। जब मैं कलकत्ते गयी थी तो मेरा खर्चा पार्टी के फंड में से दिया गया था।"

अब नेता ने कहा, "जहां तक लड़कियों के सम्बन्ध की बात है वह आप सुन चुके हैं। कमल ने जो पत्र तपस्विनी को लिखा था वह भी यहां उपस्थित है। जिसको पढ़ना हो पढ़ सकता है। अब एक-दो बातें और आपके सम्मुख रखनी हैं। एक तो यह कि पूर्णिमा का फिल्म-कम्पनी में काम करना हमारे डाका डालने के काम से सर्वथा भिन्न है। दोनों में अन्तर यह है कि पहला काम कानून के विपरीत है, दूसरा नहीं। दूसरी बात यह है कि डाका डालने में पार्टी की सब शक्ति उस पर लगा दी जाती है, परन्तु फिल्म-कम्पनी में काम करने में पार्टी का किंचित मात्र भी हाथ नहीं। तीसरा अन्तर यह है कि उस काम के करने में सारी पार्टी अपने आपको खतरे में डाल देती है, पूर्णिमा के फिल्म-कम्पनी में काम करने से ऐसी कोई सम्भावना नहीं थी। और भी बात है। डाका डालना पार्टी की मंजूरी, राय और आयोजना के अनुसार होता है, फिल्म-कम्पनी में काम पूर्णिमा ने अपनी इच्छा से करना स्वीकार किया था। इसलिये अपनी आय में से जो भाग भी उसने दिया है वह हमें धन्यवादपूर्वक स्वीकार करना चाहिये। आप में से भी तो कुछ लोग अपना २ निजी काम करते हैं और उस आय में से केवल बहुत कम अंश पार्टी में देते हैं। पूर्णिमा ने तो पचास प्रति शत दिया है।

"पूर्णिमा ने डेढ़ हजार रुपया पार्टी को दे दिया है। नरोत्तम ने पिछले छः मास में दो हजार पैदा किया है और उसमें से उसने एक हजार पार्टी को दिया है।

"इस अवस्था में मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि पिछले वर्ष की कार्यवाही पास कर दी जाय।"

अब इस प्रस्ताव पर राय ली गयी। पन्द्रह सदस्य रिपोर्ट को स्वीकार करने के पक्ष में थे और पांच सदस्य विपरीत। इन पांच में एक कमल भी था।

जब यह बात स्वीकार हो चुकी तो नेता ने खड़े होकर कहा, "जो अभियोग कमल पर पूर्णिमा और तपस्विनी ने लगाये हैं उनका निर्णय अभी शेष है। इस विषय में मैं आपसे सम्मति लेना चाहता हूँ। प्रश्न यह है कि क्या कमल पार्टी में गड़बड़ मचाने के दोष में अपराधी है? जो उसे अपराधी मानते हैं वे हाथ खड़ा करें।"

कमल को अपराधी ठहराने वाले पन्द्रह सदस्य थे और निर्दोष ठहराने वाले पांच। ये पांच वही थे जो रिपोर्ट को अस्वीकार करने की सम्मति दे चुके थे।

नेता ने फिर कहा, "पार्टी के अपराधी सदस्य को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार नेता को है। मैं कमल को क्या दण्ड दूं इस विषय में मैं फिर किसी समय निर्णय करूंगा। इस समय आपके निर्णय से कि कमल अपराधी है मैं कमल को केवल यह आज्ञा देता हूँ कि वह बिना मुझसे मिले बनारस से बाहर न जाय, और यदि उसने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया तो उसको प्राण-दण्ड दिया जायगा।"

[ २ ]

उस दिन पार्टी की मीटिंग समाप्त होने के साथ ही नेता ने कमल को गायघाट वाले मकान में अगले दिन दो बजे दिन को आने की आज्ञा दी।

इस समय नरोत्तम भी उपस्थित था। कमल ने पहले आते ही यह आपत्ति उठाई कि नरोत्तम वहां क्यों है। नेता ने यह कहकर कि पार्टी के मन्त्री का होना आवश्यक है, बात आरम्भ कर दी। उसने कहा, "कल की बातों को सुनकर और तुम्हारी लिखी चिट्ठियों को देखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि तुम्हारा पार्टी में रहना उचित नहीं।"

इस पर कमल ने कहा, "मेरी सफाई तो ली ही नहीं गयी। कल का वोट अनियमित है।"

नेता—"तुमने अपनी सफाई क्यों नहीं दी?"

"व्यर्थ थी। उपस्थित लोगों में लड़कियां अधिक थीं और वे लड़कियों का पक्ष अवश्य लेतीं। बीस की उपस्थिति में नौ लड़कियां थीं

और एक नरोत्तम था। यदि सब के सब शेष लड़के मेरे पक्ष में सम्मति देते तो भी तुम अपने कास्टिङ्ग वोट से मुझे दोषी ठहरा देते। ऐसी अवस्था में कुछ कहना व्यर्थ था।"

"देखो कमल! तुम अब भी अपनी सफाई दे सकते हो और यदि तुम मुझे विश्वास दिला दो कि तुम पर जो दोषारोपण किया गया है वह मिथ्या है तो मैं तुम्हें निरपराध सिद्ध कर दूंगा और तुम्हारे लिये कोई दण्ड नियत नहीं करूंगा।"

"मैं निरपराध हूँ। मुझे अपने मन में इसका किंचितमात्र भी संशय नहीं। तुम मानो चाहे न मानो मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं अब तुम्हारी पार्टी में नहीं रहूँगा। मैं अपनी नयी पार्टी बनाऊँगा।"

"तुम जानते हो कि कोई सदस्य लड़कर पार्टी से बाहर नहीं हो सकता। पार्टी से निकाले जाने का अर्थ है संसार से बाहर निकाल दिया जाना। इस कारण यदि अब भी तुम अपनी सफाई दे सको तो मैं तुम्हें पार्टी में सम्मिलित रहने दे सकता हूँ और फिर यदि तुम्हारी स्वतन्त्रता से काम करने की इच्छा होगी तो पार्टी का एक भाग तुम्हारे आधीन किया जा सकेगा। इस प्रकार तुम्हारी यह कामना कि तुम नेता बनकर काम करो पूर्ण हो जायगी।"

"परन्तु बात यह है कि कोई बात अपराध है अथवा नहीं, यह अपने अपने विचारों पर निर्भर है। कोई समय था कि श्रीकृष्ण रुक्मणी को हर लाया था और उसे पाप नहीं माना गया। द्रौपदी पाच पतियों के पास रहती हुई भी पवित्र मानी गयी। ये सब बातें आजकल लोगों को स्वीकार नहीं। ऐसा करने वाले को अपराधी माना जाता है। इसी प्रकार जो कुछ मैंने किया है वह मैंने अपने मन में ठीक समझकर किया है।"

"परन्तु कमल! तुम एक बात को भूल रहे हो। किसी पर जबरदस्ती कभी भी उचित नहीं मानी गयी। यदि तरङ्गिनी अथवा पूर्णिमा तुम्हारे संग विवाह कर अथवा बिना विवाह के रहना पसन्द करतीं तब तो तुम पर कोई दोषारोपण न करता। तुम्हारा दोष तो यह है कि तुमने उनके

मन के विपरीत उनका पति बनने का यत्न किया। इस पर जब तुम असफल रहे तो उनको धमकियाँ देने लगे।"

"देखो धीरेन्द्र! मैं स्त्रियों को पुरुषों के मनोरंजन की सामग्री समझता हूँ। इसी कारण मैंने लड़कियों का पार्टी में सम्मिलित होना स्वीकार किया था। इसमें उनकी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"यदि यह बात थी तो तुमने मुझ पर जो दोष लगाये थे उनका अभिप्राय क्या था?"

"यदि तुम यह सब दुराचार चोरी चोरी न करके स्पष्ट रूप में मान जाते तो मैं तुमको अपने विचार के अनुकूल समझता और तुमसे झगड़ा न करता।"

"चोरी तो तब की जाती है जब किसी पाप का अस्तित्व हो। मेरा व्यवहार तो सब सदस्यों के साथ एक समान है। तपस्विनी की बात तुमको ज्ञात हो गई है। पूर्णिमा का विवाह अब शीघ्र ही होने वाला है। इससे तुम समझ सकते हो कि मेरा उनसे कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं जो छिपाया जाना आवश्यक है। यह तो तुम्हारा भ्रम है कि मेरा उनसे ऐसा सम्बन्ध है अथवा रहा है। परन्तु मैं पूछता हूँ यदि तुम स्वयं अपने उस व्यवहार को दुराचार नहीं मानते तो जब तुम किसी दूसरे को, सत्य अथवा असत्य ही, वही काम करते देखते हो तो नाराज़ क्यों होते हो? यह तो और भी बुरा है।"

"कुछ भी हो मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।"

"इसी कारण तो पार्टी ने तुम्हें दोषी माना है। यदि तुम्हारा पार्टी के बाहर अथवा भीतर किसी स्त्री से सम्बन्ध होता और उस सम्बन्ध में स्त्री की स्वीकृति भी होती तो तुम दोषी न माने जाते। यदि तुम किसी स्त्री पर, जो पार्टी के बाहर की होती, बलात्कार करते अथवा करना चाहते तो तुम्हें दोषी ठहराने के लिये पार्टी को कष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी। तुमने पार्टी की सदस्याओं पर बलात्कार करने की इच्छा और प्रयत्न किया। यह तुम्हारा दोष है। तुमने अभी तक इस

बात को झूठ नहीं बताया, प्रत्युत तुम्हारी बातों से यह प्रतीत होता है कि तुमने यह आचरण किया और तुम इस आचरण को बुरा नहीं मानते। इसमें दोष तीन हैं। एक तो यह कि तुमने पार्टी के सदस्यों को अकारण तङ्ग किया, उनकी स्वतन्त्रता में बाधक हुए। दूसरा अपराध यह है कि उन हथियारों से, जो तुमको पार्टी ने दिये हैं, तुमने पार्टी के सदस्यों को मार डालने का यत्न किया। तीसरा, जानबूझ कर अथवा अनजाने, बिना प्रमाण रखे, तुमने झूठे दोषारोपण किये। ये सब पार्टी में अनियमता फैलाने वाली बातें हैं। बताओ, क्या तुम इन बातों को मानते हो?"

"मैंने जो कुछ किया है वह किसी प्रकार भी पार्टी के नियमों के विरुद्ध नहीं किया। पार्टी का सम्बन्ध केवल उन कार्यों से है जिनके लिये पार्टी बनाई गई है। पार्टी एक पुलिस का अङ्ग नहीं। मैं जो कुछ भी निजी रूप में करता हूं वह चाहे पार्टी के सदस्यों से हो अथवा पार्टी से बाहर वालों से हो उसके लिये सब प्रकार से देश और समय के कानून से दण्ड पा सकता हूं और पाने के लिये तैयार हूं। पार्टी को पुलिस का काम हाथ में लेने की क्या आवश्यकता है?"

"जहां तक तो पार्टी के बाहर के लोगों से तुम्हारे व्यवहार का सम्बन्ध है तुम ठीक कहते हो। यद्यपि तब भी कुछ लोग तुम्हें पार्टी का एक अच्छा सदस्य न मानते, तो भी पार्टी तुम्हारे पर न्याय करने न बैठती। परन्तु पार्टी तुम्हारी ज़बरदस्ती पार्टी के अन्य सदस्यों पर सहन नहीं कर सकती।"

"पार्टी के इस व्यवहार के लिये कौन सा नियम है?"

"यह है। पार्टी के सब सदस्य समान अधिकार और स्वतन्त्रता रखते हैं। जैसा तुम कर सकते हो, दूसरे भी तुम्हारे साथ वैसा ही कर सकते हैं। अगर पार्टी दूसरों को तुम्हारे पर पिस्तौल का वार नहीं करने देती तो तुम्हें भी इस प्रकार का उच्छृङ्खलतापूर्ण कार्य करने नहीं दे सकती। जब दूसरे तुम पर तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल बल-प्रयोग नहीं कर पाते

तो तुम भी पार्टी की स्त्री-सदस्याओं पर उनकी इच्छा के प्रतिकूल बलात्कार कैसे कर सकते हो ? यह तो एक सामान्य सामाजिक नियम है, जिस पर प्रत्येक को चलना चाहिये, चाहे वह हमारी पार्टी का सदस्य हो अथवा न हो।"

"मिस्टर धीरेन्द्र ! मुझे यह फिलॉसफी समझ में नहीं आती। मैं तो एक बात जानता हूं। वह यह कि जब कभी भी पार्टी ने मुझे किसी जान-जोखम के काम पर नियुक्त किया है, मैंने वह काम निर्भीकता से पूरा किया है। किसी लड़की से मेरा कैसा व्यवहार है इसमें हस्तक्षेप करने का पार्टी को अधिकार नहीं।"

धीरेन्द्र ने अभी भी कमल को सीधे मार्ग पर लाने की आशा नहीं छोड़ी। वह फिर बोला, "हमारी पार्टी एक छोटी सी समाज है। समाज में रहते हुए मनुष्य को पूर्ण रूप से समाज के नियमों के आधीन रहना होता है। तुम समाज के नियमों को भंग कर समाज में नहीं रह सकते।"

"समाज मनुष्य के लिये बनाई गयी है या मनुष्य समाज के लिये ? यदि समाज मनुष्य के लाभ के लिये है तो उसको मनुष्य की स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं।"

"मनुष्य समाज के बिना नहीं रह सकता, इस कारण समाज बनानी पड़ती है। समाज बनाते समय मनुष्य को कुछ अंशों में अपनी स्वतंत्रता समाज के आधीन करनी पड़ती है। समाज में सुखपूर्वक रहने के लिये सब से प्रथम नियम यह है कि तुम समाज के दूसरे सदस्यों पर अत्याचार नहीं कर सकते।"

"यह कौन निर्णय करे कि अमुक काम अत्याचार है और अमुक नहीं।"

"समाज के नियम जो बहुमत से बने हों।"

"बहुसंख्या तो मूर्खों की होती है। यदि बहुमत से सब बातें निश्चय की जावें तो संसार उन्नति के स्थान पर अवनति की ओर जाने लगेगा।"

"यह तुम्हारा भ्रममात्र है। कभी २ ऐसा होता है कि स्वार्थी लोग जन-साधारण को भूल में डालकर ऐसे नियम बना लेते हैं जो उनके स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। परन्तु यह सदैव नहीं हो सकता। समय समय

पर महा-पुरुष जन-साधारण को स्वार्थी लोगों के प्रभाव से मुक्त करते रहते हैं। वे उन नियमों को तोड़ते रहते हैं जो समाज-हित के विपरीत समुदाय विशेष के लाभार्थ होते हैं। अतिरिक्त इसके सर्व-साधारण भी सामान्यतः अपने हितों को समझता है। इस प्रकार मनुष्य तथा समाज दोनों उन्नति की ओर जाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। परन्तु स्वार्थी लोगों द्वारा सर्व-साधारण की आंखों पर डाला हुआ पर्दा सदा नहीं रह सकता।"

"परन्तु जब तक सर्व-साधारण की बुद्धि पर पर्दा है तब तक तो समाज के नियम अन्यायपूर्ण हो सकते हैं।"

"इस अन्याय के विरुद्ध तुम अपनी आवाज उठा सकते हो।"

"क्या हज़रत ईसा को जब फांसी दी गई थी वह समाज के अन्याय को अपने विचारों के प्रचार द्वारा मिटा सका था? क्या सुकरात को जब विष का प्याला पिलाया गया था उसने कम युक्तियां दी थीं? इनसे क्या लाभ हुआ? समाज के नियम अन्यायपूर्ण थे। वे प्रायः अन्यायपूर्ण होते हैं। इसका कारण यह है कि समाज के नियम बहुमत पर आधार रखते हैं और बहुमत प्रायः मूर्खतापूर्ण होता है।"

"तुम्हारे कथन में कुछ सचाई अवश्य है परन्तु ये सब युक्तियां तुम्हारे व्यवहार पर लागू नहीं होतीं। हज़रत ईसा अथवा सुकरात ने कोई ऐसा काम नहीं किया था जो सर्व-साधारण पर अत्याचार कहा जा सके। वे अपने विचारों का प्रचार करते थे। किसी व्यक्ति को उन्होंने अपने विचार बलपूर्वक मनाने का यत्न नहीं किया। उन पर जो दोषारोपण किया गया था वह कुछ स्वार्थी लोगों के झूठे प्रचार के कारण था। जन-साधारण इन धूर्त, स्वार्थियों द्वारा मिथ्या मार्ग पर ले जाया गया था। परन्तु तुम्हारा व्यवहार तो ईसा और सुकरात से सर्वथा उलटा है। तुमने [illegible] और नलिनी को अपने विचार का बनाना चाहा। उनको तुम्हारे विचार पसन्द नहीं आये। इस पर तुम बलपूर्वक उनको अपने मतानुकूल बनाना चाहते थे। ऐसी अवस्था में तो अन्याय करने

वाले तुम हो, न कि पार्टी जो तुम्हारे इस बल-प्रयोग को पसन्द नहीं करती।"

"परन्तु यह तो हम नित्य करते हैं। भारतवर्ष में अंग्रेज राज्य करते हैं। वे पग २ पर भारतवासियों के साथ अन्याय करते हैं। हम उनको समझाते हैं कि वे ऐसा न करें। वे नहीं मानते और हम गोली तथा बम चलाकर उनको मार डालते हैं। हम बलपूर्वक अंग्रेजों को इस अन्याय करने से रोकते हैं। यही बात मैंने की थी। समाज में मिथ्या विचारों तथा प्रथाओं के कारण तपस्विनी और पूर्णिमा किसी ऐसे से विवाह करना चाहती हैं जिनको मैं उनके योग्य नहीं समझता। मैं अपने आपको उनमें से एक के तथा दोनों के सर्वथा योग्य समझता हूँ। मैंने उनको समझाने का यत्न किया। वे नहीं मानीं। इस पर मुझे उनको बलपूर्वक मनाने का इतना ही अधिकार है जितना तुम या तुम्हारी पार्टी को अंग्रेजों पर बम, या बन्दूक अथवा रिवाल्वर चलाने का।"

"मिस्टर कमल! तुम्हारी मानसिक अवस्था सर्वथा मलीन होगई है। इस कारण तुम सत्य और झूठ में निर्णय नहीं कर सकते। मोटी सी बात भी तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती। क्या तुम इतना भी नहीं समझ सकते कि अत्याचार पहले अंग्रेजों ने हम पर किया है? वे बल से हम पर राज्य कर रहे हैं। हम तो केवल उनके अत्याचार का विरोध करने के लिये बल का प्रयोग करते हैं। जैसे तुमने तपस्विनी को बल से अपने वश में करने का यत्न किया, उस पर पूर्णिमा ने तुम्हें डुप्लीकेटर का रूल दे मारा। सच तो यह है कि तुमने बल का प्रयोग पहले किया था और पूर्णिमा ने पीछे। अतएव तुम दोषी हो और वह नहीं।"

"तुम तो बहुत कम दूर तक विचार करते हो। मैं कहता हूँ कि समाज में मिथ्या विचारों के प्रचार के कारण तपस्विनी ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था। मेरा प्रस्ताव सर्वथा स्वाभाविक था। वह उसे मान जाना चाहिये था।"

धीरेन्द्र को कमल के बार २ वही बात कहने पर क्रोध आने लगा। इस पर भी उसने एक अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा, "क्या तुम यह भी

नहीं समझ सकते कि तपस्विनी तुम्हारे विचारों को न मानते हुए भी तुमको अपने विचार मनाने के लिये बल का प्रयोग नहीं कर रही थी ? तुम यह समझते थे अथवा समझते हो कि किसी भी स्त्री के साथ तुम सहवास करने का अधिकार रखते हो। वह समझती है कि कोई भी पुरुष यह असीम अधिकार नहीं रखता। बिना स्त्री की अनुमति के वह उससे विवाह नहीं कर सकता। जहां तक समझने और मानने का प्रश्न है तुम दोनों स्वतन्त्र हो परन्तु न तो वह और न तुम अपने विचार बलपूर्वक एक दूसरे को मनवा सकते हो। समाज इस प्रकार का बल-प्रयोग किसी भी सदस्य से सहन नहीं कर सकता। इसलिये प्रत्येक के हितार्थ इस प्रकार की निरंकुशता तथा उच्छृङ्खलता रोकी गई है। बल का प्रयोग पहले तुमने किया है। सामाजिक नियमों के कारण अथवा किसी और कारण से तपस्विनी और अनेकों अन्य नर-नारियों के ऐसे विचार हैं। तुम इस विचार के विपरीत प्रचार कर सकते हो। यहां तक तो कोई भी पक्ष अपराधी नहीं। अपराध तो तब बन जाता है जब कोई भी पक्ष दूसरे से अपने विचार मनवाने के लिये बल का प्रयोग करता है।"

"मैं ऐसा नहीं मानता। जब जब भी समाज में सुधार हुआ है बल के प्रयोग से हुआ है। यदि लोगों में मत-परिवर्तन की प्रतीक्षा की जायगी तो यह प्रतीक्षा अनन्त काल तक होती रहेगी।"

अब तो नरोत्तम, जो अभी तक दोनों के इस वाक्-युद्ध को देख रहा था, [illegible]। वह कहने लगा, "दादा ! छोड़ो इस बहस को। [illegible] नहीं मान सकते। ऐसे दुराचारियों को, जो बल-प्रयोग [illegible] अधिकार समझते हैं, बल से ही सीधे मार्ग पर [illegible] पार्टी [illegible]। पार्टी [illegible] है, [illegible]।"

[illegible]

थी। वह क्रोध में कहने लगा, "हां दादा! दे दो अपना निर्णय। परन्तु यह ध्यान रख लेना कि वह निर्णय, जिसको पूरा कराने की शक्ति न हो, देना महा मूर्खता है। मैं समझता हूँ कि तुम मुझे प्राण-दण्ड दे सकते हो, परन्तु यह भी विचार कर लेना कि तुम्हारी सारी पार्टी में मेरे प्राण लेने की शक्ति किस में है।"

धीरेन्द्र ने सब सुनकर उत्तर दिया, "मैं सब कुछ समझता हूँ। कमल! मेरी इच्छा थी कि तुम्हें पार्टी के अन्दर ही रखा जाता, परन्तु तुम्हारे विचारों को सुनकर मैं यह सम्भव नहीं समझता। पार्टी से बाहर निकाल देने का अभिप्राय प्राण-दण्ड है, यह भी तुम समझते हो। हां इस दण्ड को कम करने का अधिकार पार्टी के नियमों ने मुझे दे रखा है और मैं उस अधिकार का प्रयोग करना चाहता हूँ। इसलिये नहीं कि मैं तुम्हें प्राण-दण्ड दे नहीं सकता, प्रत्युत इस कारण कि तुम वीर हो और भारत-माता के वीर सपूतो की हत्या करना मैं पाप समझता हूँ। यह ठीक है कि तुम भूल कर रहे हो, परन्तु यह भूल ऐसी नहीं जिससे पार्टी का अस्तित्व संशय में पड़ जाय। अभी तक तुम में मुझे ऐसी कोई बात प्रतीत नहीं होती जिससे यह समझूं कि तुम पार्टी के भेद को खोल दोगे, और पार्टी के साथ दग़ा करोगे। इस कारण मैं केवल यह निर्णय देता हूँ कि 'कमल हमारी पार्टी का सदस्य नही रहा। उसे हमारी पार्टी के नाम पर कोई भी काम करने का अधिकार नहीं। नयी पार्टी की स्थापना, जिसके उद्देश्य हमारी पार्टी से समानता रखते हों, वह बनारस से बाहर कर सकेगा। यदि इस निर्णय को कमल ने न माना तो वह सजा पायेगा'।"

कमल जो मृत्यु-दण्ड पाने की आशा किये हुए था इस साधारण से निर्णय से उदास दिखाई देने लगा। वह बड़े जीवट का आदमी था। उसका अनुमान था कि उसे प्राण-दण्ड होगा और प्राण-दण्ड से बल-पूर्वक बचने का वह पूर्ण प्रबन्ध कर घर से चला था। परन्तु इस नवीन स्थिति के पैदा हो जाने के कारण उसकी सब आयोजनायें तथा तैयारियां धरी की धरी रह गयीं। साथ ही सारी पार्टी की रक्षा का भार उसके

ऊपर छोड़ देना उसे विकट परिस्थिति में डालने के लिये कम नहीं था। ऐसी अवस्था में वह नहीं समझ सका कि क्या करे। यदि कोई उस पर रिवाल्वर उठाता तो वह निःशस्त्र ही उससे भिड़ जाने की शक्ति और साहस रखता था। परन्तु अपने आपको दूसरों की जान व माल का मालिक पाकर वह चकित था। जिस नेता को उसने एक ही दिन पूर्व लांछन लगा कर पार्टी में नीच और पतित सिद्ध करने का यत्न किया था, वही नेता उसको वीर कहकर सम्बोधन करता है, तथा पार्टी का सारा रहस्य जानते हुए भी और पार्टी से निकाले जाने पर भी उसको विश्वासपात्र मानता है। इन सब बातों से वह गहरे विचार में डूब गया और काफ़ी देर तक चुपचाप बैठा रहा।

नरोत्तम एकदम इतना नम्र दण्ड सुन चकित रह गया। वह मन में पूर्ण निश्चय किये हुए था कि पूर्णिमा का अपमान करने वाले को वह स्वयं प्राण-दण्ड देगा। नेता पर उसे क्रोध आरहा था क्योंकि वह आरम्भ से ही कमल के साथ बहुत नम्रता का व्यवहार कर रहा था। परन्तु पार्टी के नियमों में बँधे रहने के कारण नेता की आज्ञा-पालन के अतिरिक्त उसके लिये और कोई मार्ग नहीं था।

धीरेन्द्र चुपचाप गम्भीरता से कमल के मन के भावों को पढ़ रहा था। कमल धीरे धीरे उठा। खड़ा होकर बोला, "दादा, मुझे तुमसे यह आशा न थी। मैं अपने विचार ( इस दण्ड के विषय में ) तुम्हें कभी लिखूँगा। नमस्कार!" यह कहकर वह मकान के नीचे उतर गया।

उसके चले जाने के बाद नरोत्तम ने क्रोध में कहा, "भोले नेता! यह तुमने क्या किया है?"

"इस परिस्थिति में जो सब से ठीक बात थी वही मैंने की है।"

"इस दुष्ट को जीवित छोड़ना पार्टी के साथ अन्याय करना है।"

"प्राण-दण्ड कह देना सुगम था परन्तु उसे पूरा करना अति कठिन था। कौन मेरे निर्णय को पूरा करता?"

"मैं घर से इस बात के लिये तैयार होकर आया था। इसके पश्चात्

में उसका पीछा करता और उचित स्थान और समय देखकर काम तमाम कर देता।"

नेता ने वही गम्भीरता धारण रखते हुए कहा, "तनिक खिड़की खोल कर देखो कमल के साथ कौन कौन हैं?"

नरोत्तम ने उठ खिड़की खोल दी और नीचे झांकने लगा। खिड़की में से घाट स्पष्ट दिखाई देता था। गङ्गा के किनारे कमल, द्विवेदी और अन्य पार्टी के सदस्यों से, बातचीत कर रहा था। नरोत्तम ने नेता को यह बात सुनाई। नेता ने कहा, "देखा! वह अपनी जान की रक्षा के लिये पांच आदमी अपने साथ लाया था। यदि तुम उसका पीछा करते तो स्वयं ही खतरे में फँस जाते और तुम्हें उसके पीछे भेजने का अर्थ था, तुम्हें प्राण-दंड देना।

"रात जिन चार सदस्यों ने कमल को निर्दोष कहा था वे सब उसके साथ यहां आये होंगे, इसमें किञ्चित मात्र भी सन्देह नहीं हो सकता था। यह छटा व्यक्ति कोई और है जो मेरी गणना में नहीं था। अब इन छः को मारने के लिये मुझे दस आदमी भेजने चाहियें। यह मैं उचित नहीं समझता।"

"मुझे भय है कि वे हमारी पार्टी को कहीं पुलिस के हवाले न करदें।"

"जो होगा देखा जायगा। अब तुम पार्टी के सब सदस्यों को सन्देश भेज दो कि गायघाट नं० १० पार्टी का मकान नहीं है।"

"तो क्या तुम इस मकान को छोड़ दोगे?"

"नहीं, अभी नहीं। इसमें भी रहस्य है।"

[ २ ]

कमल जब धीरेन्द्र के मकान से बाहर निकला तो उसके साथी, जो उसकी प्रतीक्षा में बाहर खड़े बेचैन हो रहे थे, उसके चारों ओर आकर जमा होगये। कमल का मुख विवर्ण हो रहा था, इससे सब ने यह अनुमान लगाया कि कमल डर गया है। अविनाश द्विवेदी ने कमल की बांह में बांह डालकर कहा, "सुनाओ क्या हुआ है?"

"कुछ भी नहीं। धीरेन्द्र मुझे समझाने का यत्न कर रहा था। जब मेरे विचार उसके विचारों के अनुकूल नहीं हुए तो उसने मुझे पार्टी से बाहर कर दिया है। और बस।"

"तो तुम्हारा मुख पीला क्यों होगया है?"

"इस कारण कि उसने मुझ पर बहुत भरोसा किया है। मुझे उसने कहा है कि वह मुझे इतना बेईमान नहीं समझता कि मैं तमाम पार्टी को दगा दूँगा। इस कारण मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता है कि जहां चाहूँ जाऊं। यदि नई पार्टी बनाना चाहूँ तो बना सकता हूँ परन्तु बनारस के अलावा और किसी स्थान पर।"

द्विवेदी—"यहां क्यों नहीं?"

"एक ही अभिप्राय कि दो संस्थायें एक स्थान में होने से परस्पर संघर्ष होने का भय है।"

"इस संघर्ष से हम नहीं डरते।"

"इसमें डरने का प्रश्न नहीं, प्रत्युत दोनों पार्टियों के हानि-लाभ का प्रश्न है। मैं समझता हूँ इसमें हमारा भी लाभ ही है। बनारस में कार्य-क्षेत्र विस्तृत नहीं हो सकता।"

इस समय वे सब लोग चल कर गङ्गा-किनारे पहुँच गये थे। वे एक नाव में सवार हो गये और उन्होंने उसको धारा में ले जाकर छोड़ दिया।

नाव में सब छः व्यक्ति थे—कमल, द्विवेदी और चार और। जब नाव धारा में चल रही थी तो कमल ने कहा, "आज हम एक नई पार्टी की नींव रख रहे हैं। हम सबके सब इस पार्टी के सदस्य होने का विचार प्रकट कर चुके हैं। मैं चाहता हूँ कि इस समय हम कसम खायें और सदस्य बनकर एक ऐसी संस्था को जन्म दें जो देश के कोने २ में फैल सके, हम अपने आपको सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त कर सकें और देश को विदेशी जंजीरों से मुक्त कर यहां सर्व-साधारण के सुख की नींव डाल सकें।"

इस समय अविनाश द्विवेदी खिलखिलाकर हंस पड़ा।

गङ्गा के बीचोंबीच नीचे को बहती हुई नाव किनारों के शोरगुल से दूर होगई थी। इस निस्तब्धता में द्विवेदी की हंसी विचित्र प्रतीत हुई। नाव में सब द्विवेदी की ओर देखने लगे। कमल भी, जो अभी अपना कथन समाप्त नहीं कर सका था, चुप हो भौंचक सा उसकी ओर देखने लगा। द्विवेदी इस प्रकार सबको अपनी ओर देखते हुए जान कहने लगा, "देखो भैया कमल! लम्बे-चौड़े भाषण की आवश्यकता नहीं है। समस्त हिन्दू-धर्मावलम्बियों द्वारा पवित्र मानी हुई जाह्नवी की पीठ पर सवार होकर बहुत बड़े व्याख्यान देना अथवा सुनना व्यर्थ प्रतीत होता है। यहां तो हम कसम खायें और परस्पर साथ देने का वचन दें। बस यही पर्याप्त है।"

कमल ने बात बीच में ही काटकर कहा, "द्विवेदी जी महाराज भावुकता में बहे जाते हैं। आखिर कवि जो हैं। कवि नास्तिक होते हुए भी भावुकता से बच नहीं सकते। परन्तु मैं तो यह मानता हूं कि भावुकता सत्य से कोसों दूर है। हम बात-चीत करने के लिये इस नाव में इस कारण आये हैं कि सुनने वाले यार-लोगों से दूर रहें, न कि इस कारण कि यह पवित्र स्थान है। बीसियों नगरों का मैल पेट में रखे हुए यह केवल मूर्खों की ही पूज्य हो सकती है। कुछ भी हो, सबसे पूर्व हमें कसम खानी चाहिये कि हम पार्टी की उन्नति और सलामती के लिये सदैव तन, मन और धन से यत्नशील रहेंगे। इतना कहकर कमल ने अपना दाहिना हाथ आधा उठाकर, जैसा महात्मा बुद्ध की उपदेश देने के समय की मूर्ति में देखा जाता है, कहना आरम्भ किया, "मैं अपनी मान-मर्यादा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं इस पार्टी की सुरक्षा और उन्नति के लिये यत्न करता रहूँगा।"

इसके पश्चात् एक २ कर सब लोगों ने ऐसे ही कसमें खाईं। अविनाश द्विवेदी ने सब से अन्त में ली। वह कहने लगा, "मैं इस पवित्र काशी की भूमि में, मां गङ्गा की गोद में बैठा हुआ, आकाश की ओर मुख किये हुए, सूर्य भगवान की मनोहर छवि को साक्षी रखकर कहता हूँ कि मैं अपने साथियों से कभी दगा नहीं करूंगा।"

मनुष्यों में इतना साहस और बुद्धि नहीं थी कि वे जड़ से बुराई को उखाड़कर सुधार करें। वे सदैव जोड़ ही लगाते रहे हैं। जहां कहीं उन्हें दोष प्रतीत हुआ वहीं पर पलस्तर लगाकर मरम्मत कर दी। परिणाम यह है कि प्रारम्भिक त्रुटि हमारी समाज को, जो ऊपर से तो बहुत चिकनी चुपड़ी प्रतीत होती है, खोखली करती जाती है। परिवार सम्बन्धी, समाज तथा देश सम्बन्धी, सब नियम मिथ्या आधार पर बने हैं और इनको जड़ से उखाड़ फेंकना हमारी पार्टी का काम है। जब यह हो जायगा तब हम नयी सृष्टि की रचना करने में सफल हो सकेंगे।"

द्विवेदी ने, कमल को उक्त कथन बहुत उत्साह और जोश में कहते सुन, तालियां पीटनी आरम्भ कर दीं। कमल को इस पर भारी क्रोध चढ़ आया। वह बोला, "क्या तुम इस उद्देश्य से सहमत नहीं ?"

"वाह ! सहमत न होता तो तालियां क्यों पीटता ? यदि तुम मेरे मत के विपरीत कहते तो मैं तुम्हें गंगा जी में न डुबो देता।"

"तो तुम मज़ाक नहीं कर रहे ?"

"किंचित मात्र भी नहीं।"

यद्यपि कमल को यह बात कुछ ठीक प्रतीत नहीं हुई तो भी इस समय बात समाप्त करने के आशय से आगे कहने लगा, "इस उद्देश्य से यदि कोई सहमत न हो तो हाथ खड़ा कर बताये।"

किसी ने हाथ खड़ा नहीं किया। इससे कुछ उत्साहित हो कमल ने फिर कहना आरम्भ किया, "मेरी सम्मति में हमें अपना केन्द्र मिरज़ापुर में बनाना चाहिये। इस पर जिसको आपत्ति हो बोले।"

कोई नहीं बोला।

कमल ने कहा, "अब सब से आवश्यक बात निर्णय के लिये उपस्थित कर रहा हूँ। हमें इस पार्टी का नाम रखना चाहिये।"

द्विवेदी ने बिना एक क्षण की भी प्रतीक्षा किये कह दिया, "गङ्गा।"

सब हँस पड़े।

द्विवेदी ने अब अत्यन्त गम्भीर भाव धारण कर कहा, "मित्रो, आप

हँसते क्यों हैं ? क्या यह नाम उपयुक्त नहीं ?"

कमल ने जोश में कहा, "नहीं ।"

"क्यों नहीं ?"

"गंगा की हमारी पार्टी से कुछ भी समानता नहीं ।"

"है क्यों नहीं ? गंगा संसार भर का मल पेट में डालकर उसे पवित्र करती जाती है। मैं चाहता हूँ कि हमारी पार्टी भी संसार भर की बुराइयों को भस्म कर डाले।"

कमल ने विनती से कहा, "भैया अविनाश, कविपन को मन से कुछ काल के लिये दूर कर बात करो।"

द्विवेदी ने केवल यह उत्तर दिया, "मेरी राय तो इसी नाम के लिये है। इस पार्टी का जिस स्थान पर जन्म हो रहा है उसकी स्मृति को हरा-भरा रखने के लिये यह नाम सर्वोत्तम है।"

उपस्थित युवकों में से एक ने कहा, "मेरी सम्मति में हमारी पार्टी का नाम 'इण्डियन नियो-रिवोल्यूशनरी पार्टी' ( Indian Neo-Revolutionary Party ) रखा जाय।"

द्विवेदी के अतिरिक्त सब ने इसको स्वीकार किया। अतएव यह नाम निश्चय हो गया।

कमल ने कहा, "एक काम करने को और रह गया है। नेता का चुनाव भी हो जाना चाहिये।"

नाम का प्रस्ताव करने वाले युवक ने फिर कहा, "हमारा नेता अविनाश द्विवेदी………… ।"

द्विवेदी एकदम खड़ा हो गया। उसके खड़े होने से नाव डगमगाने लगी। सब एकदम बोल उठे, "अरे—रे—रे—।"

द्विवेदी ने अपने आपको स्थिर करते हुए कहा, "नहीं साहब ! मैं तो नहीं बनना चाहता। मुझे तो कभी कवि-सम्मेलन करना होगा तो प्रधान बना दीजियेगा। आपकी नियो-रिवोल्यूशनरी पार्टी का नेता मैं होने के सर्वथा अयोग्य हूँ। मेरी तुच्छ सम्मति में कमल भैया इसके सर्वथा

योग्य हैं।"

यह प्रस्ताव, कि कमल नेता हो, स्वीकार हुआ। इस प्रकार कमल की उत्कट इच्छा पूर्ण हुई।

जब सब बातें तय होगयीं तो द्विवेदी ने कहा, "इस पार्टी में सब से पहला प्रस्ताव यह पास होना चाहिये कि इसमें किसी स्त्री को सम्मिलित नहीं किया जायगा।"

एक युवक बोल उठा, "यदि यह हुआ तो कवि महाराज की कविता नीरस रह जायगी।"

द्विवेदी ने इसका उत्तर देते हुए कहा, "संसार भर की स्त्रियां जो जीवित हैं। कविता पार्टी के बाहर रहकर कर लेंगा।"

कमल ने कहा, "जब २ कोई नया व्यक्ति सदस्य बनने आवेगा तो उस पर विचार करते समय यह भी देख लिया जायगा कि वह स्त्री है अथवा पुरुष। कई बार स्त्री के शरीर में पुरुष हृदय छिपा होता है और कभी पुरुष-रूप में स्त्री का निर्बल हृदय। इस कारण निश्चित नियम बनाना उचित नहीं।"

[ ४ ]

धीरेन्द्र बनारस से कानपुर जारहा था। सैकण्ड क्लास के डिब्बे में प्रवेश करते ही एक युवक पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह युवक बंगाल प्रान्त का रहने वाला, गठे हुए शरीर का था। एड़ी से चोटी तक स्फूर्ति से भरा हुआ था। एक क्षण के लिये भी निश्चल नहीं रह सकता था। उसने भी धीरेन्द्र को डिब्बे में आते देखा था। आते ही उसने चरण-स्पर्श कर धीरेन्द्र को नमस्कार किया और धीरेन्द्र ने पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

गाड़ी स्टेशन से चल पड़ी। धीरेन्द्र ने पूछा, "सतीश! किधर जा रहे हो?"

"जिधर आप जा रहे हैं।"

"मैं! भला किधर जा रहा हूं?"

"मिरज़ापुर। आपने ही तो बुलाया है।"

"मैंने ? और मिरज़ापुर को यह उलटा मार्ग क्यों ?"

"मैं इस गाड़ी में बैठ गया था। मुग़लसराय पर दूसरी गाड़ी का मेल नहीं था। मैंने समझा इलाहाबाद से लौट आऊंगा।"

"खूब! परन्तु मैंने तुम्हें कब बुलाया है? क्या तुम्हें कोई चिट्ठी मिली है?"

"हां!" इतना कह सतीश बाबू ने अपने सूटकेस को सीट के नीचे से निकालकर अपने घुटनों पर रखकर खोल डाला और चिट्ठी ढूंढने लगा। एक चिट्ठी, जो मिरज़ापुर से भेजी गयी थी, निकाल उसने धीरेन्द्र के हाथ में रख दी। लिखा था :—

"बहुत शोक है कि आप में से कोई भी यहां वार्षिक अधिवेशन पर नहीं पहुँच सका। इस अधिवेशन में पार्टी के काम में बहुत परिवर्तन होगया है। मेरी अनुमति से कमल के नेतृत्व में एक पृथक पार्टी बना दी गयी है। उसके भी लक्ष्य वही होंगे जो हमारी मुख्य पार्टी के हैं। मैं चाहता हूं कि तुम में से कोई मिरज़ापुर में कमल से मिल ले। मैं भी वहां पहुँचने का विचार रखता हूँ। यदि तुम या कोई और सदस्य ३० अप्रैल को मिरज़ापुर पहुँच जाय तो नवीन पार्टी के साथ तुम लोगों का सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाय। यदि मैं वहां न पहुँच सका तो तुम स्वयं सब बातें तय कर लेना।"

—धीरेन्द्र

धीरेन्द्र यह चिट्ठी पढ़कर अवाक् रह गया। वह मन में सोचने लगा कि कमल ने यह चाल चलकर पार्टी के अस्त्र-शस्त्रों पर हाथ सफा करने का यत्न किया है। यह तो आकस्मिक घटना थी कि सतीश अपर इण्डिया एक्सप्रेस से यात्रा कर रहा था और धीरेन्द्र से उसकी भेंट होगई। धीरेन्द्र ने चिट्ठी सतीश के हाथ में देकर कहा, "यह चिट्ठी मेरी लिखी नहीं है। ये हस्ताक्षर भी मेरे नहीं हैं।"

अब हैरान होने की बारी सतीश की थी। वह घबराकर पूछने लगा, "क्या माजरा है?"

"क्या तुमको मन्त्री नरोत्तम की चिट्ठी नहीं मिली?"

"नहीं, अभी तक नहीं मिली।"

"तुम हारान बाबू से मिलकर चले हो?"

"हां यह तो है ही। बिना उनकी आज्ञा के कोई मैमनसिंह से बाहर नहीं जा सकता।"

"हां! तो उन्होंने कुछ नहीं बताया?"

"उन्होंने केवल यह कहा था कि नरोत्तम के वहां एक-दो दिन में पहुँचने का समाचार था।"

"ओह!"

"परन्तु हम सब ने यही उचित समझा कि नियत तिथि को मिरज़ापुर पहुँचकर सारी परिस्थिति को समझ लेना चाहिये। आज तक जितने भी काम हुए हैं आपके सुप्रबन्ध में नियमानुसार तथा समय पर सुरक्षा से हुए हैं। हारान बाबू का विचार है कि जितने भी लोग कारखाने में काम करते हैं वे सब प्रकार से छिपे रहने चाहियें। उनका इधर-उधर भागना ठीक नहीं। इस कारण उन्होंने मुझे भेजा है कि आप से मिलकर सब कुछ निर्णय कर लिया जावे।"

धीरेन्द्र ने कहा, "यह चिट्ठी मैंने नहीं लिखी। प्रतीत होता है कमल ने यह जालसाज़ी की है। नरोत्तम ने यह उचित समझा है कि स्वयं मिलकर वार्षिक अधिवेशन का वृत्तान्त आपको बतावे। उसने पत्र में लिखना उचित नहीं समझा। बात यह है कि कमल, द्विवेदी, मोहन, नरेन्द्र और कृष्ण लड़कर पार्टी से पृथक होगये हैं। उन्होंने पार्टी पृथक बना ली है और उसका नाम 'इण्डियन नियो-रिवोल्यूशनरी पार्टी' रखा है। कुछ सभासद और भी बाहर से भर्ती किये गये हैं। हमारी पार्टी का सम्बन्ध उनसे किंचित मात्र भी नहीं है। केवल द्विवेदी हमारा जासूस उनमें है। परन्तु यह प्रतीत होता है कि कमल ने यह चिट्ठी उससे भी चोरी लिखी है। अन्यथा इसका भी हमें पता चल जाता।"

"तो अब मुझे क्या करना चाहिये?"

"अभी तक तो तुम हमारी पार्टी के सदस्य हो। उसी के नियमों से बंधे हो। यदि तुम लोग भी पार्टी छोड़ना चाहते हो तो तुमको भी सूचना दे देनी चाहिये। उस समय मैं बताऊंगा कि क्या करना चाहिये? अभी तो परिस्थिति वैसी ही है जैसी पहले थी। तुम्हारे लिये नेता के अतिरिक्त किसी अन्य सदस्य की आज्ञा माननीय नहीं है। तुम्हारे स्थानीय नेता हारान बाबू हैं। मेरा विचार है इस नवीन परिस्थिति की सूचना उन्हें कर दो और फिर उनके कहने के अनुसार करो।"

सतीश इस नयी अवस्था से कुछ घबरा गया। वह कहने लगा, "हारान बाबू क्या कहेंगे मैं नहीं जानता। परन्तु जब मैं इतनी दूर आया हूँ और आपसे भेंट भी हुई है तो क्या मैं जान सकता हूँ कि कमल और उसके साथी पार्टी से पृथक क्यों हुए हैं?"

"हां, क्यो नहीं। यद्यपि नरोत्तम सब बात हारान बाबू को बता देगा, फिर भी मेरे तुमको बताने में कोई हानि नहीं है। कमल ने वार्षिक अधिवेशन में नेता तथा मन्त्री पर कुछ लांछन लगाये। कुछ अन्य सदस्यों ने उस पर स्त्री-सदस्याओं को दिक़ करने का लांछन लगाया। प्रश्न पार्टी के सम्मुख रखा गया और बहुमत से यह निर्णय हुआ कि मैं उसको दण्ड दूं। मैंने उसको पार्टी से बाहर निकल जाने का दण्ड दिया है। इस पर उसने अपने साथियों को लेकर एक नई पार्टी बनाई है।"

"ऐसी परिस्थिति में तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये था।"

"अभी तक उसका व्यवहार ऐसा नहीं था कि उसे प्राण-दण्ड दिया जा सके; परन्तु यह झूठी चिट्ठी लिखना शायद उसे इस दण्ड का भागी बना रहा है। इस पर भी मैं विचार करूंगा। मैं पार्टी के सदस्यों के साथ पूरी सहानुभूति का व्यवहार करना चाहता हूँ।"

इसके पश्चात इधर-उधर की बातें होने लगीं। गाड़ी के इलाहाबाद पहुँचने पर सतीश उतर गया। जाते समय उसने कहा, "मैं कमल से मिलने का विचार नहीं रखता। अब सीधा वापिस मैमनसिंह जाऊंगा।"

परन्तु ऐसा नहीं हो सका। कमल ने सतीश को स्टेशन पर ही

मिलने का प्रबन्ध कर रखा था। गाड़ी के मिरज़ापुर पहुँचने पर भी सतीश नीचे नहीं उतरा। उसके पास वापिसी टिकट था और वह सचमुच ही मैमनसिंह वापिस जा रहा था। कमल स्वयं स्टेशन पर उपस्थित था। उसने निश्चय किया हुआ था कि उस दिन वह सब कलकत्ते से आने वाली गाड़ियों को स्टेशन पर ही देखेगा। अपर इण्डिया एक्सप्रेस का सम्बन्ध इलाहाबाद की इसी गाड़ी से था और यह दिन में सब से प्रथम गाड़ी थी। कमल को पहली ही गाड़ी में कार्य-सिद्धि हुई।

यद्यपि वह हारान बाबू के आने की आशा लगाये हुए था, इस पर भी हारान के दाहिने हाथ सतीश को देख निराश नहीं हुआ। परन्तु जब उसने देखा कि सतीश गाड़ी से नीचे उतरने के लिये उत्सुक प्रतीत नहीं होता तो वह गाड़ी में घुस आया और जोर से पुकार कर बोला, "हलो मि० सतीश।"

सतीश कमल को देख चौंका। उसका विचार था कि वह बिना दिखाई दिये निकल जायगा। परन्तु कमल को डिब्बे में आता देखकर हैरान था कि क्या करे। कमल ने उसे सोचने का अवकाश भी नहीं दिया और कहने लगा, "भाई! मिरज़ापुर स्टेशन आगया है।"

"अच्छा! ओह! आप यहां कैसे आये हैं?"

"तो तुम यहां नहीं आये क्या?"

"नही"

"तो किधर से आना हो रहा है?"

"कानपुर से। नेता ने बुलाया था।"

"भेंट हुई?"

"हां"

कमल मुँह देखता रह गया। अब उसे विचार करने की आवश्यकता पड़ी। उसने जो जाली चिट्ठी भेजी थी वह उनको मिली या नहीं और अगर धीरेन्द्र ने उसका पार्टी से निकाला जाना प्रकट कर दिया होगा तो। कुछ देर विचारकर बोला, "मैमनसिंह से कब चले थे?"

"अभी तक तो तुम हमारी पार्टी के सदस्य हो। उसी के नियमों से बंधे हो। यदि तुम लोग भी पार्टी छोड़ना चाहते हो तो तुमको भी सूचना दे देनी चाहिये। उस समय मैं बताऊंगा कि क्या करना चाहिये? अभ तो परिस्थिति वैसी ही है जैसी पहले थी। तुम्हारे लिये नेता के अतिरि किसी अन्य सदस्य की आज्ञा माननीय नहीं है। तुम्हारे स्थानीय नेता हारा बाबू हैं। मेरा विचार है इस नवीन परिस्थिति की सूचना उन्हें कर और फिर उनके कहने के अनुसार करो।"

सतीश इस नयी अवस्था से कुछ घबरा गया। वह कहने ल "हारान बाबू क्या कहेंगे मैं नहीं जानता। परन्तु जब मैं इतनी दूर आ हूँ और आपसे भेंट भी हुई है तो क्या मैं जान सकता हूँ कि कमल उसके साथी पार्टी से पृथक क्यों हुए हैं?"

"हां, क्यों नहीं। यद्यपि नरोत्तम सब बात हारान बाबू को बता फिर भी मेरे तुमको बताने में कोई हानि नहीं है। कमल ने वार्षिक वेशन में नेता तथा मन्त्री पर कुछ लांछन लगाये। कुछ अन्य ने उस पर स्त्री-सदस्याओं को दिक़ करने का लांछन लगाया। प्रश्न के सम्मुख रखा गया और बहुमत से यह निर्णय हुआ कि मैं दण्ड दूं। मैंने उसको पार्टी से बाहर निकल जाने का दण्ड दि इस पर उसने अपने साथियों को लेकर एक नई पार्टी बनाई है"

"ऐसी परिस्थिति में तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये था।"

"अभी तक उसका व्यवहार ऐसा नहीं था कि उसे प्राण-द जा सके; परन्तु यह झूठी चिट्ठी लिखना शायद उसे इस दण्ड बना रहा है। इस पर भी मैं विचार करूंगा। मैं पार्टी के साथ पूरी सहानुभूति का व्यवहार करना चाहता हूँ।"

इसके पश्चात इधर-उधर की बातें होने लगीं। गाड़ी के पहुंचने पर सतीश उतर गया। जाते समय उसने कहा, " मिलने का विचार नहीं रखता। अब सीधा वापिस मैमनसिं

परन्तु ऐसा नहीं हो सका। कमल ने सतीश

मैंने पार्टी छोड़ दी है।"

"यह कैसे हो सकता है? एक बार जो पार्टी का सदस्य बन गया वह इस जन्म में उससे बाहर नहीं हो सकता।"

"परन्तु मेरे विषय में होगया है। मुझे तुम्हारे नेता ने निकाल दिया है यद्यपि मैं छोड़ने को पहले ही तैयार था।"

"क्यों?"

"मेरा मत-भेद होगया था।"

"मत-भेद! किस बात में?"

"इस बात में कि तुम्हारे नेता पूंजीवाद में विश्वास रखते हैं। उन्होंने सिद्धान्तरूप में यह मान लिया है कि पार्टी के सदस्य अपना २ निजी काम कर सकते हैं।"

"और तुम ऐसा नहीं मानते?"

"बिल्कुल नहीं। मैं साम्यवादी समाज की श्रेष्ठता को मानता हूँ।"

सतीश एक गम्भीर विचार में पड़ गया। कुछ सोचकर उसने पूछा, "क्या नेता ने किसी को आजकल काम करने की स्वीकृति दी है?"

अब कमल चकराया। यथार्थ में कई सदस्य पहले ही अपना काम करते थे। फिर भी उसने अपना आशय स्पष्ट करने के लिये कहा, "पूर्णिमा, नरोत्तम की बहिन, सिनेमा में नाचने वाली का काम करती थी। उसको वहां से तीन हज़ार रुपया मिला। इस आय में से उसने केवल डेढ़ हजार रुपया पार्टी को दिया और शेष अपनी जेब में रख लिया है। यदि इसी प्रकार सब को स्वीकृति दे दी गयी तो सब सदस्य अपना २ काम करने लगेंगे और पार्टी के काम की ओर कोई भी ध्यान न देगा।"

"परन्तु अभी तक तो तुम भी ऐसा ही करते थे। हां तो तुम्हारा पिता देहान्त के समय तुम्हारे लिये कितनी सम्पत्ति छोड़ गया है?"

"कीमत तो नहीं बता सकता। केवल दो मकान मिरज़ापुर में हैं। एक गांव में तिहाई भाग भी है। कुछ आभूषण और बैंक में रुपया भी है।"

"इस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी तुम्हारे अतिरिक्त कोई और भी है?"

"नहीं।"

"तो यह सब सम्पत्ति तुमने पार्टी को दे देने का विचार उपस्थित किया होगा।"

"नहीं।"

"ओह! अच्छा फिर क्या हुआ?"

"देखो सतीश बाबू! हम लोग पार्टी के लिये डाके डालते हैं। अपनी जान हथेली पर लिये घूमते हैं परन्तु जो कुछ डाके में मिलता है सब पार्टी को दे देते हैं। उसमें से स्वयं कुछ भी नहीं रखते। परन्तु पूर्णिमा को आय का पचास प्रति शत रखने की स्वीकृति दे दी गयी है।"

"ओ हो! तो फिर आपने पार्टी से त्याग-पत्र दे दिया।"

"नहीं। मैंने पार्टी के अधिवेशन में नेता के इस काम की घोर निन्दा की। इस पर पूर्णिमा ने मेरी निन्दा की।"

सतीश ने अब अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "आपकी और पूर्णिमा ने! भला सुनें तो उसने क्या कहा?"

"कहना क्या था। वही बात जो स्त्रियां प्रायः शत्रुओं के विपरीत कहा करती हैं। कहने लगी मैं दुराचारी हूँ। मैं उसको पतित करने का यत्न करता रहा हूँ।"

"और यह सब असत्य था?"

"सत्य-असत्य की बात तो मनुष्य के अपने निजी विचारों पर निर्भर है। अपने विचारानुकूल मैं दुराचारी न था और न हूँ।"

"तो तुमने उसे फांसने का यत्न किया था?"

"निःसन्देह।"

"परन्तु वह नहीं फंसी।"

"यह तुमने कैसे जाना?"

"यदि फँस गयी होती तो शोर न मचाती, चुपचाप अपनी बात छिपाती।"

"ठीक है। इस पर पार्टी ने मुझे दोषी ठहराया और नेता ने मुझे निकाल बाहर किया।"

"तो फिर अब ?"

"अब मैंने नई पार्टी बना ली है। इस समय तक उसके दस के लगभग सदस्य बन चुके हैं। द्विवेदी, मोहन, नरेन्द्र, और कृष्ण तो पहली पार्टी को त्याग कर आये हैं। शेष बाहर से भर्ती किये हैं।"

"अब इस पार्टी को तो तुमने सब सम्पत्ति दे डाली होगी।"

"क्यों ?"

"इसलिये कि तुम साम्यवादी समाज के पक्षपाती हो न। और सब सदस्य जो इसमें सम्मिलित हुए हैं वे भी अपनी सम्पत्ति जमा करा चुके होंगे।"

"नहीं! अभी यह होना सम्भव नहीं।"

"क्यों नहीं ? यदि तुम एक उदाहरण बन जाओ तो फिर सब के लिये सम्भव हो जायगा। सब से पूर्व अपनी पूरी सम्पत्ति पार्टी के कोष में दे डालो। फिर जो कुछ आप पैदा करो सब पार्टी को देना आरम्भ करो। यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारी पार्टी बहुत धनी हो जायगी और काम खूब सुभीते से चलेगा।"

"मैं तो भले ही यह कर भी दूं परन्तु दूसरे सदस्यों के लिये यह सम्भव नहीं है। इनमें दो सदस्य तो खूब धनी हैं। वे अपनी पूर्ण सम्पत्ति देने पर कभी भी प्रस्तुत नहीं होंगे।"

"तो उनको निकाल बाहर करो।"

"बहुत कठिन है।"

"खैर जैसी इच्छा। मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम साम्यवादी हो न। मुझसे क्या काम है ? मैं तो तुम्हारी पार्टी का सदस्य नहीं बन सकता।"

"क्यों ?"

"मैं तुम जैसा साम्यवादी नहीं हूँ।"

"तुम कैसे साम्यवादी हो ?"

"मैं उस समाज का निर्माण चाहता हूँ जहां व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज के आधीन हो। समाज का हानि-लाभ व्यक्तिगत हानि-लाभ से ऊंचा

समझा जावे। इस बात का निर्णय कि समाज के लिये क्या अच्छा है और क्या खराब, समाज का बहुमत करे। अल्पमत या तो बहुमत के अनुकूल आचरण करे अन्यथा समाज को छोड़ दे। विचार-प्रसार का अधिकार सब को हो परन्तु आचरण-स्वतन्त्रता बहुमत के आधीन हो।"

"इस प्रकार तो संसार की उन्नति रुक जावेगी।"

"तुम्हें संसार की चिन्ता क्यों लग रही है? तुम अपनी चिंता करो। संसार अर्थात समाज अपनी आप सोच लेगा।"

"तुम्हारे विचार प्रकृति के नियम के विरुद्ध हैं।"

"होने दो। मैंने प्रकृति की गुलामी का वचन नहीं दिया हुआ।"

"ऐसी समाज कितने काल तक स्थापित रह सकेगी? धीरे २ सब बुद्धिमान लोग इसको छोड़कर बाहर हो जायेंगे।"

"यदि समाज के बाहर लोगों की संख्या अधिक हो जायगी तो समाज के भीतर अल्पमत रह जायगा और इस अल्पमत को बाहर वालों के अनुकूल आचरण कर लेना होगा। यही उन्नति का मार्ग है।"

"इस प्रकार तो सदैव गड़बड़ मचती रहेगी।"

"संघर्ष ही मनुष्य-समाज का जीवन है। इसी से समाज उन्नति करता है।"

कमल इस वाक्-युद्ध से चकराने लगा था। वह इन बातों के जंगल में अपना प्रयोजन भूल रहा था। इस कारण वह कुछ काल विचार में लीन होगया। अब वह पुनः बात करने लगा। उसने कहा, "मुझे सभासदों की इतनी आवश्यकता नहीं। मुझे तो अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता है। हारान बाबू से मैं इस बात में सहायता चाहता हूँ।"

"हमने अस्त्र-शस्त्रों की दुकान तो खोली नहीं जो आपके पास बेचने के लिये तैयार हो जावें।"

"बेचने के लिये? खरीदने को मेरे पास दाम नहीं है। मैं तो आपके कारखाने पर अपना अधिकार समझता हूँ। इस कारखाने में जो रुपया लग रहा है उसके एकत्र करने में मेरा भी भाग है। प्रायः जितने भी

डाके डाले गये हैं सब में मैं सम्मिलित रहा हूँ।"

"तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है, परन्तु इसके लिये मेरे अथवा हारान बाबू से बातचीत का कुछ भी लाभ नहीं होगा। इन बातों का अधिकार नेता को है। उनसे मिलो तो शायद तुम्हारा कुछ काम बन सके।"

"तो तुम लोग इसमें मेरी कुछ सहायता नहीं कर सकते?"

"मैंने तो अभी तुमको बताया है कि मैं समाज को व्यक्ति से ऊपर मानता हूँ। यदि मेरी सम्मति तुम्हारे पक्ष में हो, तो भी तुमको बिना पार्टी की स्वीकृति के कुछ लाभ नहीं हो सकता। पार्टी ने इस विषय में सर्व अधिकार नेता को दे रखे हैं।"

"देखो! मैं तुम्हारे सम्मुख एक प्रस्ताव रखता हूँ। यह प्रस्ताव तुम हारान बाबू के सामने रख देना। वह चाहें तो नेता की स्वीकृति ले लें। प्रस्ताव यह है कि हमारी पार्टी को वह सशस्त्र कर दें और हमारी पार्टी भी कारखाने को आर्थिक सहायता देती रहेगी।"

"कह दूंगा, परन्तु इसकी स्वीकृति की आशा नहीं है।"

"आशा क्यों नहीं?"

"इस कारण कि तुम्हारी पार्टी और हमारी पार्टी का लक्ष्य एक नहीं है। यदि दोनों का ध्येय एक ही होता तो झगड़ा न होता। भिन्न २ आदर्श होने से सहायता नहीं दी जा सकती। इस पर भी तुम्हारा सन्देश वहां तक पहुँचा दूंगा, और इसका उत्तर नियमानुकूल तुमको मिल जायगा।"

---

## चौथा भाग

## निराशा

वार्षिक अधिवेशन में कमल और उसके साथियों की उदंडता का प्रभाव पूर्णिमा के मन पर बहुत बुरा पड़ा। वह क्रांतिकारी दल की बहुत दृढ़ भक्तिनी थी। इस अधिवेशन ने उसकी भक्ति की जड़ को हिला डाला। वह इस बात का अनुमान भी नहीं लगा सकती थी कि एक

आदमी इतनी सीधी सी बात को समझने में भी अशक्त है कि पार्टी के दूसरे सदस्यों पर अत्याचार नहीं करना चाहिये। सबसे अधिक अखरने वाली बात यह थी कि कमल ने बिना प्रमाण के तपस्विनी और उस पर नेता को वासना के जाल में फंसाने का झूठा लांछन लगाया था। यह सत्य है कि वह हिंदू स्त्रियों की भांति घर के भीतर बैठकर अपना जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं करती थी। उसे पुरुषों तथा लड़कों की संगति में जाने, बैठने और घूमने में संकोच नहीं होता था। वह अपने आपको इतना ही स्वतंत्र समझती थी जितना कि कोई भी युरोपिन महिला। इस पर भी वह अपने सतीत्व-धर्म पर दृढ़ थी। इस बात में वह हिन्दू समाज के विचारों को सर्व श्रेष्ठ समझती थी। कमल ने अपनी चिठ्ठी-पत्री में उसे इस विचार से डिगाने का भरसक यत्न किया था। उसने अनेकों युक्तियां देकर उसे सती-धर्म पर दृढ़ रहने की मूर्खता, व्यर्थता और हानियां बताने की चेष्टा की थी परन्तु इनका पूर्णिमा के मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ था। यह एक बात थी जिसमें वह युरोपियन विचार या यों कहो कि आधुनिक प्रवृत्ति के साथ मेल करना पसन्द नहीं करती थी।

इसमें कारण उसके हिंदू संस्कार थे अथवा कुछ और, इसकी विवेचना व्यर्थ है। हां यह ठीक है कि वह मधुसूदन को प्रेम करने लगी थी। मन में उसे अपना पति मान चुकी थी। अब वह किसी अन्य को उस स्थान को ग्रहण करने की स्वीकृति नहीं दे सकती थी।

ऐसी अवस्था में उसके प्रिय विचार को बलपूर्वक बदलने का यत्न करने वाले के लिये उसके मन में घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक थी। साथ ही जब उसने यह देखा कि क्रांतिकारी दल में सब से अग्रसर होकर भाग लेने वाला ऐसा कहता है तो पार्टी के कार्यक्रम पर भी उसको संशय होने लगा था।

अधिवेशन के पश्चात कई दिन तक मन में मची हुई इस हलचल को वह दूर नहीं कर सकी। बार २ उसके मन में यह विचार उठता था कि कहीं पार्टी के सिद्धान्तों में ही तो गलती नहीं। एक बात तो रह २

कर उसके मन में आती थी कि पार्टी की सफलता अर्थात देश का स्वतंत्र होना तब तक असम्भव है जब तक लोग चरित्रवान नहीं बनते। मधुसूदन ने उसे एक बार कहा था कि देश की पराधीनता का कारण अंग्रेज़ों की जबरदस्ती नहीं प्रत्युत हमारी चरित्रहीनता है। कमल जैसे लोगों के हाथ में देश का नेतृत्व देना कैसे देश के लिये उपकारी हो सकता है। यह निर्णय उसके मन में पक्का होगया था कि पार्टी के सदस्यों में चरित्र उत्पन्न करना अत्यावश्यक है।

वार्षिक अधिवेशन के कुछ दिन पीछे की बात है। एक दिन राय साहब कुँजबिहारी के विषय का एक समाचार पत्रों में छपा। समाचार तो केवल इतना था कि रायसाहब कुँजबिहारी ने अपनी राय साहब की पदवी सरकार को वापिस कर दी थी। इस छोटे से समाचार ने पूर्णिमा के मन में उथल-पुथल मचा दी। उसका विचार था कि राय साहब के मन से कलक्टर के बङ्गले की घटना अभी तक मिटी नहीं है और इस पदवी के त्याग में उनके मन पर इस घटना के प्रभाव का भारी भाग है।

पूर्णिमा सोचती थी कि यह भीरुता है या बहादुरी। यदि उनके मन में यह डर समा गया है कि राय साहब होने से वह सदैव क्रांतिकारी दल से मारे जाने के भय में हैं तो सत्य ही वह कायर है। हां यदि उनके मन में यह विश्वास होगया है कि सरकार से सहयोग करना और सरकार की दी हुई पदवी का धारण करना एक हिन्दुस्तानी के लिये उचित नहीं तो बात दूसरी है। इसे कायरता नहीं कह सकते। कुछ अंशों में बहादुरी भी कही जा सकती है। वह मन में निर्णय नहीं कर सकी थी कि राय साहब के इस पद-त्याग को वह क्या समझे।

वह अभी इसी उधेड़-बुन में लगी हुई थी कि एक दिन उसे एक रजिस्टर्ड चिट्ठी मिली। चिट्ठी में एक हजार रुपये के नोट थे। चिट्ठी भेजने वाले राय साहब थे और नोटों के साथ यह संदेश भी था :—

प्रिय पूर्णिमा !

कल मधुसूदन से यह जानकर मुझे अत्यन्त खेद हुआ कि तुमको

रुपये की सख्त आवश्यकता होने के कारण फिल्म-कम्पनी में काम करना पड़ा था। उसकी बातों से कुछ ऐसा भी प्रतीत होता था कि शायद तुम्हें कुछ देर तक और भी काम करना पड़े। तुम्हारी आवश्यकता को मैं नहीं जानता और न ही मधुसूदन ने वह बताई है। जैसा कि मेरा अनुमान है तुम्हारा मधुसूदन से विवाह होने वाला है, इसलिये मैं तुम्हारा फिल्म-कम्पनी में काम करना उचित नहीं समझता। मधुसूदन के पिता को भी इसमें भारी आपत्ति है।

मधुसूदन से मेरा विशेष सम्बन्ध है। मेरे कोई सन्तान नहीं और मैंने उसके पढ़ाने इत्यादि का प्रबन्ध ऐसे ही किया था जैसे मैं अपने लड़के का, यदि कोई होता तो, करता। इस कारण बहुत विचारोपरान्त मैंने यह रुपया तुम्हें भेजा है। मेरा विचार इतना ही रुपया प्रति मास भेजने का है। तुम यह स्वीकार कर लेना क्योंकि यह मधुसूदन का भेजा हुआ है। आशा है इससे तुम्हारी आवश्यकता पूर्ण हो जायगी और फिल्म-कम्पनी में पुनः काम करने की आवश्यकता नहीं रहेगा।

मैं कला को बुरा नहीं समझता, परन्तु इसका प्रदर्शन रुपये के बदले में और वह भी एक हिन्दू महिला से बुरा समझता हूँ। सङ्गीत आत्मोन्नति का साधन है, परन्तु जब वह बाज़ार में टके २ पर बिकने लगे तो प्रायः मनुष्य के पतन का कारण हो जाता है। शेष फिर लिखूंगा।

शुभाकांक्षी, कुंजबिहारी

चिट्ठी में सेठ साहब ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा था। उनके पदवी-त्याग का उल्लेख तक नहीं था। वह जानते थे कि पद-त्याग से पूर्णिमा को प्रसन्नता होगी, परन्तु उन्होंने इसे ऐसे विस्मरण कर दिया मानो केवल पुराने कपड़े उतार दिये हों।

पूर्णिमा सोचने लगी कि सम्भव है यह भेंट सेठ साहब के अपने प्रेम का परिणाम हो, परन्तु उनमें और कमल में कितना अन्तर है। एक ओर तो सेठ साहब हैं जो उसे प्रसन्न करना चाहते हैं और उसके मन को किसी प्रकार की ठेस पहुँचाना नहीं चाहते। दूसरी ओर कमल है जो उसके प्रेम

को बलपूर्वक प्राप्त करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है; वह देश, समाज और जाति में सुधार करने का दावा करता है। विपरीत उसके सेठ साहब तो केवल मानव-संसार में अपने आपको एक बिंदुमात्र मानते हैं। सम्भव है यह केवल बाहरी लिफाफेबाज़ी हो और कमल का व्यवहार मन, वचन और कर्म में एकता प्रकट करता हो। जो कुछ भी हो सेठ साहब का व्यवहार निश्चय रूप से दूसरों की सुख और शान्ति को बढ़ाता है।

इस समय पूर्णिमा का ध्यान मधुसूदन की ओर भी गया। मधुसूदन में एक दैवी आकर्षण था। उस दिन की बात उसे बारबार याद आती थी जब वह एक डंडा हाथ में लेकर कमल से भेंट करने अकेला चला गया था। मधुसूदन जानता था कि कमल के हाथ में पिस्तौल है। इस पर भी उसके मुख पर भय अथवा चिन्ता का लेशमात्र भी नहीं था। वह ऐसे ही चला गया था मानों बाजार से कुछ खरीदने जा रहा हो। दोनों की भेंट भी पूर्णिमा ने अपनी आंखों देखी थी। जब कमल ने पूछा, 'आप यहां किस मतलब से आये हैं?' तो कितना स्वाभाविक उत्तर था, 'तुम्हें क्यों बताऊँ?' और फिर इतनी सतर्कता कि पिस्तौल वाला हाथ जेब से निकला कि डंडा चला। कमल जो उनकी पार्टी में बहुत ही चुस्त और बहादुर समझा जाता था अपना पिस्तौल तक छोड़कर भाग गया था।

मधुसूदन के विषय में यह और ऐसी बीसियों ही अन्य स्मृतियां थीं जो पूर्णिमा के मन में गुदगुदी उत्पन्न करती थीं। इसके अतिरिक्त सज्जनता और चरित्र में चट्टान की भांति दृढ़ विरले ही संसार में मिलते हैं।

पूर्णिमा इन विचारों में मग्न थी कि नरोत्तम कहीं बाहर से आया। उसने पूर्णिमा के सम्मुख बहुत से एक-एक सौ रुपये के नोट पड़े देखे। उसने प्रश्न भरी दृष्टि से पूर्णिमा की ओर देखा। पूर्णिमा ने सेठ साहब की चिट्ठी भाई के हाथ में दे दी।

चिट्ठी पढ़कर नरोत्तम ने पूछा, "मां को बताया है?"

"नहीं, अभी नहीं।"

"हां, तो दिखा दो।"

भैया ! तुम ही दिखा दो न।" इतना कहते कहते पूर्णिमा की गालों पर लाली छा गयी।

नरोत्तम चिट्ठी लेकर मां के पास चला गया। अब विचार होने लगा कि क्या किया जाय। रुपया वापिस कर दिया जाय अथवा नहीं।

इसमें सन्देह नहीं था कि रुपये की आवश्यकता पार्टी को अभी भी थी। जिस कारण से पूर्णिमा ने सिनेमा में नौकरी की थी वह कारण तो बना ही था। एक ओर फिल्म कम्पनी से उसे निमंत्रण भी आ चुका था और वह इसी सम्बन्ध में कलकत्ते जाने वाली थी। अब इस पत्र ने नई उलझन उत्पन्न कर दी थी। नरोत्तम की मा और नरोत्तम दोनों पूर्णिमा का मधुसूदन से विवाह होजाना मन से चाहते थे। वे तो इस विवाह के लिये तब भी तयार थे जब मधुसूदन पर सेठ साहब की कृपा-दृष्टि का उन्हें ज्ञान नहीं था। उन्होंने मधुसूदन को एक निर्धन पुजारी का लड़का जानते हुए चुना था। अब ऐसा प्रतीत होता था कि सेठ साहब अपनी सम्पत्ति का कुछ भाग अवश्य मधुसूदन को देंगे। इस परिस्थिति में कोई ऐसी बात करना जिससे मधुसूदन को आर्थिक हानि की सम्भावना हो वे नहीं कर सकते थे।

पूर्णिमा का विचार था कि वह यह रुपया पार्टी के कोष के लिये स्वीकार नहीं कर सकती। देने वाले को पार्टी की नीति का ज्ञान होना चाहिये। अपने लिये वह इसलिये स्वीकार नहीं कर सकती क्योंकि उसे आवश्यकता नहीं। यदि मधुसूदन को सेठ साहब देना चाहते हैं तो दें। उसे वह यहाँ क्यों भेजते हैं।

नरोत्तम की राय थी कि यदि सेठ साहब यह रुपया मासिक भेजते रहें तो पार्टी के बहुत से काम सफलतापूर्वक हो सकेंगे। सेठ साहब को पार्टी के विषय में बताने की वह ज़रूरत नहीं समझता था। वे अपने विचार-अनुसार कोई गलत काम तो करते नहीं। यदि किसी कारण से यह भेद खुल भी गया और सेठ साहब को इसमें आपत्ति हुई तो वे कह देंगे कि उनको पहले जान लेना चाहिये था। रुपया भेजते समय उन्होंने यह पूछना

चाहिये था कि किस काम के लिये धन की आवश्यकता है।

पूर्णिमा का विचार इसके विपरीत था। वह कहती थी कि रेत पर भीत बनाने से कब तक खड़ी रह सकती है। यदि पीछे सेठ साहब को ज्ञात हुआ कि उनके रुपये से बम बना २ कर उनके इष्ट मित्रों पर ही चलाये जाते रहे हैं तो उनके मन में कितना दुःख और क्लेश होगा। वह अकारण उनको दुःखी करना नहीं चाहती थी। यदि पार्टी के नेता का विचार हो कि सेठ साहब को कम से कम कुछ ज्ञान पार्टी के कार्यक्रम का कराया जा सकता है तो उसको मधुसूदन से मिलकर सेठ साहब से बात कर लेनी चाहिये। वह इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहती थी।

इस प्रकार यह बहस कई दिन तक चलती रही। धीरेन्द्र बनारस से बाहर चला गया था। यदि वह वहां होता तो कोई तदबीर निकाली जा सकती थी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि पूर्णिमा स्वयं जाकर मधुसूदन से सलाह कर रुपया वापिस कर दे, और पार्टी के अतिरिक्त सब बात वर्णन कर दे। उसकी मां ने यह भी समझाया कि जो भी बात की जाय नम्रता और सभ्यता से होनी चाहिये। मीठा बोलने में कुछ व्यय नहीं होता परन्तु इससे संसार में दुःख की मात्रा को बहुत कम किया जा सकता है।

[ २ ]

यद्यपि श्यामाचरण को सेठ साहब से बात करते समय कुछ उत्तर नहीं बन आया था फिर भी उसको मधुसूदन का विवाह पूर्णिमा से होना भला प्रतीत नहीं होता था। जब तक पूर्णिमा उसके पास रही वह कुछ नहीं कह सका। वह सेठ साहब को नाराज़ भी नहीं करना चाहता था। इस कारण उस समय तो उसने चुप रहना ही उचित समझा।

पूर्णिमा का काम फिल्म-कम्पनी में समाप्त हुआ तो वह बनारस लौट गयी। अब श्यामाचरण के मन में विवाह की समस्या सुलझाने की इच्छा हुई। सब से पहले उसके मन में यह विचार आया कि किसी ब्राह्मण-कन्या को ढूँढना चाहिये जिसके माता-पिता उसे मधुसूदन को देने के लिये तैयार हो सकें। पीछे वह मधुसूदन को राजी करने का यत्न करेगा।

मधुसूदन की एक मौसी ज़िला फ़ैजाबाद के एक गांव में रहती थी। वह मधुसूदन की मां से छोटी थी। उसके विवाह के समय श्यामाचरण एक बार उसे उसके घर मिलने गया था। पीछे परस्पर कोई सम्पर्क नहीं रहा। अब श्यामाचरण को उनकी आवश्यकता अनुभव हुई। एक दिन श्यामाचरण मन्दिर का काम मधुसूदन को सौंप अयोध्या जी स्नान करने के बहाने से घर से चला तो सीधा अपने साढ़ू के घर जा पहुँचा। वह विचारा बहुत निर्धन, मामूली सी भूमि पर काश्त कर निर्वाह करता था। उसके तीन लड़के और दो लड़किया थी। लड़के तो दूसरे-तीसरे दर्जे तक शिक्षा प्राप्त कर रह गये थे और लड़कियां सर्वथा अपढ़ थीं। उसकी आर्थिक दशा ऐसी थी कि वह बच्चों को अधिक शिक्षा देने की सामर्थ्य ही नहीं रखता था।

एक दिन एक ब्राह्मण देवता को हाथ में एक गठरी लटकाये द्वार पर पहुँचा देख लड़के भौचक्के हो देखने लगे। बड़ा लड़का जिसकी आयु पन्द्रह वर्ष की प्रतीत होती थी मकान के दरवाजे में बैठा रस्सी बट रहा था। श्यामाचरण लड़के के मुख को ध्यान से देख रहा था ताकि पहचानने का यत्न करे कि वह मां के ऊपर गया है अथवा नहीं। उसकी मां की आकृति उसे भली भांति याद थी। परन्तु मां के साथ कोई समानता न पाकर उसने पूछकर निर्णय करना चाहा, और बोला, "क्यों भाई! पं० देवकी मिश्र का मकान यही है क्या?"

"हां! क्या बात है?"

"तुम देवकी मिश्र के लड़के हो? उसका बड़ा लड़का इतना बड़ा ही होना चाहिये।"

"हां!"

"तुम्हारा बाप कहां है?"

"फ़ैज़ाबाद काम से गया है। शाम तक लौटेगा। तुम कहां से आये हो?"

श्यामाचरण ने कहा, "भाई! तनिक खाट तो डलवा दो। बहुत

धूप लगी है।"

लड़के ने तनिक सशंक होकर पूछा, "तुम कौन हो? क्या काम है तुमको?"

दरवाजे पर एक नीम का पेड़ था। दरवाजे के साथ एक टूटी सी बांस की खटिया खड़ी थी। श्यामाचरण ने एक हाथ में गठरी लटकाये रखी और दूसरे हाथ से खाट को घसीट कर नीम की छाया में डाल ली। गठरी को खाट पर रखकर उस पर बैठ गया। जूता उतारा और गठरी में से एक अंगोछा निकाल पांव झाड़ डाले।

इतने निस्संकोच भाव से नये आने वाले को बैठता देख लड़का विचार-मग्न उसका मुख देखता रहा। इतने में दूसरा लड़का मकान के भीतर से बाहर निकल आया। वह भी अपने भाई के पास खड़ा भाई का मुख देखने लगा। श्यामाचरण ने इतमिनान से बैठकर कहा, "क्यों! यह तुम्हारा भाई है क्या? हां तो तुम्हारा क्या नाम है?"

अब बड़े लड़के ने कुछ हौसला कर पूछा, "तुम कहां से आये हो और दादा से क्या काम है?"

इस समय तक श्यामाचरण आराम से खाट पर बैठ चुका था। पूछने लगा, "तुम्हारी मां घर पर है?"

अब दोनों भाई एक दूसरे का मुख देखने लगे। आखिर इतना बताने में कुछ हानि न समझ बड़ा बोला, "हां।"

"तो बेटा, तनिक उसके पास यह मेरी गठरी ले जाओ और उसको कहना कि इलाहाबाद से उसके जीजा आये हैं।"

लड़का गठरी पकड़ने में संकोच करता रहा परन्तु श्यामाचरण ने उसकी पीठ पर हाथ फेरकर उसे इतने काम के लिये राजी कर लिया। शायद श्यामाचरण की बातों का उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता यदि गठरी में फल और मिठाई की झलक उसे न मिलती।

गठरी भीतर गई। श्यामाचरण की साली ने किवाड़ की ओट में खड़े होकर पहले पहचाना और फिर लड़कों को सांत्वना देकर उन्हें घर

के भीतर बुला भेजा।

"वाह जीजा जी ! आज आपको हमारी सुध हुई सो परमात्मा का लाख लाख धन्यवाद है। जब से बहिन का देहान्त हुआ आपने तो मिलना और चिट्ठी-पत्री भी बन्द कर दी थी। यह आपने इतनी अधिक मिठाई वगैरा लाने का कष्ट क्यों किया। हम ग़रीबों के यहां तो आप ऐसे भी आजाते तो आपकी बहुत कृपा होती। रमेश के पिता आज फ़ैजाबाद गये हैं। हमारे पड़ोस में कुछ दिन हुए दंगा हो गया था। पुलिस वाले गवाह बनाकर ले गये हैं। सुनाइये ! आप तो अच्छी तरह हैं। लड़के का क्या हाल है ? अब तो बड़ा हो गया होगा।"

श्यामाचरण ने भी बातों बातों में अपने वहां पहुँचने का कारण वर्णन कर दिया। उसने कहा, "अयोध्या जी स्नान करने आया था। विचार आया कि आप लोगों को देख चलूं। मधुसूदन की मां के देहान्त के पश्चात तो घर से निकलने को चित्त ही नहीं करता था। अब मधुसूदन बड़ा हुआ है। संस्कृत अंग्रेजी दोनों पढ़ ली हैं। चौदह दर्जा तक पढ़ाई की है। अब चित्त को कुछ शान्ति हुई है और घर से बाहर पांव रखने का अवसर मिला है। आप लोगों के अतिरिक्त मेरा कोई और सम्बन्धी भी नहीं। अब आप ही को मधुसूदन के विवाह आदि का प्रबन्ध करना चाहिये। घर में कोई स्त्री होती तब भी कुछ बात थी। किसी स्त्री के न होने से अब तुम्हें ही उसकी मां का भार सिर पर लेना होगा।"

"लड़के की आयु पचीस वर्ष की हो गई होगी और इतनी देर तक उसका विवाह नहीं किया। हमारे रमेश के लिये तो अभी से नाते आने लगे हैं और वह अभी पन्द्रह वर्ष से अधिक का नहीं है।"

"शहर की बात दूसरी है और देहात की दूसरी। वहां तो छोटी आयु में विवाह अच्छा नहीं समझा जाता।"

उस दिन श्यामाचरण वहीं रहा। शाम को उसका साढ़ू आया तो फिर मधुसूदन के विवाह की चर्चा चली। निर्धन सम्बन्धी धनी सम्बन्धियों की भरसक सेवा-सुश्रूषा करते हैं। यद्यपि श्यामाचरण धनी नहीं कहा जा

सकता था फिर भी देवकी मिश्र के सम्मुख वह कुवेर के समान था। मिश्र जी ने अपने और पड़ोस के गांव के कितने रिश्ते बताये। बहुत विचारोपरान्त पड़ोस के एक ब्राह्मण की लड़की का चुनाव किया गया। दूसरे दिन मधुसूदन की मौसी लड़की को बहाने से अपने घर बुला लाई। श्यामाचरण ने उसे पसन्द कर लिया। लड़की की आयु बारह-तेरह वर्ष की थी। पक्का गन्दमी रंग, मोटी मोटी आंखें और नाक, बाहर को निकले हुए होंठ और छोटी सी ठुड्डी विशेष वर्णन के योग्य थी। अब लड़की के बाप से बातचीत होने लगी। श्यामाचरण ने कहा, "हमें दहेज इत्यादि कुछ नहीं चाहिये। लड़की चाहिये, केवल लड़की।"

इलाहाबाद जैसे नगर के एक मन्दिर के पुजारी को एक देहात की लड़की के लिये मिन्नत करते देख लड़की के पिता के मन में सन्देह हुआ कि दाल में कुछ काला है। उसने समझा लड़का अवश्य अपाहिज होगा, अन्यथा पुजारी महाराज को दहेज के बिना ही विवाह की न सूझती। लड़की के पिता ने कहा, "मैं लड़का देखने इलाहाबाद आऊंगा।"

श्यामाचरण ने बहुत प्रसन्नता से कहा, "हां हां! अभी मेरे साथ चल सकते हैं।"

"नहीं, मैं दो-तीन दिन में आऊंगा और यदि काम पसन्द का हुआ तो नारियल-छुहारा तब ही दे आऊँगा। परन्तु बरात इत्यादि कितनी बड़ी होगी?"

"इसकी आप चिन्ता न करें। यह सब आपकी इच्छानुकूल हो जावेगा।"

लड़की का पिता इस आकस्मिक सौभाग्य के उदय होने से बहुत आनन्दित हुआ। फिर भी उसके मन में कुछ सन्देह बना ही रहा। श्यामाचरण तो उसी दिन लौट गया और लड़की का पिता शुभ मुहूर्त निकलवा अपने भाई-बन्धुओं में से चार को साथ ले एक दिन इलाहाबाद जा धमका।

मधुसूदन अपना संगीत का अभ्यास करके हटा ही था कि श्यामा-

चरण पांच देहाती ब्राह्मणों को साथ लिये उसके कमरे में आ पहुँचा। श्यामाचरण ने आवाज दी, "बेटा!"

"हां पिता जी!" मधुसूदन ने तम्बूरा एक तरफ़ रख दिया, और करताल को मेज पर रख उठ खड़ा हुआ।

श्यामाचरण ने कहा, "बेटा, ये लोग तेरे मौसिया गांव से आये हैं।"

"आइये, भगवन्! पधारिये।" इतना कह मधुसूदन ने सब को कमरे में फ़र्श पर सम्मान से आसन दिया। वे सब लोग मधुसूदन की आयु, मुख का सौन्दर्य और तेज, और शरीर का गठन और वाणी की मिठास देख दंग रह गये। उनमें से एक ने पूछा, "बेटा, तुम्हारा क्या नाम है?

"पिता जी ने मेरा नाम मधुसूदन रख दिया है।"

महमानों में से एक कुछ हंसोड़ प्रकृति का था। बोला, "पिता जी ने?"

"हां महाराज! माता जी का तो देहान्त हो ही गया था। बस माता-पिता दोनों का स्थान पिता जी ने ही ले लिया था।"

सब के मुख गम्भीर हो गये। मधुसूदन ने उत्सुकता से पिता जी की ओर देखकर कहा, "पिता जी! मेरे मौसा कौन हैं?"

"बेटा, वह तो नहीं आये। ये लोग उन्हीं के गांव के हैं। ये तुम्हें देखने आये हैं।"

"मुझे देखने?" मधुसूदन का मस्तक ठनका। उसे कुछ सन्देह हो गया कि इन लोगों के आने में उसके पिता का हाथ अवश्य है। कुछ दिन हुए जब वह दो दिन के लिये कहीं बाहर गये थे, अवश्य इसी प्रबन्ध में गये होंगे। परन्तु वह क्या करे? यह तो झगड़े की बात होगी। इस पर भी उसे अपना व्यवहार निर्णय करते देर नहीं लगी। उसने मन में कहा कि वह पूर्णिमा के अतिरिक्त किसी से विवाह नहीं कर सकता। इतना सोच वह उठ खड़ा हुआ। पिता ने अचम्भे से पूछा, "क्यों कहीं जा रहे हो?"

मधुसूदन ने रूखेपन से उत्तर दिया, "जी नहीं। मैं अपने आपको इनको दिखा रहा हूँ।"

पिता ने विस्मय में पूछा, "दिखा रहे हो?"

"जी हां! ये लोग मुझे देखने आये हैं न। जैसे भेड़-बकरी को खरीदने के समय देखा जाता है, वैसे ही ये देखने आये हैं तो भली भांति देख लें। और यदि इनका विचार हो तो घोड़े की भांति भागकर दिखा दूँ ताकि इनको प्रतीत हो जाय कि लंगड़ा तो नहीं हूँ।"

श्यामाचरण को मधुसूदन के उजड्डुपन पर क्रोध तो बहुत आया परन्तु भीतर ही भीतर उसे पी गया। हंसते हुए बोला, "बेटा! यह बात नहीं। भला कौन है जो तुम्हें लंगड़ा-लूला समझेगा। मेरा देखने से अभिप्राय था तुम्हें मिलने आये हैं।"

आये हुओं में से एक ने श्यामाचरण के कहने का समर्थन करते हुए कहा, "हां हां! बेटा तुमसे मिलने। बैठो। तनिक एक-दो बातें तुम से पूछेंगे। हम देहातियों की बातों से नाराज न होना। हम तुम लोगों जितनी बातें नहीं कर सकते परन्तु बुद्धि तो भगवान की दी हुई वस्तु है। वह हम भी कुछ रखते हैं।"

मधुसूदन मुस्कराता हुआ बैठ गया। उसने कहा, "हां बातचीत भी कर लीजिये। आपकी बुद्धि में मुझे संशय नहीं, परन्तु अपनी बुद्धि का भी परिचय तो आपको देना चाहता हूँ अन्यथा आपका यहां आना कैसे सफल होगा।"

"एक विचार से तो हमारा आना सफल ही हुआ है। हम जैसी आशा करते थे वैसा ही तुम्हें पाया है। परन्तु एक बात हमारी समझ में नहीं आयी कि तुम्हारे जैसे सुन्दर, ओजस्वी और पढ़े-लिखे लड़के का विवाह अभी तक क्यों नहीं हुआ?"

मधुसूदन ने अभी भी व्यंग के भाव से कहा, "आप जैसी आंखें और परख यहां के लोगों में नहीं है न। नहीं तो अब तक मेरे घर लड़के हो जाते। आप क्या समझते हैं मेरी कितनी आयु होगी?"

यह बात सुन देहाती विस्मित हो मधुसूदन का मुख देखने लगे। एक ने मन में बहुत अन्दाज लगाकर कहा, "मेरे विचार में तुम पचीस-तीस साल के होगे।"

"पचीस-तीस ? खूब ! आप पचीस और तीस में कुछ अन्तर ही नहीं मानते। अजी यदि पचीस वर्ष की आयु में विवाह हो तो तीस तक घर में तीन लड़के होने चाहियें और यदि पन्द्रह वर्ष में विवाह हो तो तीस वर्ष में घर में पोता हो जाना चाहिये।"

श्यामाचरण बातों की प्रगति देख मन ही मन क्रोधित हो रहा था। जब आयु का प्रश्न आया तो वह और भी घबराया, क्योंकि उसके विचारानुकूल तो सत्य ही लड़के का विवाह चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में हो जाना चाहिये था। उसने बातों को दूसरे ढर्रे पर ले जाने के लिये कहा, "आप जानते हैं नगरों में तो बिना पढ़े-लिखे काम नहीं चलता और पढ़ने के लिये समय चाहिये। लड़के ने शास्त्री की परीक्षा पास की है और फिर अंग्रेजी का बी० ए० भी किया है। इतना पढ़ने के लिये कितना ही तो धन चाहिये और कितने ही वर्ष। मधुसूदन की आयु चौबीस वर्ष और कुछ मास ही है, अधिक नहीं।"

इस पर देहाती देवताओं में से एक बोल उठा, "तो पण्डित जी हमने सब कुछ देख लिया है। अब हम बाहर चलकर आप से बातचीत करेंगे।"

श्यामाचरण भी मन से यही चाहता था। वह इन लोगों को मधुसूदन से और बातें करने देना नहीं चाहता था। उसका विचार था कि यदि सब कुछ निर्णय हो जाय तो मधुसूदन को मानना ही पड़ेगा, और यदि पहले उसकी सम्मति ली गयी तो वह अवश्य इन्कार कर देगा। ऐसा विचार कर उसने कहा "हां हां! चलिये।"

"परन्तु," मधुसूदन ने उन सब को कहा, "आपने मेरे साथ बातचीत तो की ही नहीं। यदि आपको कुछ और नहीं पूछना तो मैं ही पूछ लूँ?"

इस पर सब एक दूसरे का मुख देखने लगे। मधुसूदन ने अब पूछना आरम्भ कर दिया। उसने पिता जी के हस्तक्षेप से पूर्व ही बातचीत आरम्भ कर देनी उचित समझी। उसने पूछा, "आप लोगों के यहां शुभागमन का कारण क्या मैं जान सकता हूँ?"

वे लोग अभी भी अचम्भे में थे और कुछ उत्तर नहीं दे सके।

मधुसूदन ने फिर पूछा, "आपने कहा था कि इतनी बड़ी आयु तक मेरा विवाह नहीं हुआ, तो क्या आप मेरे विवाह के सम्बन्ध में आये हैं ?"

इस पर पांचों के पांचों बोल उठे, "हां हां ! क्यों नहीं।"

"ओह ! आपका बहुत धन्यवाद है। आपने मुझ गरीब ब्राह्मण पर अनुपम कृपा की, परन्तु आपने एक बात तो बताई ही नहीं।"

"वह क्या ?"

"यही कि लड़की के बाप कौन हैं ?"

अब एक ने कहा, "क्या बात है ? लड़की मेरी है।"

"आपका शुभ नाम क्या है ?"

"मेरा ?..........."

इस पर श्यामाचरण के क्रोध का वारापार नहीं रहा और आवेश में बोल उठा, "बस ! बेहूदा बात मत करो।"

मधुसूदन ने नम्रता से कहा, "परन्तु पिता जी, मैंने ज्योतिष जो सीखा है तो उसका लाभ उठाना चाहिये या नहीं। हां तो साहब, आपका प्रचलित नाम क्या है ?"

लाचार ब्राह्मण देवता को कहना पड़ा, "भगवत प्रसाद पांडे।"

"पांडे जी महाराज ! आपकी लड़की की आयु कितनी है ?"

"ये बातें तो बेटा पूछी नहीं जातीं," श्यामाचरण ने कहा।

"खैर ! होगी नौ-दस वर्ष की। वह कुछ पढ़ती भी है या नहीं ?"

लड़की के पिता ने कहा, "नहीं ! ये बातें लड़के नहीं पूछा करते। तुम्हारे बाप ने लड़की देखी है और वह सब कुछ जानता है।"

"परन्तु विवाह तो मैंने करना है। देखिये साहब मैं आपको एक बात बता दूं। मुझे आपके घर शादी नहीं करनी। मेरा विवाह दूसरे स्थान पर पक्का हो चुका है। पिता जी यह जानते हैं। फिर न जाने आप लोगों ने इनको क्या लालच देकर फँसा लिया है।"

"लालच ! हमने तो कुछ लालच नहीं दिया। इसके विपरीत बात तो यह है कि पण्डित जी ने हमें लालच दिया है कि वह हमसे दहेज

इत्यादि कुछ नहीं लेंगे।"

"खैर कुछ भी हो! मैंने आपको सब बात स्पष्ट रूप में बता दी है।" इतना कह मधुसूदन उठ खड़ा हुआ।

स्वयम् शीघ्र ही आने को कह श्यामाचरण ने सब को बाहर चलने के लिये कहा। जब वे चले गये तो क्रोध में लाल आंखें कर बोला, "यह तुमने क्या किया है?"

"यह बात तो मुझे आपसे पूछनी चाहिये थी। आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया कि आप मेरे लिये लड़की ढूंढने गये थे।"

"यह काम तो मेरा था और मैंने किया। तुमसे पूछने की क्या आवश्यकता थी? सब लड़कों के पिता ऐसा ही करते हैं।"

"क्या आपको ज्ञान नहीं कि मेरा विवाह निश्चय हो चुका है?"

"मैंने तो निश्चय नहीं किया। तुम्हारे निश्चय करने से क्या होता है?"

"विवाह तो मेरा होना है।"

"हां हां! और तुम्हारे लिये ही लड़की ढूंढने गया था।"

"परन्तु आपको ज्ञात था कि मैंने ढूंढ रखी है। फिर आपने कष्ट क्यों किया?"

"खाक ढूंढ रखी है। एक कायस्थ की लड़की से ब्राह्मण के लड़के का विवाह नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"शास्त्र की आज्ञा के विपरीत है।"

"शास्त्र में तो लिखा है कि ब्राह्मण चारों वर्ण में किसी की भी लड़की से विवाह कर सकता है। मनु महाराज अपनी स्मृति में ऐसा ही लिखते हैं।"

"वह सतयुग की बात है।"

"परन्तु पिता जी मनु महाराज तो ऋषि थे। वह त्रिकालज्ञ थे और उन्होंने जो कुछ लिखा है सब कालों के लिये लिखा है।"

"होगा, मैंने मनुस्मृति तो पढ़ी नहीं।"

"तो फिर आपने शास्त्र की दुहाई क्यों दी?"

"मैं तो रिवाज को ही मानता और जानता हूँ।"

"तो आप आज-कल के कलयुगी लोगों को ऋषि-महर्षियों से अधिक बुद्धिमान और धर्मात्मा समझते हैं ?"

"हमने रहना तो इन्हीं लोगों में है न।"

"ये लोग मुझे और आपको क्या लाभ पहुँचा रहे हैं जो हम इनकी अन्याय और अधर्म की बातें तक मानने लगें ?"

"मैं तो केवल एक गरीब पुजारी और पुरोहित हूँ।"

"इससे तो और भी आवश्यक हो जाता है कि हम धर्मशास्त्र को लोगों की उलटी-सीधी बातों से अधिक मानें।"

"तो तुम कायस्थ की लड़की से विवाह करना चाहते हो ?"

"मैं इस अपढ़ देहाती गंवार लड़की से विवाह नहीं करूंगा।"

"तुम अपढ़ से नाचने वाली को अच्छा समझते हो ?"

"मैंने पांडे जी की लड़की को देखा नहीं और न ही उसके विपरीत कुछ कहता हूँ। मैं पूर्णिमा को सब प्रकार से अच्छा समझता हूँ।"

"तुमने नरक का मार्ग पकड़ा है और तुम मुझे भी उधर ही घसीट कर ले जाओगे।"

इतना कह श्यामाचरण बाहर जाने के लिये कमरे से बाहर निकल आया। परन्तु ज्यों ही उसने कदम ड्योढ़ी से बाहर रखा सम्मुख पूर्णिमा को खड़े देखा। पूर्णिमा को देख उसके क्रोध की मात्रा नहीं रही। परन्तु पूर्णिमा ने श्यामाचरण के चरण स्पर्श किये। सेठ कुंजबिहारी के पत्र से उसे ज्ञात होगया था कि उसके विवाह की बात मधुसूदन के पिता को मालूम हो गई है। इस कारण उसने आज पहली बार उसके चरण स्पर्श किये थे। श्यामाचरण क्रोध में तो बहुत था परन्तु पूर्णिमा के इस कार्य ने उसके क्रोध को बाहर फूट पड़ने से रोक दिया। उसने आशीर्वाद नहीं दिया और क्रोध में मुख ऊपर उठाये बाहर जहां देहाती लोग बैठे थे चला गया।

देहातियों ने भी पूर्णिमा को आते देखा था, और इतनी सुन्दर युवा

लड़की को निधड़क भीतर आते देख वे विस्मय में एक दूसरे का मुख देख रहे थे। श्यामाचरण को क्रोध से लाल देख वे समझ गये कि बाप-बेटे में तू-तू मैं-मैं हुई है। श्यामाचरण उनके समीप बैठ गया परन्तु कुछ बोला नहीं। पांडे जी ने कुछ देर श्यामाचरण के बोलने की प्रतीक्षा कर कहा, "पुजारी जी! तुमने हमको बहुत धोखा दिया है। जब तुम्हारे लड़के के ऐसे कुलच्छन थे तो तुमने हमें बुलाया क्यों? व्यर्थ में दस-बारह रुपये का खर्चा हुआ और तुम्हारे लड़के के ताने सुने।"

श्यामाचरण ने आंखें नीची किये हुए कहा, "पण्डित जी महाराज! अपने लड़के के इस व्यवहार के लिये क्षमा चाहता हूँ। मेरा विचार था कि वह आपत्ति नहीं करेगा परन्तु संसार की प्रगति के साथ वह भी बहु गया है। यही लड़की है जिससे वह विवाह करने का हठ किये हुए है। यह पढ़ी लिखी है, सुशील है, और सब प्रकार से ठीक है परन्तु जन्म की कायस्थ है। मैंने बहुत समझाया, सिर पटका, परन्तु वह मानता ही नहीं। एक समय कहता था कि जब ब्राह्मण कुल की लड़की न मिले तो क्या किया जाय। इसी कारण मैं ब्राह्मण-कन्या ढूंढने गया था। आप लोगों को यहां आने का कष्ट दिया। अब कहता है यह लड़की अशिक्षित है। वह इस कायस्थ लड़की के मुकाबिले में सर्वथा अयोग्य है।"

जब देहातियों ने यह जाना, कि जिस लड़की से मधुसूदन ने अपना विवाह निश्चय किया है वह वही लड़की है जिसके सौन्दर्य और तेज पर वे विस्मय कर रहे थे, तो चुप होगये। उनमें एक बहुत ही विचारशील व्यक्ति भी था। उसने श्यामाचरण से कहा, "पुजारी! तुम महा मूर्ख प्रतीत होते हो। जब तुम्हें मालूम था कि मधुसूदन के मन में ऐसी स्वर्गीय अप्सरा समाई है तो तुमने उसके लिये पांडे जी की कुरूप और गंवार लड़की को क्यों चुना और पसन्द किया? यदि झूट-सच बोलकर वह इस विवाह के लिये राज़ी भी कर लिया जाय तो क्या विवाह के पश्चात वह एक क्षण के लिये उसे प्रेम कर सकता है?" पांडे जी को सम्बोधन कर उसने कहा, "भगवत प्रसाद, भले छूटे हो। यदि लड़का बाप के सम्मुख संकोच कर

मान भी जाता तो भाई विवाह के पश्चात तुम्हारी लड़की को कीड़े पड़ जाते। भला ऐसी सुन्दर लड़की के सम्मुख तुम्हारी सीधी-सादी लड़की की एक भी चलती? चलो यहां से चलें। पुजारी जी की मूर्खता के कारण लड़की को कुँएँ में ढकेलने जारहे थे।"

इतना कह सब उठ खड़े हुए और श्यामाचरण को वहीं विचार-मग्न छोड़ घर से बाहर निकल गये।

[ ३ ]

जब श्यामाचरण क्रोध से लाल-पीला होता हुआ बिना कुछ कहे बाहर के कमरे में चला गया तो पूर्णिमा कुछ काल तक उसकी ओर देखती रही। उसके चले जाने के बाद उसने मधुसूदन की ओर देखा और उसके मुख पर विवर्णता देख वह चकित रह गई। उसने हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछा, "क्या बात है? बाप-बेटा दोनों घोड़े पर सवार प्रतीत होते हैं!"

मधुसूदन ने उत्तर देने के स्थान पर प्रश्न कर दिया, "सुनाओ कैसे आना हुआ?"

"वाह! पहले बैठाइये, कुशल समाचार बताइये, फिर आने के कारण की बात भी हो जायगी। इतनी दूर से आई हूँ और आते ही पूछने लगे, क्यों आई हो? पहले तो आप इतने अशिष्टाचारी नहीं थे।"

मधुसूदन अपनी अशिष्टता पर लज्जित हो कहने लगा, "पूर्णिमा, क्षमा करना। आज पिता जी से कुछ झगड़ा हो गया है। इसी कारण मन स्थिर नहीं था। आओ, बैठो। सामान भी साथ है क्या?"

अब पूर्णिमा ने बैठकर कहा, "पिता जी से झगड़ा किया, भारी भूल की।"

"हां! परन्तु क्या करूं वह कुछ करने को कहते थे और मैं वह करना नहीं चाहता था।"

"वाह कर क्यों नहीं दिया, जो वह कहते थे? जाइये पहले उनसे क्षमा मांग कर उनका कहना कर दीजिये, फिर मैं बताऊंगी मैं क्यों आई हूँ।"

मधुसूदन ने बात टालते हुए कहा, "छोड़ो उनकी बात को। उनको मैं मना लूँगा। हां! तो बताओ अभी स्नान इत्यादि भी किया है या नहीं? क्या जल-पान का प्रबन्ध करूं?"

"हूँ! नहीं बताऊँगी। पहले पिता जी को मनाना चाहिये। मैं तो अब आ ही गई हूँ और खा-पी लूँगी। परन्तु पिता जी को नाराज़ करना कितना खराब है। जाओ पहले उनका कहना कर आओ।"

मधुसूदन उसे झगड़े का कारण बताना नहीं चाहता था। अतएव कहने लगा, "पूर्णिमा! आज कैसी बातें कर रही हो? तुम इतनी दूर से आई हो। प्रातः पांच बजे की गाड़ी से चली होगी और घर से तो चार बजे ही निकली होगी। जब तक तुम कुछ खा-पीकर निश्चिन्त हो जाओगी तब तक मैं पिता जी को मना लूंगा।"

"नहीं, मुझे मनाने की आवश्यकता नहीं है," श्यामाचरण जो कमरे के दरवाजे के बाहर खड़ा दोनों का वार्तालाप सुन रहा था, बोल उठा। इतना कहते कहते वह कमरे में आगया और क्रोध से लाल नेत्र किये दोनों को देखने लगा।

मधुसूदन ने बहुत नम्रता से कहा, "पिता जी, बैठ कर तनिक सुन तो लीजिये। जो भी बात करनी हो उस पर पहले विचार कर लेना ठीक है। विचार करने से भूल से बचा जा सकता है।"

श्यामाचरण निर्णय नहीं कर सकता था कि पूर्णिमा के सम्मुख बात करे अथवा न करे। फिर कुछ सोचकर मधुसूदन के पास बैठ गया। एक बात ने उसके मन पर गहरा प्रभाव डाला था। वह थी उस देहाती की बात कि पूर्णिमा जैसी सुन्दर लड़की के मुकाबिले में पांडे जी की कुरूप लड़की को ला खड़ा करना मूर्खता होगी। परन्तु जिस बात के लिये उसका मन तैयार नहीं होता था वह था कायस्थ की लड़की से ब्राह्मण का विवाह।

मधुसूदन ने पिता को बैठते देख पूर्णिमा से कहा, "पूर्णिमा, तुम इतने में स्नान इत्यादि कर लो।"

पूर्णिमा उठ पड़ी और बाहर जाने को ही थी कि श्यामाचरण ने

कहा, "नहीं ! तुम भी बैठ जाओ। अब आई हो तो सुन ही लो।"

अब पूर्णिमा बहुत असमञ्जस में फँस गई। वह नहीं जानती थी कि क्या करे, बैठे अथवा चली जाय। बाप-बेटे का मत एक नहीं था। इतना तो वह समझ गई थी कि कुछ उसी के सम्बन्ध की बात होगी। कुछ काल तक वह दोनों का मुख देखती रही। फिर यह विचार कर कि जो कुछ है वह सुन लेना ही ठीक है, बैठ गई। अब मधुसूदन चुप था। यह नहीं जानता था कि पिता-पुत्र में झगड़ा पूर्णिमा पर क्या प्रभाव डालेगा। सब से कठिन बात यह थी कि झगड़े का विषय भी पूर्णिमा ही थी। श्यामाचरण का क्रोध अभी कम नहीं हुआ था इस कारण उसी ने कहना आरम्भ किया, "देखो बेटी ! यह अब चौबीस वर्ष से ऊपर हो गया है और बहुत यत्न करने पर फैजाबाद से कुछ लोग इसके विवाह के लिये रिश्ता लेकर आये थे। इसने केवल इन्कार ही नहीं किया प्रत्युत उनकी हँसी उड़ाई है। कितनी लज्जा की बात है।"

पूर्णिमा को जिस बात की आशंका हो रही थी वही हुई। वह समझ गई कि उसके विवाह के विषय में बातें होरही थीं। वह कुछ नहीं बोली। चुप रही। मधुसूदन ने बहुत ही नम्रता से कहा, "पिता जी ! आपने जब उनको बुलाया था तो पहले मुझसे पूछ तो लेते। मैं आपको कदापि उनको बुलाने की सम्मति न देता। अब उनके आने पर यह बताना कितना आवश्यक था कि उनके यहां मैं विवाह नहीं कर सकता। उनको झूठी आशा में फंसा रखना तो बहुत ही बुरी बात थी। अब वे जान गये हैं कि यहां उनकी लड़की का विवाह नहीं हो सकता और उनको लड़की के लिये वर खोजने की स्वतंत्रता है।"

"परन्तु मैं यही तो कहता हूं कि तुम क्यों नहीं उनकी लड़की से विवाह कर सकते ?"

"केवल इसलिये कि मैं नहीं करना चाहता।"

"क्यों नहीं चाहते ?"

"मेरे पसन्द की वह नहीं है।"

पूर्णिमा यह वाद-विवाद सुन बहुत ही संकोच में पड़ गई। प्रति क्षण वह वज्र के समान श्यामाचरण का फतवा सुनने की प्रतीक्षा कर रही थी कि 'पूर्णिमा से विवाह नहीं होने दूंगा'।

श्यामाचरण ने पुत्र को डांट कर कहा, "जब मैंने पसन्द की है तो तुम्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिये।"

"आप उस काल की बात करते हैं जब सात-आठ वर्ष के लड़कों की शादी हो जाती थी। मेरा विवाह भी आप यदि उसी आयु में कर देते तो आपत्ति न कर सकता। परन्तु अब इतना पढ़ने-लिखने के पश्चात तो........"

"मैंने तुम्हें शास्त्र-वेद पढ़ाया था और तुमने अपने पिता की बात का उल्लंघन कर दिया। मुझे यह आशा न थी।"

"परन्तु पिता जी! वेदों और शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा कि माता-पिता कन्या का वर अथवा पुत्र की वधू तलाश करें।"

"तो तुम नहीं मानोगे?"

"मान तो रहा हूँ। आप हिन्दू-धर्म-शास्त्र का तो उल्लंघन न करें। देखिये कृष्ण की बहिन सुभद्रा ने अपने लिये अर्जुन को वरा था। रुक्मणी ने कृष्ण को वर अपने भाई और पिता के प्रबन्ध को उलट दिया था। सावित्री ने यह जानते हुए कि सत्यवान की मृत्यु एक वर्ष में हो जायगी उसे वरा और अपने निश्चय पर अटल रही। यह लोक-रिवाज तो तब से और उन लोगों के लिये बना है जिन्होंने बचपन की शादी को अपनाया है। जब आपने मुझे इतना बड़ा कर दिया है तो विवाह में मेरी सम्मति लेनी ही चाहिये।"

"लोक-रिवाज भी एक धर्म है।"

"हां! परन्तु वह तो बदलता रहता है। देखिये आज से दस-पन्द्रह वर्ष पहले आठ-नौ वर्ष के लड़कों का विवाह कर दिया जाता था। अब नहीं होता। पहले धोती-कुर्ता पहनने की प्रथा थी, अब कोट-पतलून की है। लोक-रिवाज तो बदलता हुआ धर्म है।"

श्यामाचरण जब कुछ उत्तर न दे सका तो उठ पड़ा और कमरे से बाहर निकलते हुए बोला, "तुम धर्म की नाव को डुबो दोगे।"

जब वह चला गया तो मधुसूदन का ध्यान पूर्णिमा की ओर गया। उसकी आँखों से आंसू बह रहे थे। आंखें बन्द थीं और वह होठों को ज़ोर से भींच कर बैठी थी। उसे श्यामाचरण के चले जाने का पता नहीं चला। मधुसूदन ने यह सब कुछ देखा और चौंक कर कहा, "पूर्णिमा! रोती हो?"

"हैं" पूर्णिमा ने आंखें खोल दीं और मधुसूदन के पिता को वहां न पाकर कहा, "हां! परन्तु ये दुःख के आंसू नहीं हैं।"

"ओह! तो तुम पिता-पुत्र में झगड़ा सुन प्रसन्न हो रही थी। वाह, यह कहां की शिष्टता है?"

"तो पिता जी मेरे साथ आपका विवाह पसन्द नहीं करते क्या?"

"हां! नहीं करते।"

"क्यों?"

"केवल इस कारण कि तुम कायस्थ हो और मैं ब्राह्मण।"

"और आप भी ऐसा ही समझते हैं?"

"तो बस यही जानने के लिये रो रही थी? अच्छा, अब बताओ खान-पान कब होगा?"

"खान-पान सब हो चुका है। मैं स्नान कर घर से चली थी। स्टेशन पर होटल में खा लिया है। और मैं समझती हूँ बहुत अच्छा किया अन्यथा आज आपके झगड़े में व्रत ही हो जाता। बताइये, आपने भी कुछ खाया-पिया है या नहीं?"

"अभी खाऊंगा, नहीं तो पिता जी भूखे रह जायेंगे।"

जब मधुसूदन खाना खाकर आया तो पूर्णिमा ने उसे अपने आने का कारण बताया। यह एक नई समस्या थी। मधुसूदन ने कहा, "सेठ साहब कभी २ उदारता में सीमा का भी उल्लंघन कर जाते हैं। एक दिन मुझसे पूछते थे कि तुम्हारे फिल्म-कम्पनी में नौकरी करने का

प्रयोजन क्या था। मैंने साधारण रूप में कह दिया था कि कुछ रुपये-पैसे की जरूरत रही होगी। इसके पश्चात फिर उनसे इस विषय पर बात नहीं हुई। अब तुम्हें एक हज़ार रुपया भेज दिया है। परन्तु तुम अब इसे वापिस करने क्यों आई हो?"

"मैं तो वहीं से बीमा करके भेज देती परन्तु यह विचार कर कि इसका प्रभाव उलटा न हो आपके हाथ भेजने का विचार किया है।"

"तुम इसे रख क्यों नहीं लेती? आख़िर मैं इसे वापिस करने क्यों जाऊं? यह तो तुमको मिला है। तुम जानो वह जानें।"

"मैं इस रुपये को रखना अपना भारी अपमान समझती हूँ। यह रुपया मुझे अपने लिये नहीं चाहिये। जिस काम के लिये चाहिये वह मैं सेठ साहब से बता नहीं सकती। और वह तो मेरा वज़ीफा लगा रहे हैं। लिखते हैं कि इतना रुपया प्रति मास भेजा करेंगे। बताओ यह रुपया मैं क्यो कर स्वीकार कर सकती हूं?"

"तो तुम स्वयं जाकर उनको बता दो कि तुम फिल्म-कम्पनी में नौकरी क्यों करती थी और रुपया अमुक काम के लिये चाहिये। यदि वह चाहेंगे तो रुपया देंगे, नहीं चाहेंगे तो नहीं देंगे।"

"यह मैं बिना नेता की स्वीकृति के नहीं बता सकती।"

"तो फिर क्या किया जाय?"

"एक बात और भी है। सेठ साहब से रुपया मैं नहीं ले सकती। उनका मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव जितना अनुचित था उतना ही उनका यह रुपया भेजना अनुचित है। उन्होंने पत्र में लिखा था कि यह रुपया आपकी ओर से भेंट समझी जावे। इस कारण यह आपकी मार्फ़त ही वापिस होगा।"

"परन्तु यह रुपया मैंने तो भेजा नहीं और न मैं इसे लेकर जाऊंगा। मुझ पर सेठ साहब का बहुत अहसान है और मैं उन्हें इस मामूली सी बात पर नाराज़ करना नहीं चाहता।"

"तो यह बात मेरी ख़ातिर भी नहीं करेंगे?"

अब मधुसूदन निरुत्तर था। वह पूर्णिमा के लिये क्या नहीं कर सकता था। इस पर भी उसने इतना कहा, "यदि तुम ऐसा कहती हो तो कर दूँगा। परन्तु यदि तुम भी साथ चलो तो बात कुछ सुगम हो जायगी।"

"क्या आप मेरा उनके सम्मुख जाना उचित समझते हैं?"

"इस समय तो आवश्यक है। वैसे इसमें कुछ भी अनुचित नहीं। दूसरों की भूल को भुला देना ही उचित है।"

[ ४ ]

सेठ साहब भीतर सो रहे थे। ज्येष्ठ में दोपहर के समय सब से बढ़िया काम किसी अंधेरे ठण्डे स्थान में सोने के अतिरिक्त दूसरा नहीं। इलाहाबाद की सड़कें तपकर लाल हो जाती हैं, और विरले ही उस समय उन पर घूमते हुए दिखाई देते हैं। नौकर भी जो बैठक के बाहर बरामदे में पड़ा सुसता रहा था इस समय मधुसूदन को देखकर प्रसन्न नहीं हुआ, परन्तु पूर्णिमा को साथ देख मजबूरन उनके आने की सूचना भीतर पहुँचाने चला गया।

सेठ साहब पूर्णिमा का नाम सुनकर तुरन्त बैठक में आगये और बोले, "आओ! आओ! पूर्णिमा। इतनी धूप में कहां घूम रही हो। कल ही अखबार में निकला था कि कई लू से मर चुके हैं। बैठो। क्या पिओगी? शर्बत, लैमनेड या नीबू का रस।"

इस आवभगत के पश्चात इधर-उधर की बातें होने लगीं। पूर्णिमा ने सेठ साहब को राय साहब की पदवी छोड़ने पर बधाई दी। इस पर सेठ साहब ने पूछा, "तो तुम भी इसे अच्छा समझती हो?"

"हां। सरकार को सहयोग देना पाप है। आप इस पाप-कर्म से बाहर निकल आये हैं। यह अति हर्ष का विषय है।"

सेठ साहब ने कहा, "जब मधुसूदन और अन्य युवकों से मैं अपने कार्य की सराहना सुनता हूँ तो चित्त को शान्ति मिलती है परन्तु दूसरे पक्ष के लोग भी हैं जो इससे विपरीत कहते हैं।"

"क्या कहते हैं?"

"अभी उस दिन यहां के सेशन-जज मिस्टर ए० पी० सक्सेना आये थे। वह समझाने लगे। कहते थे मैंने अच्छा नहीं किया। उनका कहना है कि मेरे इस पद-त्याग से सरकार की तो कुछ हानि होगी नहीं। उसे तो मेरे स्थान पर दस राय साहब बनाने को मिल जायेंगे। यदि कुछ हानि होगी तो मुझे और बहुत अंशों में साधारण जनता को। मैंने कभी २ लोगों की हाकिमों से सिफारिश कर उनको बहुत सुविधायें दिलवाई हैं। जज साहब समझते थे कि यह काम भी भारी उपकार का है और मैंने पदवी का त्याग कर इस उपकार करने की शक्ति पर आघात किया है। यद्यपि उनकी बातें सर्वथा सत्य प्रतीत होती हैं और उनकी युक्तियों को सुन कर मेरा दिल संशय में पड़ गया था फिर भी जब तुम जैसे लोगों से मिलता हूँ तो उत्साह फिर बंध जाता है। परन्तु क्या यह थोड़ा सा उपकार जो मैं लोगों का कर सकता था वह अच्छा नहीं था?"

"आपके स्थान पर जब दूसरा राय साहब बनेगा तो वह यह काम कर देगा। यथार्थ में ये बातें पत्तों में पानी देने के समान हैं। इनसे यथार्थ लाभ नहीं हो सकता। सब दुःखों का मूल देश की पराधीनता है। इन छोटे २ लाभों के लिये देश को पराधीनता में रखने में सहायता देना किसी प्रकार भी उचित नहीं जान पड़ता।"

"परन्तु मेरे पद-त्याग से तो सरकार में शिथिलता आई नहीं। मुझ से अधिक सहायता देने वाले मैदान में आगये हैं। देखो जैसे जैसे राष्ट्रीय आंदोलन उन्नत होता जाता है वैसे २ ही अधिक सरकार के सहायक भी पैदा होते जाते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले प्रायः हिंदू हैं और सरकार की सहायता करने वाले प्रायः मुसलमान। परिणाम यह हो रहा है कि सरकार के कामों में जितने मार्के के स्थान हैं उन सब पर मुसलमान पहुंचते जाते हैं।"

"आपका फरमाना सर्वथा सत्य है। परन्तु मुसलमानों से प्रतिस्पर्धा करने के लिये हम देश को बेच नहीं सकते। आप यह तो शायद समझते ही होंगे कि मुसलमानों में भी ऐसे देशभक्त हैं जो सरकार के पिट्ठू मुसल-

मानों को अच्छा नहीं समझते और ऐसे लोगों की संख्या धीरे २ बढ़ जायगी। परन्तु थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि मुसलमान राष्ट्रीयता के विरोधी बने रहेंगे तो हम मुसलमानों को विदेशियों का अङ्ग ही समझेंगे और उनसे भी शक्ति छीनने का यत्न ऐसे ही करेंगे जैसे अंग्रेजों से।"

"किन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक है और इनसे विरोध खड़ा करना बुद्धिमत्ता नहीं होगी।"

"हां! परन्तु जब सब उपाय करने पर भी ये लोग विरोध करने पर डटे रहेंगे तो इनके साथ भी तो वैसा ही व्यवहार करना होगा जैसा अंग्रेजों के साथ उचित है। इनकी संख्या को कम करने के उपाय भी करने होंगे।"

"यह तो तुम्हारा बहुत लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम है। परन्तु यह कैसे हो सकेगा?"

"देशभक्तों को अपने में शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये। वीर और शक्तिशलियों के सफलता पांव चूमती है। भीरु, निरुत्साही और शक्ति-हीन लोगों के लिये संसार में स्थान नहीं है।"

"तो क्या सरकार के अच्छे २ पदों पर नियत होना शक्ति प्राप्त करना नहीं है?"

"नहीं। क्योंकि इस शक्ति का स्रोत विदेशियों के हाथ में है। जब तक हम शक्ति का अपने ही लोगों के विपरीत प्रयोग करते हैं तब तक कर सकते हैं परन्तु ज्योंही हम इसे देश की उन्नति में लगाना चाहते हैं हमसे शक्ति छीन ली जाती है। शक्ति के स्रोत को अपने आधीन करना ही शक्ति प्राप्त करना है।"

"सर्वथा शक्ति-शून्य होने से कुछ शक्ति पाना क्या अच्छा नहीं?"

"अच्छा है। परन्तु यहां तो न्यूनाधिक का प्रश्न नहीं। यहां तो शक्ति के प्रयोग के ढंग का प्रश्न है। एक पुलिस का संतरी अपने क्षेत्र में उतनी ही शक्ति रखता है जितना कि भारत-सचिव। अन्तर यदि है तो यह कि सन्तरी अपनी शक्ति का प्रयोग वहां पर ही कर सकता है जहां भारत-सचिव चाहता है। प्रत्येक सरकारी अफसर के पास वह सब शक्ति है जो भारत-

सचिव उसे देना चाहे, परन्तु उस शक्ति का प्रयोग उसी ढंग से हो सकता है जिस ढंग से भारत-सचिव चाहता है न कि अफसर। जो भी अफसर उस शक्ति को किसी ऐसे ढंग पर प्रयोग करना चाहता है जिसे भारत-सचिव तथा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट नहीं चाहती तो एक क्षण में उस अफसर को निकाल बाहर कर दिया जाता है।"

"तो तुम्हारे विचार में यथार्थ शक्ति कानून और नियम बनाने की है।"

"हां! और उन कानूनों और नियमों को कार्यरूप में लाने की।"

"तो इसके लिये तो फौज और पुलिस की ज़रूरत है।"

"निःसन्देह! देश को अपने आधीन करने के लिये फौजी शक्ति की आवश्यकता है। यह शक्ति केवल बातों से नहीं मिल सकती। आप देखें कि भारत की सब सेना कमाण्डर-इन-चीफ़ के आधीन है और वह भारत-सचिव के कहने पर काम करता है। भारत-सचिव से वह बग़ावत नहीं कर सकता क्योंकि इंगलैंड की फौजी शक्ति उसे ऐसा करने नहीं देती।"

"तो तुम्हारा अभिप्राय यह है कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन करने वाले जब तक इंगलैण्ड की फौजी शक्ति से अधिक शक्ति नहीं संग्रह कर लेते तब तक कुछ नहीं हो सकता। इससे क्या यह अधिक सुगम और सम्भव नहीं कि हम इंगलैण्ड की जनता को जो पार्लियामेन्ट की बनाने वाली है अपना हिमायती बना लें, और इंगलैंड की शक्ति के अधिक बने रहने पर भी हम स्वराज्य प्राप्त कर सकें?"

"यदि यह सम्भव होता तो बहुत अच्छा था, परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ और न ही इस अवस्था में होने की आशा है। यदि इंगलैंड के कुछ एक व्यक्ति भारत की लूट-खसोट करते होते तो शेष जनता उन कुछ लोगों के विपरीत हो जाती और उनको हटाकर भारत की लूट बन्द कर देती, परन्तु यथार्थ बात तो यह है कि भारतवर्ष की लूट में प्रत्येक इंग-लैंड-निवासी को भाग मिलता है। आज वहां का जीवन-मान जो इतना ऊँचा है वह भारतवर्ष की लूट के आश्रय पर ही तो है। यह रहस्य प्रत्येक

इंगलैंड-निवासी जानता है। इस कारण वे हमें अपने पंजे से छोड़ देने को कैसे तैयार हो सकते हैं ?

"बहुत अधिक शक्ति की भी हमें इसलिये आवश्यकता नहीं कि इङ्गलैंड का भारतवर्ष से अन्तर, भारतवर्ष की जन-संख्या और इसकी भूगोलिक परिस्थिति सब हमारे पक्ष में हैं। थोड़ी सी शक्ति से भी हम बड़ी शक्ति का मुकाबिला कर सकते हैं। सब से आवश्यक बात यह है कि हम स्वयं तैयार हों।"

"पूर्णिमा ! तुम इतनी बातें कहां से जान गयी हो ? यद्यपि अभी मेरा मन पूर्ण रूप से तुम्हारे विचारों को ग्रहण नहीं कर सका तो भी तुम्हारी बातें, युक्तियां और तुम्हारा विश्वास चकित कर देने वाला है। मेरे पद-त्याग करने में मधुसूदन के विचारों का भारी हाथ है। अब तुम्हें भी इसी विचार का जानकर मुझे अपने किये पर जो कभी पश्चाताप हो जाता था दूर हो गया है।"

अब मधुसूदन ने आने का प्रयोजन प्रकट करने के विचार से कहना शुरू किया, "परन्तु यह तो आपसे लड़ने आई हैं।"

पूर्णिमा बहुत देर से रुपये की बात आरम्भ करने का अवसर ढूंढ रही थी। मधुसूदन को इस चतुराई से बात आरम्भ करते देख बहुत प्रसन्न हुई। वह हंसते हुए कहने लगी, "लड़ने ? नहीं ! नहीं ! मैं तो केवल साधारण सी बात कहने के लिये आई हूँ।"

मधुसूदन ने भूमिका को अधिक स्पष्ट करने के लिये कहा, "साधारण सी बात के लिये काशी से चलकर इलाहाबाद आना कौन मान सकता है ?"

अब सेठ साहब ने कुछ उत्सुकता प्रकट करते हुए पूछा, "क्यों लड़ेगी यह ? मैंने कौन अपराध किया है ? यदि कुछ है तो बताओ, मैं क्षमा मांग लूंगा।"

पूर्णिमा ने कहा, "नहीं ! नहीं ! क्षमा मांगने की कुछ आवश्यकता नहीं। बात केवल यह है कि यह मुझे नहीं चाहिये।" इतना कहते हुए उसने

एक हज़ार रुपये के नोट निकाल कर सेठ साहब के सम्मुख रख दिये।

सेठ साहब ने कुछ खिन्न मन से कहा, "क्या नहीं चाहिये ?"

"यह रुपया स्वीकार करना।"

"क्यों ?"

"मुझे ज़रूरत नहीं।"

"तो फिर क्या हुआ। क्या मुझे अधिकार नहीं कि मैं अपना धन जिसको चाहूँ दूं ?"

"पूर्ण अधिकार है। मुझे इससे कब इन्कार हुआ है। मैं तो केवल यह कह रही हूँ कि मुझे इसकी आवश्यकता नहीं।"

"तो बिना आवश्यकता के ही रख लो।"

"क्यों ?"

"इसलिये कि मैं दे रहा हूँ।"

"यह तो कोई कारण नहीं। मैं इस पर अपना कोई अधिकार नहीं समझती।"

"अधिकार तो है। मैंने तो लिखा था कि यह मधुसूदन की ओर से भेंट समझ लेना। मधुसूदन को मैं अपना लड़का मानता हूँ।"

पूर्णिमा ने अब आंखें नीची किये हुए कहा, "इनकी भेंट स्वीकार करने का भी तो मुझे अधिकार नहीं है।"

"कैसे नहीं है ? क्या तुम्हारी इनसे सगाई नहीं हो गयी ?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

"तुम दोनों का विवाह तो होगा।"

"शायद नहीं।"

"क्यों ? मधुसूदन तो कहता था कि सब तय होगया है।"

"हां होगया था, परन्तु अब कुछ विचार बदल रहा है।"

इतना कह पूर्णिमा उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर सेठ साहब को नमस्ते कह बैठक से बाहर चली आई। सेठ साहब ने देखा कि पूर्णिमा की आंखों की पलकों पर आंसुओं की बूंदें झलक रही थीं। शायद इन्हीं

को छिपाने के लिये वह उठकर एकदम बाहर चली गयी थी। सेठ जी मधुसूदन की ओर देखकर पूछने लगे, "क्या हुआ है जी?"

मधुसूदन 'कुछ मालूम नहीं, पूछने का यत्न करूंगा' कहकर पूर्णिमा के पीछे २ चला आया। पूर्णिमा तांगे में बैठी हुई थी। उसने मधुसूदन को आते देख कहा, "मैं वापिस स्टेशन पर जा रही हूँ। आप तो अब घर जाइयेगा न।"

मधुसूदन ने अचम्भे में पूछा, "स्टेशन पर? घर नहीं चलोगी क्या? गाड़ी जाने में तो अभी बहुत समय है।"

"नहीं, वेटिंगरूम में ठहर जाऊंगी।"

"घर पर ही ठहर जाना। गाड़ी के समय से पहले पहुँचा दूंगा।"

"नहीं। यदि आपकी इच्छा हो तो आप भी स्टेशन पर आइये, वहां से लौट आइयेगा।"

मधुसूदन तांगे में आगे बैठ गया। जब वे वेटिंगरूम में पहुँच कर आराम से बैठ गये तो मधुसूदन ने वह प्रश्न किया जिसके पूछने के लिये वह अधीर होरहा था, "तुमने सेठ साहब से जो कहा है उसमें कितनी सचाई है?"

पूर्णिमा ने लापरवाही से कहा, "सचाई का परिमाण बताना मेरे लिये कठिन है। परन्तु है यह सत्य।"

"क्या सत्य है?"

"यही कि आपसे भेंट स्वीकार करने का अधिकार मुझे नहीं।"

"तो यह कब होगा?"

"शायद कभी भी न हो।"

"क्यों नहीं होगा? मेरा मन तो कहता है अवश्य होगा।"

मधुसूदन ने इस समय फिर देखा कि पूर्णिमा के आंखों से जल छलकने ही वाला है। उसने कुछ समीप होकर पूछा, "पूर्णिमा क्या बात है? बताती क्यों नहीं?"

पूर्णिमा ने कुर्सी कुछ दूर खिसकाते हुए कहा, "क्या आप इस बात

की चर्चा छोड़ नहीं सकते ?"

मधुसूदन बहुत हैरान था कि पूर्णिमा को हो क्या गया है। उसे सन्देह हो रहा था कि पिता जी की बातचीत से पूर्णिमा निराश हो गयी है। परन्तु जब वह अपने व्यवहार और अपनी बातचीत की ओर ध्यान करता था तो उसे पूर्णिमा के निराश अथवा क्रोधित होने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता था। इसी कारण वह पूर्णिमा से स्पष्ट सुनना चाहता था। उसने फिर कहा, "चर्चा तो छोड़ सकता हूँ, परन्तु मन से तो यह सब निकाल नहीं सकता। यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम अपने स्थान पर रोया करो और मैं अपने स्थान पर, और हम दोनों यह न जान सकें कि हमारे इस रोने-धोने का कारण क्या है तो चर्चा अभी समाप्त हो सकती है। परन्तु यह कहां की बुद्धिमत्ता है। हम गूंगे बालकों की भांति तो हैं नहीं। मान लो कि अब हमारे विवाह में कोई अटल कठिनाई आ खड़ी हुई है तो क्या यह अच्छा न होगा कि मैं जान लूँ और असम्भव से अपना मस्तिष्क न लड़ाऊँ ?"

"तो क्या आप नहीं जानते ?"

"क्या ?"

"यही कि मेरे साथ आपके विवाह में भारी अड़चन उपस्थित हो गयी है।"

"नहीं, मैं तो कोई अड़चन नहीं देखता।"

"आपके पिता जी जो नाराज़ हैं।"

मधुसूदन ने प्रसन्न हो कहा, "बस ! या और भी कुछ ?"

"तो क्या यह कम बात है ?"

"वह नाराज़ नहीं हैं। उनका मेरे साथ इस विषय में मतभेद अवश्य है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यदि मैं इस विचार पर पक्का रहा तो वह मेरी बात नहीं मानेंगे।"

"परन्तु श्रीमान ! मैं आपके और आपके पिता के बीच में दीवार खड़ी नहीं करना चाहती। मैं कांटा बनकर आपके घर नहीं आऊँगी।"

"परन्तु यह तुमको किसने कहा कि ऐसा होगा। न तो मेरा पिता जी से झगड़ा होगा और न ही वह तुमसे नाराज़ होंगे। कुछ एक बातें हैं जो वह पुराने विचारों के कारण सुगमता से स्वीकार नहीं कर सकते। इसके लिये मुझे और सेठ साहब को उन्हें समझाना होगा। बस जब एक बार उनको पता चल गया कि यह कार्य अच्छा है तो वह बहुत प्रसन्न होंगे।"

पूर्णिमा ने मुख दूसरी ओर फेरकर कहा, "अच्छी बात है। जब वह प्रसन्न होंगे तो मैं भी अपना निश्चय बदल लूँगी। तब तक मेरा आपसे मेल-जोल ऐसा ही होना चाहिये जैसा भैया के किसी मित्र से हो सकता है।"

"परन्तु तब भी तो तुम हमारे घर में जाकर रही थी। आज क्यों नहीं गयी? यहां स्टेशन पर चार घण्टे गाड़ी के समय से पूर्व ही आ बैठी हो।"

"आज मेरे मन में भय था कि पिता जी कहीं मेरा अपमान न कर दें। पहले ही एक घण्टा बहुत कठिनाई से गुज़ारा था। मैं अपमान सहने की क्षमता रखती हूं या नहीं मैं नहीं जानती, और मैं अपने मन की दृढ़ता की परीक्षा यहां नहीं करना चाहती।"

"न सही। घर नहीं जा सकती तो कुछ हानि नहीं, परन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि निराश होने का कोई कारण नहीं। तुम पिता जी को नहीं जानती। मैं उनकी प्रकृति को भली भांति समझता हूँ। जब मैंने अंग्रेजी पढ़नी आरम्भ की थी तब भी मेरा उनसे झगड़ा हुआ था, परन्तु सब बात समझ जाने पर फिर उन्होंने कभी आपत्ति नहीं उठाई। ऐसा ही अब होगा।"

"जब होगा तब देखा जायगा। अब आप इन बातों को छोड़ दें। मैं इस विषय पर बात करना नहीं चाहती।"

इस विषय पर बात तो समाप्त कर दी गयी, परन्तु इस प्रकार मन के उद्‌गारों को रोकने के पश्चात क्या किसी और विषय पर बातचीत हो सकती थी। मधुसूदन जानता था कि जब मन में एक बात भरी हो

तो दूसरी बातें मुख से नहीं निकल सकतीं। यदि दूसरी बातें की भी जायें तो उनमें रस उत्पन्न नहीं हो सकता और ऐसी बातें करने से मन पर उलटा प्रभाव पड़ता है।

इस पर भी मधुसूदन ने नरोत्तम के विषय की बात आरम्भ कर दी। उसका सुख-समाचार पूछने के पश्चात माता जी की चर्चा हुई। यह भी समाप्त हुई। कुछ और इधर-उधर की बातों के पश्चात सब विषय जिन पर बातचीत सम्भव थी समाप्त हो गये और पश्चात दोनों अपने मन के विचारों में गोते खाने लगे। इस प्रकार एक घण्टे के लगभग व्यतीत हो गया। पूर्णिमा बीच-बीच में कलाई पर बँधी घड़ी पर से समय देख लेती थी।

परन्तु इस प्रकार समय पहाड़ सा प्रतीत हो रहा था। वह व्यतीत होने में ही नहीं आता था। अभी गाड़ी के प्लेटफार्म पर आने में तीन घण्टे कुछ मिनट बाकी थे। "पढ़ने के लिये कोई पत्र ही स्टॉल से ले आइये। समय व्यतीत ही नहीं होता," पूर्णिमा ने कहा।

मधुसूदन 'दैनिक लीडर' की एक प्रति ले आया परन्तु मन को रोकने के लिये यह पर्याप्त नहीं था। आंखें शब्द, पंक्तियां और लेख पर लेख पढ़ रही थीं परन्तु समझ में कुछ नहीं आ रहा था। आखिर पूर्णिमा ने समाचार-पत्र को दूर फेंक दिया और आंखें मूंद कर सम्मुख रखी मेज पर सिर रख लिया। कुछ काल के पश्चात उफ कहकर वह उठ खड़ी हुई और वेटिंग-रूम में इधर उधर घूमने लगी। अब मधुसूदन से न रहा गया। वह बोल उठा, "असम्भव को सम्भव करने का यत्न कितना व्यर्थ है?"

"क्या असम्भव है?"

"मन के विचारों को दबाना, विशेषतः जब वे विचार अत्यन्त दुखदायक हों।"

"परन्तु जब उन विचारों को प्रकट करने से दूसरे को दुख हो तो क्या केवल स्वयं दुख सहना उचित नहीं?"

"अपने प्रिय जनों से यदि सुख बांटना अच्छा है तो दुःख बांटना क्यों अच्छा नहीं ?"

"दुख बांटने से यदि यह कम हो जाय तब भी बात है। परन्तु यह कम नहीं हो सकता। सम्भव है और अधिक हो जाय।"

"बतलाने से दुःख मिट जाता है और प्रायः दुःख केवल भ्रम ही होता है। भ्रम मिटाने के लिये इसे प्रकट करना ही एक उपाय है। सम्भव है यह उस रस्सी के समान हो जो अंधेरे के कारण सांप का रूप धारण कर लेती है। तो क्या यह उचित नहीं कि किसी को रोशनी दिखाने के लिये कह दिया जाय ? रोशनी होने पर भ्रम निश्चय दूर हो सकता है।"

"परन्तु वह रोशनी है किस के पास ?"

"इसका होना एक साधारण व्यक्ति के पास भी सम्भव है।"

"हां तो आपके पास कौन प्रकाश डालने के लिये है ? मेरे मन में तो बात स्पष्ट है। इसमें भ्रम का लेशमात्र भी नहीं।"

"जो भ्रम में फंसे होते हैं वे प्रायः ऐसा ही समझते हैं। पिता जी की बात एक रज्जु की भांति सांप समझ ली गयी है। यह भ्रम नहीं तो और क्या है ?"

"आपके पिता जी की बात तो एक ऐसी घटना थी जिसने कई और बातें मन में जाग्रत कर दी हैं। इन सब के कारण दिमाग़ में ऐसी हलचल मच रही है कि कुछ करते-धरते नहीं बनता।"

"तो इसका अर्थ यह है कि मन में कुछ और भी बात है। क्या उसकी चर्चा भी अनुचित है ?"

अब पूर्णिमा फिर कुर्सी पर बैठ गयी थी और सिर को हाथों में पकड़कर कुर्सी की पीठ की तरफ झुक गयी, मानों उसमें तीव्र वेदना हो रही हो।

मधुसूदन ने उत्सुकता से पूछा, "क्यों क्या बात है ?"

"सिर फटा जाता है। दिमाग़ में विचार अस्त-व्यस्त हो रहे हैं और

मैं कह नहीं सकती कि इसका क्या परिणाम होगा।"

"इसी कारण तो कह रहा हूँ कि जो कुछ बात है वह कह दो तो उसका उपचार ढूंढा जाय।"

"कहने को तो बहुत कुछ आई थी परन्तु अब कहते नहीं बनता। इस समय तो रहने ही दो। इस नई परिस्थिति के कारण अब चुप रहना ही ठीक है।"

"कौन सी नई परिस्थिति?"

"बात यह है कि मैं अब आपसे अपना विवाह सम्भव नहीं समझती। यद्यपि पहले भी बहुत सी आपत्तियां थीं फिर भी मैं उनको दबाती चली जाती थी। अब यह बात तो मेरे आधीन नहीं है। मैं इसको बदल नहीं सकती।"

"तो क्या तुम्हें मेरे कहने का विश्वास नहीं आता? मैं तो यह कह रहा हूँ कि पिता जी के विचार शीघ्र ही बदल जायेंगे। उन्होंने मुझसे राय किये बिना उन देहाती ब्राह्मणों को बुला लिया था। यदि वह पहले मुझको बता देते तो मैं उनको ऐसे समझा देता कि बात यहां तक न पहुंच सकती। अब भी पिता जी को तनिक बताने और समझाने की आवश्यकता है।"

"कुछ भी हो जब मन में एक बार विघ्न उत्पन्न हो जाता है तो वह फिर किसी भी प्रकार निकल नहीं सकता। सेठ साहब ने जो मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव किया था क्या मैं भूल सकती हूँ? इतना तो मेरे मन पर सदैव अंकित रहेगा कि वह बहुत ही अदूरदर्शी हैं। इसी प्रकार, चाहे कुछ हो, यह बात मैं कभी नहीं भूल सकूँगी कि आपके पिता एक मूर्ख गंवार ब्राह्मण कन्या को एक अच्छी खासी पढ़ी-लिखी कायस्थ कन्या से अधिक योग्य समझते हैं। यह बात तो अब जीवन भर मन में खटकती रहेगी कि मैं कायस्थ की बेटी हूँ और इस कारण ब्राह्मण देवता की आंखों में पतित हूँ।"

इतना कहते २ पूर्णिमा का मुख तमतमा उठा। अपने मन के

आवेश को शान्त करने के लिये उसने आंखें मूंद लीं और मेज़ पर सिर रख विचार मग्न हो गयी।

मधुसूदन को उसके वाक्य मुख पर चांटे लगते हुए प्रतीत हो रहे थे। वह जानता था कि इसमें उसका कुछ भी दोष नहीं है परन्तु ऐसे पिता का पुत्र होना ही दोष था। संसार चाहे टल जाय परन्तु उसका पिता से सम्बन्ध अटूट है और उसके पिता के विचार बदल नहीं सकते, केवल दबाये जा सकते हैं। वह चुप कराये जा सकते हैं परन्तु उनके मन के भावों को कैसे बदला जासकता है। मधुसूदन जब यह बात सोचता था तो उसको पूर्णिमा का कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता था कि मन का विष निकाला नहीं जा सकता।

मधुसूदन के मन में बार २ यह प्रश्न उठता था कि यदि पूर्णिमा के लिये पिता जी को छोड़ना पड़े तो क्या वह ऐसा कर सकता है? यह दिल और बुद्धि में द्वन्द-युद्ध चल रहा था। दिल कहता था छोड़ दो। विचार कहता था नहीं। पूर्णिमा ने जब कहा था कि वह बातें तो बहुत करने आई थी परन्तु अब नहीं कर सकती, यह उसके मन का सच्चा चित्र था। वह इस छोटी सी घटना से एक ऐसे मार्ग पर धकेल दी गयी है जो दूर और दूर होता जा रहा है। अभी से ही पूर्णिमा आत्मीयता का अभाव पाने लगी है। वह अब उसे दूसरा, अन्य अनुभव करने लगी है। इसी कारण वे बातें जो वह उससे करने के लिये आई थी नहीं कर सकती। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उस आत्मीयता के सम्बन्ध को तोड़ने में अत्यन्त दुख अनुभव कर रही है। मधुसूदन डरता था कि बार २ इस दुखद विषय पर बात करने से कहीं मन में विकार न बढ़े, इस कारण वह चुप था।

इस दिन समय बहुत कठिनाई से व्यतीत हुआ और गाड़ी आते ही पूर्णिमा उसमें जा बैठी। मधुसूदन ने गाड़ी छूटने से पहले केवल यह पूछा, "अब कब दर्शन होंगे?"

"जब भाग्य में बदे होंगे।" इस उत्तर के बाद फिर कुछ बात नहीं हुई।

[ ५ ]

"मैं पार्टी छोड़ना चाहती हूँ", पूर्णिमा अपने भाई नरोत्तम से कह रही थी, "मुझे आपके कार्य-क्रम में विश्वास नहीं रहा। मेरे विचार ईश्वर और आत्मा के विषय में भी बदल गये हैं।"

नरोत्तम ने गम्भीर भाव धारणकर कहा, "कब से ?"

"यों तो परिवर्तन का आरम्भ बहुत दिन से था, परन्तु इसका अनुभव मैंने उस दिन किया जब आप टांडा में डाकखाना लूटने गये थे। उस रात मैंने स्वप्न में देखा कि वे सबके सब लोग जो डाका डालने गये हैं एक मरुस्थल पर घायल पड़े हैं। रेत उनके रक्त से रंजित हो रही है। मैं डरकर उठ बैठी। उठने के पश्चात भी वह दृश्य आँखों के सम्मुख घूमता रहा। विशेष रूप से तुम्हारा घायल मुख तो बार २ मेरी आंखों के सम्मुख आने लगा था। मुझसे शान्त नहीं रहा गया। मैं अधीर हो उठी। फिर क्या हुआ मैं नहीं कह सकती। मैं अपनी खाट से उठी और पूजा के कमरे में चली गयी। मैंने दीपक जलाया और भगवान से आराधना करने लगी। मां जैसे किया करती है, ठीक वैसे ही। तुम कह सकते हो कि यह संस्कारों का फल था। हो सकता है। इतना मुझे स्मरण है कि उस रात जो कुछ भी मैंने किया वह विना सोचे-समझे किसी आन्तरिक शक्ति की प्रेरणा से किया था। मैं कहती थी कि 'हे भगवन्! अब की बार इन लोगों को बचा दो। मैं फिर इनको ऐसे काम पर नहीं भेजूँगी।'

"कितनी ही देर तक मैं प्रार्थना करती रही। सिर भगवान के चरणों में रख पड़ी रही। इस समय एक विचित्र घटना घटी। मुझे ज्ञात हुआ कि मूर्ति में कुछ चंचलता, चपलता उत्पन्न हो गई है। मैंने बहुत ध्यान से मूर्ति की ओर देखा। मूर्ति में मधुसूदन, आपके मित्र, खड़े दिखाई दिये। आवाज भी उन्हीं की थी। वह कह रहे थे, 'देशोद्धार डाके डालने से नहीं होगा। यह तुमको पतित कर देगा और पतित दूसरों का उद्धार नहीं कर सकते।'

"मेरे मुख से अकस्मात निकल गया 'मधुसूदन', परन्तु वह तो पुनः

वैसी ही स्थावर पत्थर की मूर्ति थी। मुझे लज्जा आई। परन्तु भैया! आप लोगों की जान का डर मुझे बेचैन कर रहा था। मैंने मूर्ति के चरणों पर फिर सिर रखकर कहा, 'अब रक्षा करो भगवन्! फिर ऐसा नहीं होने दूंगी।'

"चिरकाल तक मैं ऐसे ही पड़ी रही। ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मेरी पीठ पर हाथ फेर रहा है। ऐसा प्रतीत होता था कि मुझे कोई आशीर्वाद दे रहा है। मैं इस आशीर्वाद का सुख-स्वाद लेती रही और हिली नहीं। मुझे भय था कि पहले की भांति फिर यह आनन्दमय स्वप्न टूट न जाय। कुछ काल पश्चात् 'पूर्णिमा उठो! अब चिन्ता की बात नहीं' यह आवाज़ मेरे कान में आई।

"मैं उठी। मैंने देखा कि दादा मेरी पीठ पर हाथ फेर रहे थे। इस प्रकार मैं ठाकुर-पूजा करती पकड़ी गयी थी। दादा मेरी घबराहट देखकर हंस पड़े। मैंने अपनी घबराहट को छिपाने के लिये पूछा, 'भैया कहां हैं?'

"वह और अन्य सब सही सलामत हैं। परन्तु पूर्णिमा! यह तुम्हारे मन में आज भय क्यों उत्पन्न हुआ है? तुम मोह-ममता में फंस गयी हो। नरोत्तम से तुम्हारा विशेष नेह क्यों है? इसीलिये न कि तुम दोनों एक ही कोख से उत्पन्न हुए हो। क्या एक ही खेत में पैदा होने से दो गेहूँ के दानों में कोई विशेष ममता होती है? यदि नहीं तो फिर तुम्हें क्यों है? यदि तुम कृष्ण को भगवान मानती हो', इतना कहते २ दादा ने सामने की मूर्त्ति की ओर संकेत किया, 'यदि उन्हें तुम अपने से बड़ा समझती हो तो उन्हीं का कहना क्यों नहीं मानती? वह गीता में कहते हैं, 'भाई, बन्धु, मामा, चाचा, ताऊ सब ऐसे नहीं हैं जैसे दिखाई देते हैं। यह सम्बन्ध शरीर का है और शरीर नश्वर है। अनश्वर आत्मा है और वह न किसी का भाई है न मामा। आज जो तुम्हारा भाई है पिछले जन्म में कहां था और तुम्हारा क्या था कौन जान सकता है?' फिर वही कृष्ण एक और स्थान पर कहते हैं, 'काम का ध्येय ही काम की सार्थकता को सिद्ध करता है। अच्छा काम वह है जिसका प्रयोजन अच्छा है। बुरे प्रयोजन की सिद्धि के लिये किया गया काम बुरा ही होता है।' जब ऐसा

है तो फिर तुम भीरुता के गड्हे में क्यों गिर पड़ी हो ?"

"मेरे मन में दादा की बातों से सन्तोष नहीं हुआ था। उस समय से मेरे और पार्टी के लोगों के विचारों में भेद उत्पन्न हुआ है। यदि भगवान की प्रार्थना से कुछ नहीं बनता तो चित्त को शांति क्यों मिलती है ? इसके अतिरिक्त मैं समझती हूँ कि आतंकवाद में दोष है। कमल के व्यवहार ने मेरे बदलते हुए विचारों को बदलने में सहायता दी है। वह अपनी दुष्टता को समझता ही नहीं। दुष्टता करने को वह अपना अधिकार मानता है और उससे रोकने वाले को वह अपनी स्वतन्त्रता का विरोधी समझता है। मैं समझती हूँ कि कमल की सृष्टि में कारणरूप वे सिद्धांत हैं जिन पर हमारी पार्टी बनी है। यह भी हो सकता है कि हमारी पार्टी ही ऐसी हो जहां ऐसे दुष्ट प्रकृति के लोगों को स्थान मिलता हो। मुझे यह सब गड़बड़ प्रतीत होता है।"

नरोत्तम चुपचाप पूर्णिमा के उद्‌गारों को सुनता रहा। वह जानना चाहता था कि उसके विचारों में कुछ गम्भीरता भी है या केवल उथलापन। इस लम्बी वक्तृता को सुनकर भी नरोत्तम उसके आंतरिक भावों को नहीं समझ सका। उसने पूर्णिमा को घूरकर देखते हुए पूछा, "तुम देश की स्वतन्त्रता की भी आवश्यकता समझती हो अथवा नहीं ?"

"समझती क्यों नहीं। बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता के मानसिक और आत्मिक उन्नति स्थिर नहीं रह सकती।"

"मैंने समझा था कि सब कुछ ठाकुर जी की भक्ति में ही लीन हो गया है। अब देश को स्वतन्त्र करने के लिये ठाकुर जी की पूजा को तुम किस प्रकार आवश्यक समझती हो ?"

"मन को दृढ़, सुन्दर और सामर्थ्यवान बनाने के लिये ईश्वर की भक्ति ही परमावश्यक है।"

"महमूद गज़नी के आक्रमण के समय जानती हो क्या हुआ था ? लोग सोमनाथ के मन्दिर में पूजा से अपने हृदय की दुर्बलता ही दूर करते रह गये थे, और यवन लोगों ने हज़ारों नर-नारियों को दास बना गज़नी

के बाज़ारों की शोभा को दुगुना कर लिया था।"

"हां, परन्तु साथ ही यह भी जानती हूँ कि शिवा जी ने भवानी की पूजा से ऐसा वर प्राप्त किया था कि असफलता सिर पर पांव रख उनसे दूर भाग गयी थी। भैया, मुसलमानों के आक्रमण के समय देश में कोई वास्तविक नेता नहीं था। नेता के अभाव का कारण देश में ब्राह्मणों तथा बौद्धमत के भिक्षुकों का मिथ्या उपदेश था। देश को परतन्त्रता से मुक्त करने के लिये देश में अच्छे नेता की आवश्यकता है। अच्छे नेता तब उत्पन्न होंगे जब हमारी समाज समष्टी रूप से उन्नत होगी। जितनी समाज उन्नत होगी उतने ही उच्च कोटि के नेता उसमें उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी पतित समाज में जहां जात-पांत के बेहूदा बन्धन हैं, जहां छूत और अछूतों का झगड़ा है, जहां शिक्षा केवल नाममात्र को है, जहां पढ़े-लिखे विदेशी आचार-व्यवहार के भक्त हैं और अपढ़, जिनकी संख्या असीम है, मूर्ख, गंवार, अज्ञानी पुरोहितों, मुल्लाओं और पुजारियों के आधीन हैं, वहां भला किसी महान पुरुष का उत्पन्न होना कैसे सम्भव हो सकता है? जहां नेता स्वयं धूर्त, ठग, स्वार्थी और दुराचारी हों वहां देशोद्धार होना केवल स्वप्नमात्र है।"

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, "यह सबक़ मधुसूदन ने पढ़ाया है क्या?"

पूर्णिमा यह नाम सुन सन्न रह गयी। बात ठीक थी। वह जो कुछ कह रही थी सब मधुसूदन के बोये हुए बीजों का फल था। परन्तु वह स्वयं भी ऐसा ही समझने लगी थी। इसके अतिरिक्त वह इस समय मधुसूदन के विषय में कुछ भी सोचना अथवा कहना नहीं चाहती थी। क्रोध में बोली, "मैं मधुसूदन-वृदन कुछ नहीं जानती। मैं तो केवल यह कहती हूँ कि मेरा कहना यदि ठीक है तो राजनीतिक दल बनाने से पूर्व सामाजिक उन्नति के लिये यत्नशील होना चाहिये। हिन्दू-समाज को एक बार पुनः उच्चतम पदवी पर पहुँचा दिया जाय, तब भगवान की कृपा से कोई अच्छा नेता यहां उत्पन्न होगा और देश का उद्धार सुगमता से हो

जायगा। इस समय तो कमल जैसे नेताओं के उत्पन्न होने की ही संभावना है। ऐसे लोगों की जहां समाई है मैं वहां नहीं रहना चाहती। आज से मैं समाज-सुधारक बनूँगी और समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करूंगी।"

"विदेशी राज्य-सत्ता सामाजिक सुधार को अच्छा नहीं समझती। इस कारण निष्पक्षता के बहाने वह उन लोगों को प्रोत्साहन देती रहती है जो समाज में परिवर्तन नहीं चाहते। तुम स्त्री जाति को पुरुषों के समान पदवी दिलाना चाहती हो। सरकार तुम्हारा पक्ष नहीं लेगी प्रत्युत तुम्हारा विरोध करेगी। वह यह कहेगी कि तुमने ऐसी बातें की हैं जिनसे प्रचलित प्रथा के मानने वालों के मन को ठेस पहुँचती है। इस कारण तुम अशान्ति फैलाती हो और तुम दण्ड की भागी हो। बताओ ऐसी अवस्था में समाज-सुधार कैसे हो सकता है? हमारी प्रत्येक अच्छी बात का सरकार, जानकर अथवा अनजाने, विरोध करती है। यहां तक कि धार्मिक स्वतन्त्रता, जिसको सरकार ने दे रखा है, यथार्थ में झूठी है। समझो तुम अपने घर में बैठकर भगवत भजन कर रही हो और तुम्हारे पड़ोस में यदि किसी मुसलमान को तुम्हारे भजन पसन्द नहीं और वह हल्ला करता है तो तुम फसाद की जड़ मानी जाओगी। अभिप्राय यह है कि जब भी तुम कोई सुधार की बात करोगी तो निश्चय वह पुराने विचार के लोगों को स्वीकार नहीं होगी और तुम अशान्ति पैदा करने के अपराध में पकड़ी जाओगी।"

"मैं पकड़-धकड़ से डरती नहीं। देखो चोर-डाकू भी पकड़े जाते हैं और राजनीतिक कार्यकर्ता भी। इसका अभिप्राय यह नहीं कि राजनीतिक कार्यकर्ता भी डाके डालने लगें। दोनों को पकड़ जेल में डाल देने से दोनों काम एक समान नहीं हो जाते। इसी प्रकार सामाजिक उन्नति आधार है। राजनीतिक उन्नति स्वयं उसके पीछे मिल जायगी। अतएव यदि कष्ट ही भोगना है, यदि अपना सर्वस्व ही स्वाहा करना है तो जाति के पतन के कारणों को मिटाने के लिये करना चाहिये, न कि बाहरी बातों में

परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये।"

नरोत्तम ने अब कुछ खिन्न मन से कहा, "मैं तुम्हारी बात नहीं समझा। क्या तुम पूजा-पाठ, मन्दिर, प्याऊ, और आत्मा-परमात्मा के झगड़ों को मूल समस्यायें समझती हो और देश में स्वदेशी राज्य स्थापित करना पत्तों को पानी देना? क्या तुम यह साधारण सी बात भी मानती हो या नहीं कि भारत में राज्य प्रजातन्त्र हो, प्रजा के प्रतिनिधि प्रजा के हित के लिये राज्य करें?"

"भैया! तुम्हारा स्वभाव है कि तुम कई परस्पर विरोधी बातों को मिलाकर रख देते हो। इसी कारण तुम्हारे परिणाम वास्तविक सत्यता को नहीं पहुंचते। भला तुम 'प्रजा हित के लिये राज्य' और 'प्रजा के प्रतिनिधियों से राज्य' पर्यायवाचक कैसे समझते हो? क्या यह सम्भव नहीं कि प्रजा स्वयं अज्ञानी, असभ्य और पतित होने से प्रतिनिधि भी ऐसे ही चुन देगी और फिर उनसे चलायी गयी राज्य-सत्ता प्रजा-हित के लिये नहीं होगी? क्या प्रजा का आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक विकास अधिक आवश्यक एवं प्रथम स्थान नहीं पाता? जिनसे तुम प्रतिनिधि चुनने को कहते हो क्या उनमें अपना हित-अहित पहिचानने की शक्ति उत्पन्न करना प्रारम्भिक बात नहीं है? हां! मैं समझती हूँ कि सामाजिक उन्नति करना प्रथम कार्य है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये यत्न, भारत जैसे पतित देश में, पत्तों को पानी देने के समान है।"

नरोत्तम पूर्णिमा की अकाट्य युक्तियों को सुन मन ही मन प्रसन्न था। परन्तु वह हार मानने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने अपने निरुत्तर होने को छिपाने के लिये हंसी-मज़ाक का आश्रय लिया। वह कहने लगा, "ओह! अब तो हमारी दीदी बहुत समझदार होगयी हैं। मधुसूदन ने उसे सिखा-पढ़ा कर योग्य बना लिया है। अच्छा दीदी बताओ, अब तुम्हारा विवाह कब कर दिया जाय? जिस दिन तुम्हारा विवाह......।"

पूर्णिमा को विवाह से चिढ़ होगयी थी। उसने गम्भीर वार्तालाप को इस प्रकार हंसी में बदलते देख पास रखी दवात को नरोत्तम पर दे मारा।

"तुम टेढ़ी-मेढ़ी बातों को नहीं छोड़ोगे, तो यह लो" यह कह वहां से उठकर वह हंसती हुई भागी।

दवात नरोत्तम के कन्धे से टकराकर खुल गयी और उसका कुर्ता और धोती स्याही के रंग से लथपथ हो गये। अपने कपड़ों की दुर्दशा देख नरोत्तम ने केवल यह कहा, "हट चुड़ैल!"

मां इधर ही आरही थी। पूर्णिमा भागती हुई उससे टकरा गयी। मां ने उसे बेतहाशा भागते हुए देख पूछा, "अरी! यह क्या हो रहा है?"

कमरे से नरोत्तम बाहर निकल अपने रंगे कपड़ों को दिखाता हुआ बोला, "हो क्या रहा है। दीदी अपने विवाह की खुशी में होली खेल रही है।"

पूर्णिमा दांत दिखाकर 'ई ई' करती हुई वहां से भाग गयी।

मां नरोत्तम को मुंह से लेकर पावों तक दवात के रंग में रंगा देख हंस पड़ी। परन्तु शीघ्र ही हंसी रोककर कहने लगी, "लला! एक दिन तुम ही इलाहाबाद क्यों नहीं चले जाते? जाओ और सब काम तय कर आओ तो।"

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, "हां अब तो जाना ही होगा, नहीं तो यह मेरे सब कपड़े रंग देगी।"

---

## पांचवां भाग
# डाके की योजना

मधुसूदन जब पूर्णिमा को विदा कर स्टेशन से लौटा तो उसका सिर घूम रहा था। इससे पूर्व वह अपने मन में यह समझ रहा था कि पूर्णिमा से विवाह निश्चय ही है। यह विचार उसके लिये कितना आनन्दमय था। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसके जीवन की रात्रि-वेला समाप्त होकर सौभाग्य-सूर्य उदय होने वाला है। प्रभात कितनी आशाओं, आकांक्षाओं और योजनाओं से भरा होता है। पौ फटते ही मनुष्य दिन

भर का कार्यक्रम बनाने लगता है। उसमें मनोहर, सुन्दर, आनन्दप्रद कामों की शृङ्खला बांध लेता है। परन्तु यदि इन सब मनसूबों के बना लेने पर उसका स्वप्न टूट जाय, प्रभात केवल स्वप्न का प्रभात ही रह जाय और मनुष्य पुनः अपने आपको निशा के अन्धकार में पड़ा हुआ जान ले तो कितनी निराशा होती है। इसी प्रकार मधुसूदन की अवस्था हो गयी थी। वह अनुभव कर रहा था कि वह अभी भी रात के घोर अंधेरे में पड़ा है और उसे हाथ पसारे नहीं सूझता। वह उस नाविक की भाँति अनुभव कर रहा था जिसकी नाव रात को सोते २ किनारे से खुलकर मंझधार में जा पड़ी हो, अंधेरे में उसे किनारा दिखाई न देता हो और उसके चप्पू गुम हो चुके हों। नाव तीव्र धारा में बही जाती हो और नाविक को ज्ञात न हो कि कब भंवर में आ नाव उलट जायगी। ऐसी अनिश्चित अवस्था में पड़ा हुआ मधुसूदन स्टेशन से लौटा था।

कई दिन तक वह घर से बाहर नहीं निकला। उसने पिता जी से फिर अपने विवाह के विषय में बातचीत नहीं की और उसके पिता ने भी इस विषय में मौन साध रखा। यथार्थ में दोनों इस विषय पर बात करने से डरते थे। श्यामाचरण समझता था कि लड़के पर यदि बहुत दबाव डाला गया तो वह हाथ से निकल जायगा और शायद घर छोड़ दे। मधुसूदन समझता था कि विचार-परिवर्तन भीतर से हो सकता है, बाहर से दबाव डालने से तो हठ बढ़ जाता है। इसी प्रकार दिन गुज़र रहे थे। जब कई दिन इस प्रकार गुज़र गये तो श्यामाचरण के मन में चिन्ता सवार हुई। मधुसूदन घर से तो क्या अपने कमरे से भी बाहर नहीं निकलता था। इससे वह बीमार हो सकता था। एक दिन श्यामाचरण ने मधुसूदन से कह ही दिया, "आजकल तुम घूमने नहीं जाते, क्या बात है?"

"आजकल बाहर कुछ काम नहीं है।" इतना कह मधुसूदन अपने काम में लग गया।

श्यामाचरण कुछ काल तक पुत्र की ओर देखता रहा। फिर कुछ साहस कर कहने लगा, "और घर में कौन बड़ा काम है। दिन भर क्या

करते रहते हो ?"

इसका उत्तर उसे एक शब्द में मिला, "स्वाध्याय।"

"क्या स्वास्थ्य अधिक आवश्यक नहीं है ?"

"हां।"

"तो सुबह शाम टहल आया करो।"

"बहुत अच्छा।" मधुसूदन समय टालना चाहता था।

"और हां! कल राय साहब ने तुम्हें पूछा था।"

यह केवल बहाना था। श्यामाचरण चाहता था कि मधुसूदन घूमा-फिरा करे। परन्तु राय साहब के याद करने से मधुसूदन ने यह समझा कि वह अवश्य पूर्णिमा के विषय में पूछेंगे। मन में यह सोच कि शायद वह कोई ऐसा मार्ग बता सकें जिससे बिगड़ा काम बन जाय, उसने घर से निकलने का निश्चय कर लिया।

जब वह सेठ साहब की बैठक में पहुंचा तो वहां दूसरा ही ढंग देखा। दिन के ग्यारह बज चुके थे, परन्तु सेठ साहब अभी सोने की पोशाक में थे। सम्मुख जले सिगरटों के टुकड़े और जली दियासलाइयों का ढेर लगा हुआ था। सिर के बाल बिखरे हुए और मुख का रंग पीला था। बहुत परेशान प्रतीत होते थे। मधुसूदन को नमस्कार कर सामने खड़ा देख बितर बितर उसकी ओर देखने लगे। उनकी ज्योतिहीन आंखों को देख मधुसूदन घबरा गया और प्रश्न भरी आंखों से उनकी ओर देखने लगा।

सेठ साहब, जैसे अकस्मात बात याद आई हो, पूछने लगे, "इतने दिन कहां रहे हो ?"

"घर पर ही था। क्या बात है ?"

"भाई गज़ब हो गया है।" इतना कह सेठ साहब अपने स्थान से उठ इधर-उधर घूमने लगे।

मधुसूदन ने समझा शायद चोरी हो गई है। उसने पूछा, "क्या कुछ गुम हो गया है ?"

"नहीं, अभी गुम नहीं गया, परन्तु जाने में सन्देह भी नहीं है।" यह

कह राय साहब फिर कुर्सी पर बैठ गये और एक नया सिगरेट जला लिया।

मधुसूदन बहुत हैरान था और यह जानने के लिये बहुत उत्सुक था कि क्या हो गया है। फिर भी उसने पहले सांत्वना देना उचित समझा। वह कहने लगा, "आपने चाय पी है या नहीं।"

"भाई आज किसी वस्तु में रुचि नहीं होती।"

सेठ साहब की स्त्री शायद मधुसूदन की आवाज सुन बाहर चली आई थी। कहने लगी, "बेटा इनको समझाओ न। रात भी इन्होंने कुछ नहीं खाया और रात-भर ऐसे ही घूमते-घूमते काट दी है।"

मधुसूदन ने और भी चिन्ता प्रकट करते हुए कहा, "मां जी चाय बनाकर भेजो न। बिना खाये-पिये कैसे काम चलेगा?" फिर सेठ साहब की ओर देखकर बोला, "यह आप सिगरटों का हवन किस लिये कर रहे हैं? इससे तो दिमाग़ और भी चकराने लगता है। छोड़िये इनको।"

सेठानी जी ने नौकर को चाय लाने के लिये कह दिया और फिर आकर बैठ गयीं। वह मधुसूदन की ओर ऐसे भाव से देख रही थीं मानों वह चाहती थीं कि वह सेठ साहब को धैर्य दे। उनसे बातचीत कर उनका ध्यान बदल दे। मधुसूदन कुछ काल तक सोचता रहा। फिर उसने पूछा, "मां जी! हुआ क्या है?"

"होना क्या था। एक चिट्ठी कल आई थी। बस उसके बाद ही से यह घबराहट पैदा हो गयी है। पूछने पर भी नहीं बताते कि क्या बात है।"

इस समय एक तश्तरी में चाय लेकर नौकर वहां आ पहुँचा। सेठानी जी ने चाय बनानी आरम्भ कर दी। सेठ साहब कहने लगे, "मुझसे नहीं पी जायगी। देखकर मुझे मिचली होने लगती है।"

मधुसूदन ने कुछ जोर से कहा, "कुछ बात नहीं। कै होजायगी तब भी ठीक है। पित्त निकल जाने से शांति हो जायगी। ये सिगरेट फूँक २ कर आपने दिमाग़ खराब कर लिया है।"

सेठ जी चाय पीने के लिये बाध्य हो गये और चाय ने लाभ भी किया। एक आध टोस्ट और चाय की एक प्याली पीने पर उनको कुछ

वह केवल इसलिये कि आपने देश की भलाई का विचार छोड़कर सरकार को सहायता देना स्वीकार किया हुआ था। ज्योंही सरकार को यह ज्ञात हुआ कि अब आपके दिल में भी गरीब हिन्दुस्तानियों के लिये सहानुभूति उत्पन्न हो गयी है तो तुरन्त आपको उस रियायत के अयोग्य समझा गया जिसके आप पहले योग्य थे। अब आप भी अन्य तेतीस करोड़ के बराबर हैं। यह आपके लिये कोई शोक की बात नहीं होनी चाहिये। तेतीस करोड़ के सुख, दुख, उनकी परतन्त्रता और उन पर किये जाने वाले अत्याचार में अब आप भी उनके साथी हैं।"

"परन्तु पण्डित! मुझे इस अपमान के साथ भारी शोक इस बात का है कि मैंने व्यर्थ ही पुलिस में यह चिट्ठी दे दी। न वहां जाता और न अपमान सहता। यदि मेरी इस चिट्ठी पर कोई पकड़-धकड़ हुई तो मेरे लिये गंगा जी में डूब मरने की बात होगी। मैं पुलिस की सहायता करने गया था और वहां कह दिया गया कि 'तुम मरो चाहे जियो, सरकार ने तुम्हारा ठेका तो लिया नहीं।' इससे तो पचास हजार उनको दे देता तो ठीक रहता। कम से कम यह अपनी बेशरमी का ज्ञान तो न होता।"

अब मधुसूदन का ध्यान फिर पुलिस की ओर चला गया। उसने पूछा, "उस चिट्ठी में और क्या लिखा था?"

"चिट्ठी में लिखा था कि पचास हजार रुपया दस दस के नोटों में आज रात के बारह बजे गायघाट पर मकान नं० २० में पहुंचा दो, नहीं तो वही गति बनेगी जो डेढ़ वर्ष हुआ कलक्टर साहब की हुई थी। साथ ही यह भी लिखा था कि यदि मैंने पुलिस में रिपोर्ट की तो मेरी खैर नहीं।"

गायघाट नं० २० सुनकर मधुसूदन एक गम्भीर विचार में पड़ गया। वह निश्चयपूर्वक जानता था कि नं० २० का मकान पूर्णिमा के मित्र का है। उसे यह भी भली-भांति विदित था कि कलक्टर के बंगले की कार्यवाही पूर्णिमा की पार्टी का काम था। तो क्या यह भी पूर्णिमा की पार्टी वालों का काम है? हो सकता है। ऐसी पार्टी वालों को रुपये की आवश्यकता बनी रहती है और यह जान कि राय साहब देश की बातों

से सहानुभूति रखने लगे हैं वे समझ गये होंगे कि पुलिस में रिपोर्ट नहीं करेंगे।

जब राय साहब चिट्ठी का आशय वर्णन कर चुके तो कहने लगे, "इन दुष्ट पुलिस वालों को यह चिट्ठी दिखाकर क्या मैंने अच्छा किया है?"

"अच्छा हो भी सकता है और नहीं भी। अच्छा तो यों है कि आपने कानून की सहायता की। उन लोगों की बात भी तनिक विचार करें कि कितनी ठीक है। एकदम पचास हजार मांग लिया और फिर धमकी देकर। जो लोग तो उनके कार्यक्रम से सहानुभूति रखते हैं वे तो देंगे ही, दूसरों से धमकी देकर वसूल करना अन्याय है। इस जबरदस्ती का फल उनको मिलनी चाहिये। परन्तु क्या पुलिस वाले उनको पकड़ सकेंगे? मैं तो समझता हूं यह अत्यन्त कठिन है। मुझे पुलिस के इन कामों पर किंचित भी विश्वास नहीं है। इसमें बुद्धिमान, चतुर लोग नहीं हैं। प्रायः उजड्ड, गंवार, कम पढ़े-लिखे इस महकमे में लिये जाते हैं। इसी से आज तक पुलिस को अपने काम में कम सफलता मिली है। सरकार के अन्य महकमों की भांति इसमें भी योग्यता, ईमानदारी इत्यादि की कुछ कीमत नहीं है। यहां भर्ती खास-खास जाति वालों की होती है, योग्य लोगों की नहीं। तरक्की सिफारिशों पर की जाती है, चतुराई के आधार पर नहीं। ऐसी अवस्था में अचम्भा नहीं कि ये लोग किसी को भी न पकड़ सकें।"

"परन्तु पुलिस ने पंजाब और बंगाल में कितने ही षड़यन्त्रकारियों को पकड़ा है।"

"इसमें पुलिस की चतुराई तो क्या होगी, अधिकांश षड़यन्त्रकारियों की मूर्खता, फूट और विषय-वासना ही कारण प्रतीत होते हैं।"

"कुछ भी हो मेरा मन धड़कता है और भय है कि मैंने इन लोगों को पकड़वाने की कुँजी पुलिस के हाथ में दे दी है। यदि मुझे मालूम होता कि सरकारी अफसर इतने तोता-चश्म होते हैं और साधारण जनता से रत्ती भर भी हमदर्दी नहीं रखते तो मैं कभी भी उनके पास न पहुँचता। मैं पचास हज़ार सुगमता से दे सकता हूं।"

"परन्तु आप यह कैसे जानते हैं कि इतनी भारी रकम माँगने वाले यथार्थ में इसका उपयोग करेंगे ? क्या जानें कि वे भी साधारण चोर-डाकुओं की भांति कोई हों। इतना रुपया ऐसे नहीं फेंका जासकता। और सब से बुरी बात तो धमकी की है।"

"इस धमकी ने ही तो मुझे झक मारने पर बाध्य किया था। यदि वे लोग मेरे पास आते और मुझसे सहायता के लिये कहते तो शायद मैं उनकी मुँह-मांगी मुराद पूरी कर देता।"

"राय साहब आप, छोड़िये इस पश्चाताप को। इसमें तो सन्देह नहीं कि इन लोगों ने अनुचित कार्यवाही की है। अब जो बात करने की है वह है रक्षा की। वे चाहे कितने ही देश-भक्त क्यों न हों उनसे बचना आवश्यक है। आपको अपनी जान जोखम में नहीं डालनी चाहिये और उनसे बचने का उपाय तुरन्त करना चाहिये।"

"मेरा विचार है कि आज तो वे रुपये की आशा में अपने मकान में होंगे। कल तक कुछ प्रबन्ध विचार लूंगा।"

"नहीं राय साहब, आप भूल कर रहे हैं। जिन लोगों ने कलक्टर के बंगले में जाकर बम चलाये थे और वहां से साफ बचकर चले गये थे, जो अभी तक पुलिस वालों को चकमा देते रहे हैं, वे साधारण लोग नहीं हो सकते। कौन कह सकता है कि चिट्ठी भेजने के समय से ही उनका कोई जासूस आपके पीछे लगा हो और उसको यह मालूम होगया हो कि चिट्ठी मिलने के पश्चात आप कलक्टर से मिलने गये हैं। इससे वे सचेत होगये हों और जब पुलिस उनको पकड़ने का प्रबन्ध बनारस में कर रही हो वे यहां आ धमकें। एक बात तो निश्चय है कि वे लोग, यदि वही हैं जो कलक्टर के बङ्गले में बम चला गये थे, तो बहुत चतुर और निठुर हैं। उन्हें दोषी और निर्दोष में भेद करना नहीं आता। वे तो नदी की बाढ़ हैं, जो अपने सामने की सब वस्तुओं को बहा ले जाती है।"

इस तिलक से सेठ साहब घबराये और परेशानी से पूछने लगे, "क्या करना चाहिये ?"

इस पर मधुसूदन ने उनके कान में कुछ कहा। इससे सेठ साहब का मुख गम्भीर होगया और कहने लगे, "अच्छा विचार करूंगा।"

"अवश्य करिये और इतने गुप्त ढंग से कि आपके नौकरों तक को पता न चले। इसकी सफलता इसी बात में है कि यह बात किसी को पता तक न चले।"

सेठ साहब ने केवल 'हूँ' ही कहा।

कुछ देर मधुसूदन वहां और ठहर कर चल दिया। जब वह सेठ साहब के मकान से निकला तो उसके मुख की आभा विलीन हो चुकी थी। उसके मन में घोर संग्राम चल रहा था। वह मान लेना चाहता था कि पूर्णिमा की पार्टी का यह काम नहीं, परन्तु घटनाओं से और कुछ और बातों से उसकी धारणा असत्य सिद्ध हो रही थी।

मधुसूदन जानता था कि गायघाट नं० २० का मकान पूर्णिमा की पार्टी का मकान है। सेठ कुंजबिहारी की उदारता और इतना धन देने की योग्यता पूर्णिमा को ज्ञात थी। पूर्णिमा जब सेठ साहब को रुपया वापिस करने आई थी तो वह मधुसूदन को बहुत कुछ बतलाने वाली थी, परन्तु विवाह का मामला कुठाली में पड़ जाने से वह उसमें आत्मीयपन की कमी अनुभव करने लगी थी। इसी कारण वह जो बतलाने के लिये आई थी वह बतला नहीं सकी। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो बातें वह बताना चाहती थी वे बहुत अतरंग थीं और केवल उन्हीं को बताई जा सकती थीं जिन पर प्रगाढ़ विश्वास किया जा सके। ये विचार मधुसूदन के दिमाग में बार बार उठ रहे थे और पूर्णिमा को दोषी सिद्ध कर रहे थे। इस पर भी उसका मन यह कहता था कि पूर्णिमा और उसके साथी क्या इतने मूर्ख हो सकते हैं कि वे इस प्रकार की बेहूदा और अपूर्ण आयोजना बनायें। इस आयोजना में सब से बड़ी त्रुटि तो यह थी कि जब राय साहब स्वयं एक हजार रुपया मासिक देने के लिये तैयार थे तो इस मासिक सहायता को ठुकराकर सोने के अण्डे वाली मुर्गी को चीर डालने की बात करना पूर्णिमा और उसकी पार्टी के लोगों से सम्भव नहीं हो

सकती। दूसरी मूर्खता की बात यह थी कि चिट्ठी में उन्होंने अपना यथार्थ पता दे दिया था। यदि यह सत्य है कि पूर्णिमा की पार्टी ने यह कार्यवाही की है तो भारी ग़लती की है। इस बार उन्होंने स्वयं अपने आपको पुलिस के हाथ में दे दिया है।

परन्तु यह कैसे हो सकता है कि एक ओर तो पूर्णिमा मासिक आय वापिस कर दे और दूसरी ओर वही धन अपनी जान जोखम में डालकर प्राप्त करने का यत्न करे। ये सब बातें उसके मन में आ रही थीं। वह समझता था कि वे मूर्ख हैं और फिर कहता था नहीं ऐसा नहीं हो सकता। यह काम किसी और का है।

इसी प्रकार की उधेड़-बुन में वह इलाहाबाद की सड़कों पर लक्ष्यहीन होकर घूम रहा था। दोपहर के समय गरमी के मौसम में कड़कती धूप में घूमना उसके दिमाग़ को और भी खराब कर रहा था। वह एक प्रकार से पागल हुआ चला जा रहा था। वह नहीं जानता था कहां जा रहा है। मन की प्रेरणा के बिना भी कभी कभी शरीर काम करता है। यही बात इस समय मधुसूदन के साथ हो रही थी। उसके पांव उसे रेल के स्टेशन की ओर लिये जा रहे थे। जब वह स्टेशन पर पहुँचा तो उसे चैतन्यता हुई। वह तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में खड़ा था। वहां वह धूप से बचने के लिये पहुंच गया था। यहां एक स्टॉल से उसने बर्फ के पानी का एक गिलास पिया। इसने उसके मन को स्पष्ट रूप में परिस्थिति को समझने की शक्ति दी। वह मन से पूछने लगा, "उसे क्या करना चाहिये?"

मधुसूदन को इस बात का निर्णय करने में अब देर नहीं लगी। उसने निश्चय कर लिया कि बनारस जाकर इलाहाबाद की परिस्थिति से उन्हें सूचित कर देना चाहिये। पूर्णिमा उससे नाराज़ होकर गयी थी, परन्तु इस बात ने उसके मन में कुछ भी दुर्बलता उत्पन्न नहीं की।

वह पूर्णिमा से प्रेम करता था। इससे उसका धर्म था कि उसे तथा उसके साथियों को ख़तरे से सचेत कर दे। यदि यह उनका काम है तो भी, और यदि उनका काम नहीं तो भी वहां जाकर बताने में हानि ही

क्या है, ऐसा विचार कर उसने बनारस का टिकट खरीद लिया और स्टेशन के भीतर जा प्लेटफार्म के चक्कर काटने लगा। अभी गाड़ी आने में दो घण्टे थे। गाड़ी का सम्बन्ध ऐसा था कि वह बनारस में नौ बजे रात से पहले नहीं पहुंच सकता था। यदि सम्भव होता तो वह दिन के समय वहां पहुंचना अधिक पसन्द करता। परन्तु उसी दिन रात के बारह बजे से पहले सचेत करना था। रुपया रात के बारह बजे मांगा गया था, अतः पुलिस भी जो कार्यवाही करेगी वह रात के बारह बजे ही होगी।

मधुसूदन सोच रहा था कि गाड़ी यदि समय पर पहुंच भी गयी तो भी पूर्णिमा इत्यादि को सचेत करने के लिये समय बहुत कम है। फिर भी वह यत्न करने पर तुला हुआ था। वह बेचैन अवश्य था परन्तु डरा हुआ नहीं। मन ही मन अपने वहां पहुंच कर काम करने का कार्यक्रम बना रहा था। आठ बज कर पैंतालीस मिनट पर गाड़ी वहां पहुंचेगी। साढ़े नौ बजे तक नरोत्तम के घर पहुँच सकेगा और घटना के समय से ढाई घण्टे पूर्व उनको चेतावनी दे देगा। परन्तु यदि वे लोग घर पर न हुए तो क्या होगा? सम्भव है नौ बजे से पूर्व ही घर से निकल गये हों। इस अवस्था में वह गायघाट वाले मकान में जाकर उनसे मिलेगा।

गाड़ी में बैठे हुए भी उसका मन चंचल होरहा था। सारे मार्ग भर में उसे गाड़ी बहुत धीमी चलती हुई प्रतीत हो रही थी। आखिर यदि गाड़ी शीघ्र चल सकती है तो चलती क्यों नहीं; प्रत्येक स्टेशन पर यदि दो मिनट खड़ा होने से काम चल सकता है तो आठ या दस मिनट क्यों खड़ी रह जाती है; और मुग़लसराय स्टेशन पर गाड़ी का मेल क्यों नहीं रखा गया, एक घण्टा बनारस के लिये गाड़ी की प्रतीक्षा करनी पड़ती है—ये सब बातें ऐसी थीं जो मधुसूदन के मन में उठ उठ कर उसकी बेचैनी की सूचना देती थीं।

[ २ ]

गाड़ी जब बनारस कैंट पहुंची तो नौ बज चुके थे। मधुसूदन को आज

मधुसूदन ने अचम्भे में कहा, "कलकत्ते ! और पूर्णिमा ?"

"ऊपर ! क्यों क्या बात है ?"

बिना उत्तर दिये वह भागता हुआ ऊपर चढ़ गया और कमरे के बाहर से ही आवाज देता हुआ कमरे के भीतर जा पहुंचा। पूर्णिमा की मां भी हांफती हुई वहां पहुँच गई। पूर्णिमा हैरानी से दोनों की ओर देखने लगी।

मधुसूदन ने खड़े २ ही पूछा, "यह सब क्या बेहूदापन है ?"

पूर्णिमा ने कुछ न समझते हुए पूछा, "बेहूदा ! क्या बेहूदा ? आप घबराये हुए क्यों हैं ? क्या होगया है ? बतलाइये न, मुझे कुछ मालूम नहीं।"

अब मधुसूदन हैरान था कि कहां से कहना शुरू करे। उसने सोच कर कहा, "जो आदमी स्वयं दे दे उससे छीनने का यत्न करना कहां की बुद्धिमत्ता है ?"

पूर्णिमा अब भी कुछ नहीं समझी। उसने कहा, "मैं कुछ नहीं समझ सकी। आप पहले बैठ जाइये। घबराहट छोड़ कर बातें करें तो पता चले कि क्या मूर्खता होगई है।"

मधुसूदन को विश्वास था कि पूर्णिमा उससे असत्य नहीं कहती। इससे वह सोचने लगा कि शायद वह निर्दोष है। वह पास रखी चौकी पर बैठ गया और अपने आशय को समझाने के लिये विस्तार से कहने लगा, "कल सेठ कुंजबिहारी को बनारस से एक चिट्ठी गई है। उसमें लिखा था कि क्रान्तिकारी दल को पचास हजार रुपये की जरूरत है। उनको इतना रुपया गायघाट पर मकान नं० २० में आज रात के बारह बजे पहुंचा देने को लिखा है।"

पूर्णिमा ने आवेश में कहा, "यह चिट्ठी हमने नहीं लिखी।"

"मकान नं० २० तो आपके नेता का मकान है न।"

"है तो, परन्तु यह चिट्ठी उन्होंने नहीं लिखी। वह एक मास से बनारस में नहीं हैं। सब से मुख्य बात तो यह है कि आजकल हम डाके

डालकर रुपया इकट्ठा नहीं करते। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो मैं आपको वहां ले जाकर यह बात सिद्ध कर सकती हूँ।"

"कहां लेजाकर?"

"गायघाट पर।"

"वहां अब तुम नहीं जा सकती।"

"क्यों?"

"वहां पुलिस पहुंच गई होगी। सेट साहब ने चिट्ठी पुलिस के पास भेज दी थी।"

'ओह!' इतना कहकर पूर्णिमा अवाक रह गई। वह कई मिनट तक नहीं बोली। पश्चात उसका रंग पीला पड़ गया। होंठ कांपने लगे। वह उठी और पलंग के तकिये के नीचे से पिस्तौल निकाल कारतूस भरने लगी। यह देख मधुसूदन से नहीं रहा गया। उसने पूछा, "क्या कर रही हो?"

पूर्णिमा ने पिस्तौल भरते हुए कहा, "बहुत बुरा हुआ है। रुपया बारह बजे देने को लिखा था न?"

"हां, परन्तु तुम क्या करने जा रही हो?"

"बात यह है कि आज दादा की चिट्ठी आई है। उसमें उन्होंने लिखा है कि मैंने उन्हें कोई तार भेजा है और उस तार के अनुकूल वह आज रात के साढ़े ग्यारह बजे नम्बर २० के मकान में मुझसे मिलेंगे। मैं पार्टी के कामों में उदासीन हो रही हूँ, इस कारण मैंने न तो कोई तार दादा को भेजा है और न ही उनसे मिलने मैं वहां जा रही थी। परन्तु अब आपकी बातों से तो बात दूसरी ही प्रतीत होती है।"

"अब क्या प्रतीत होता है?"

पूर्णिमा ने पिस्तौल भरकर उसे लौक लगा अपनी कमर में बंधी पेटी में ठूंस लिया और जूता पहिन तैयार हो गई। मधुसूदन ने फिर आग्रह कर पूछा, "तुम क्या करने जा रही हो?"

"बात यह है कि किसी शत्रु ने दादा को फंसाने का षडयंत्र रचा है। एक तरफ तो सेठ जी को चिट्ठी ऐसे ढंग से लिखी कि वह अवश्य पुलिस

"इसलिये कि आप उनको ढूँढने जायें और वे आपको। क्या रात भर आंख-मिचौनी का खेल होता रहेगा? आप यहां ठहरिये और मैं जाता हूँ।"

धीरेन्द्र ने भी यही उचित समझ मधुसूदन को जाने दिया। वह सीधे मार्ग से गायघाट पहुँचा। इसमें उसे दस मिनट से अधिक नहीं लगे। जब वह वहां पहुँचा तो सर्वथा सुनसान था। मधुसूदन का पूर्ण ध्यान पूर्णिमा और उसकी मां की खोज में लगा हुआ था। उसे न तो यह ध्यान था कि वह स्वयं खतरे में है और न ही यह जानने की फ़ुरसत थी कि कोई उसे देख रहा है अथवा नहीं। वह निधड़क मकान की ओर बढ़ा। उसकी इच्छा थी कि वह देखने का यत्न करे कि मकान के इधर उधर तो कोई खड़ा नहीं है। उसका विश्वास था कि पूर्णिमा और उसकी मां मकान के समीप ही कहीं छिपी खड़ी होंगी। वह मकान के आगे से गुजरा। उसकी आंखें पूर्णिमा की तलाश में थीं और कान मकान के भीतर कोई शब्द, यदि हो तो, सुनने के यत्न में। यद्यपि बिलकुल अंधेरा नहीं था तो भी दूर से आने वाली लैम्प की रोशनी में उसे सड़क पर रखे पत्थर दिखाई नहीं दिये। परिणाम यह हुआ कि वह पत्थर से ठोकर खाकर धम से जमीन पर गिर पड़ा। एक आदमी अंधेरे में छिपा खड़ा था। उसने लपककर उसे उठाया और कहा, "भैया! ज़रा देखकर चलो।"

मधुसूदन के घुटने पर चोट आई थी। इसकी उसे परवाह नहीं थी। फिर भी वह मकान के सम्मुख खड़ा हो घुटने को दबाने लगा। वह जानना चाहता था कि मकान में से कोई शब्द तो नहीं हो रहा। साथ ही इस प्रकार वह पूर्णिमा और उसकी मां को वहां भली भांति ढूंढ लेना चाहता था। इतने में टॉर्च जलाकर किसी ने मधुसूदन के मुख पर रोशनी डाली। इसमें एक सैकण्ड से अधिक नहीं लगा। टॉर्च बुझाकर वह आदमी मधुसूदन के पास आकर खड़ा हो गया और बोला, "आखिर आप भी गायघाट आ ही गये न। खूब! अब तुम ज़ेर हिरासत हो।" इतना कह उसने कुछ शब्द किया कि अंधेरे में से पांच-छः आदमियों ने

निकलकर मधुसूदन को पकड़ लिया।

मधुसूदन के मन में तो आया कि भाग जाय परन्तु फिर कुछ विचार कर खड़ा रहा। मधुसूदन को वे आदमी पकड़कर मकान के पिछवाड़े की ओर से सड़क पर ले गये। वहां एक मोटर-लारी खड़ी थी। उसमें उसे धकेल कर चढ़ा दिया गया। वहां तीन-चार वर्दी पहिने पुलिस वाले बैठे थे। उन्होंने उसे हथकड़ी पहिना दी और अपने पास बैठा लिया।

[ ३ ]

धीरेन्द्र बहुत उत्सुकता से पूर्णिमा की प्रतीक्षा कर रहा था। कभी २ उसके मन में संशय होता था कि मधुसूदन को भेजकर उसने ठीक नहीं किया। कारण यह था कि वह इन बातों में अनजान था। परन्तु अब हो ही क्या सकता था। लगभग आध घण्टे की प्रतीक्षा के बाद पूर्णिमा और उसकी मां वहां आयीं। पूर्णिमा का मुख पीला पड़ गया था। वह अत्यन्त थकी हुई प्रतीत होती थी। परन्तु सम्मुख धीरेन्द्र को देख उसके मुख से निकल गया, "दादा! तुम आगये! हम तो समझी थीं कि तुम पकड़े गये हो। ओ! खूब। बहुत खूब, तुम यहां आये।"

"परन्तु", पूर्णिमा की मां ने पूछा, "पकड़ा कौन गया है?" इतने में मधुसूदन का ध्यान आया तो उसने पूछा, "और वह कहां है?"

धीरेन्द्र को भी अब ध्यान आया और उसने पूछा, "क्या मधुसूदन तुम्हें नहीं मिला? वह तुम्हारे पीछे २ गया था।"

पूर्णिमा का मुख विवर्ण हो गया। "वह हमारे पीछे गये थे? उफ़! गज़ब हो गया। अवश्य ही वह पकड़े गये हैं।" इतना कहते २ वह हताश खाट पर बैठ गयी।

धीरेन्द्र ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "प्रथम तो वह पकड़ा ही नहीं गया होगा। यदि ऐसा हो भी गया होगा तो वह शीघ्र ही छूट जायगा। उसके खिलाफ तो कोई दोष लग नहीं सकता।"

पूर्णिमा को ग़श आगयी थी और वह धीरेन्द्र की बातें नहीं सुन सकी। जब धीरेन्द्र ने यह अनुभव किया तो उसने पूर्णिमा को हिलाया।

इस पर भी वह सचेत नहीं हुई। अब उसकी मां पानी ले आई और उसने उसके मुँह पर छींटे दिये। धीरेन्द्र ने नाक में जोर से फूंक मारी। बहुत कठिनाई से पूर्णिमा की आंख खुली। जब उसे चेतनता हुई तो उसकी आंखों से आंसुओं की धारायें बहने लगीं।

धीरेन्द्र ने पूर्णिमा की मां से पूछा, "आप कैसे जानती हैं कि कोई पकड़ा गया है?"

"हम जब यहां से गयीं तो पहले तपस्विनी के मकान पर पहुँची। वह घर पर नहीं थी। पता चला कि वह कलकत्ते गयी है। वहां से हम सीधी गायघाट पहुँची। मधुसूदन ने हमें बताया था कि वहां पुलिस अवश्य होगी। इस कारण हम मकान पर जाने के बजाय गंगा के किनारे की ओर चली गयीं। वहां एक तख्त पर बैठकर मकान की ओर देखने लगीं। मकान के सम्मुख थोड़ी देर बाद तीन-चार टॉर्च एक क्षण के लिये जलती दिखाई दीं। हम समझ गयीं कि मधुसूदन का अनुमान ठीक था। हमने मकान के समीप जाना भयरहित नहीं समझा। अभी हम आपका पता लगाने का उपाय सोच रही थीं कि किसी के गिरने का शब्द हुआ। यह मकान के सम्मुख ही हुआ था। इतनी दूर से हम अंधेरे में पहचान नहीं सकी कि कौन था। पश्चात किसी ने कहा, 'भैया, जरा देख कर चलो।' इसके एक ही क्षण पश्चात फिर टॉर्च जली। तत्पश्चात किसी ने कहा, 'तुम हिरासत हो।' अब वहां कई आदमियों के भागने-दौड़ने का शब्द हुआ। धीरे २ पांवों के चलने का शब्द विलीन हो गया। हमने समझा तुम पकड़े गये हो।"

दादा ने चिंतित भाव में कहा, "तुम लोगों ने भारी भूल की जो मेरे पीछे गईं। तुम्हें मेरी यहां ही प्रतीक्षा करनी चाहिये थी। मधुसूदन पकड़ा गया है किन्तु उसके विपरीत कुछ मामला नहीं बन सकेगा। वह अवश्य छूट जायगा। परन्तु यह तुमने किया क्या? मुझे बुलाया क्यों था?"

पूर्णिमा बहुत धीमे स्वर से बोली, "मैंने आपको कोई तार नहीं भेजा। आज मधुसूदन से पता चला कि किसी ने सेठ कुंजबिहारी को एक

पत्र लिखा था। उस पत्र में उनसे पचास हज़ार रुपया आज रात के बारह बजे बीस नम्बर मकान में जमा करने के लिये लिखा था। सेठ जी ने यह चिट्ठी पुलिस में दे दी। मधुसूदन को सन्देह हुआ कि चिट्ठी हमने भेजी है। अतएव वह हमें सचेत करने के लिये भागे २ यहां आये। न जाने मन में क्या सोचते होंगे?"

धीरेन्द्र सब वृत्तांत सुन सन्न रह गया। वह बोला, "निःसन्देह यह दुष्टता कमल की है। उसका आशय मुझे फंसाने का था। मुझे तो पहले ही सन्देह हो रहा था। इसी कारण मैं सचेत था। जब मैं स्टेशन पर पहुँचा तो वहां विशेष चहल-पहल देखी। कई पुलिस वाले सफेद-पोश और वर्दी में वहां उपस्थित थे। यह देख मैं सचेत हो गया और इस कारण मैंने पहले तुम्हारे ही मकान पर पहुंचना उचित समझा। नियत समय से पहले ही यहां चला आया। परन्तु कमल का वार खाली नहीं गया। कम से कम मेरा और आप लोगों का यहां रहना भय से रहित नहीं है। कल मेरे मालिक मक़ान से पूछ-ताछ होगी और क्या जाने मधुसूदन ही कुछ कह बैठे। उधर सेठ साहब को जब मधुसूदन के पकड़े जाने का समाचार मिलेगा तो वह न जाने मन में क्या क्या सोचेंगे। मेरी राय तो यह है कि अभी मकान खाली कर देना चाहिये। प्रातः तीन बजे कलकत्ते के लिये गाड़ी जाती है। बस उसी से चल देना चाहिये।"

पूर्णिमा की मां के लिये यह एक विकट समस्या थी। वह जब से इस घर में आई थी शहर से बाहर नहीं गयी थी। अब इस प्रकार एकदम घर छोड़ने के लिये जब उससे कहा गया तो वह कुछ काल के लिये अनिश्चित अवस्था में खड़ी रह गयी। इस समय फिर धीरेन्द्र की नेतृत्व-शक्ति ने अपना प्रभाव जमाया। उसने कहा, "मां जी! ऐसा ही करना चाहिये और तुरन्त।" इसके पश्चात फिर आपत्ति नहीं हो सकी। पूर्णिमा और उसकी मां के मन में यह विश्वास जम चुका था कि धीरेन्द्र बहुत दूरंदेश है।

जल्दी २ दो सूटकेस आवश्यक कपड़ों और सामान से भर और

बिस्तर बना वे तैयार होगयीं और निर्विघ्न कलकत्ते के लिये उसी रात चल पड़ीं।

कलकत्ता अथाह सागर है। उसके जन-समूह में किसी के लिये छिप कर आयु व्यतीत कर देना कुछ भी कठिन नहीं। जैसे एक बूंद सागर में जाकर अपना अस्तित्व खो बैठती है वैसे ही बड़े नगरों में होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने काम में इतना व्यस्त है कि उसे दूसरे के विषय में जानने की फुरसत ही नहीं। पूर्णिमा और उसकी मां इस विशाल जन-समूह में विलीन हो गईं।

[ ४ ]

आज श्यामाचरण ने मधुसूदन को घर से बाहर जाने पर बाध्य किया था। वह गया तो फिर नहीं लौटा। सायंकाल तक तो श्यामाचरण ने इस ओर ध्यान भी नहीं दिया, परन्तु ज्यों ज्यों रात बीतने लगी उसकी चिन्ता बढ़ने लगी। अब उसे अपने किये पर पश्चाताप होने लगा। वह सोचता था कि मैंने लड़के के मन की बात में बाधा डाल कर उसके ऊपर बहुत सख्ती की है। न जाने वह नाराज होकर कहां चला गया है। कहीं आत्मघात न कर लिया हो। अब वह देवता से मिन्नत मानता था कि यदि वह अब आजायगा तो वह स्वयं पूर्णिमा से उसके विवाह का प्रबन्ध कर देगा।

मधुसूदन की प्रतीक्षा में इसी प्रकार की उधेड़-बुन में चिंतित मन से बैठे रात के ग्यारह बज गये। खाना बनाकर रखा हुआ ठंडा हो गया था। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ। उसे जब भी काम से रात बाहर रहने का अवसर हुआ था उसने सूचना भेज दी थी। इस बार उसकी कोई सूचना नहीं आई। सचमुच ही यह चिन्ता का विषय था।

श्यामाचरण मकान की निचली मंजिल में किवाड़ की तरफ दृष्टि लगाये बैठा था। ग्यारह बजे से कुछ ही मिनट ऊपर हुए थे कि किवाड़ खुला। श्यामाचरण उठ खड़ा हुआ परन्तु आने वाला मधुसूदन नहीं था। वह तो सेठ कुँजबिहारी थे। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी और विधवा

बहिन थीं। श्यामाचरण इन सब को इतनी रात गये आया देख हैरान रह गया। सेठ साहब ने श्यामाचरण को दरवाज़े के पास ही खड़ा देख पूछा, "पंडित जी महाराज! अभी सोये नहीं।"

"आइये! सेठ साहब, आइये! कैसे इस समय आना हुआ?" श्यामाचरण की हैरानी का कारण था सेठानी और उनकी बहिन का साथ आना। वह उनको लेकर ऊपर की मंजिल पर चला गया। सेठ साहब ने ऊपर जाने से पूर्व दरवाजे की भीतर से सांकल चढ़ा दी।

सेठ साहब ने औरतों को कहा, "तुम मन्दिर में चली जाओ और मैं यहां ही रहूँगा।" फिर श्यामाचरण को कहा, "इन लोगों के लिये दो बिस्तर वहां लगवा दो। और हां, मधुसूदन कहां है?"

श्यामाचरण ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज! नौकर तो चला गया है और मधुसूदन अभी बाहर से लौटा नहीं।"

"तो इनको कपड़े दे दो। ये स्वयं मन्दिर में बिस्तर लगा लेंगी। आज रात हम तुम्हारे घर महमान रहेंगे।"

श्यामाचरण के विस्मय का ठिकाना नहीं था। वह भागा २ बगल के कमरे में गया। वहां से दो गद्दे और बिस्तर का शेष सामान लेकर मन्दिर में जा, लैम्प जला, स्त्रियों को वहां छोड़ आया और स्वयं सेठ साहब के पास आ उत्सुकता से उनके कहने की प्रतीक्षा करने लगा। सेठ साहब ने फिर पूछा, "मधुसूदन कहां गया था?"

"साहब! वह कई दिन से घर से बाहर नहीं निकला था। आज दोपहर का खाना खाने के बाद मैंने उसे बहुत कुछ कहकर आपके घर भेजा था। तब से वह नहीं आया। उसी की प्रतीक्षा में नीचे बैठा था।"

"नहीं आया! क्या दोपहर के बाद से नहीं आया?"

"नहीं। घर से लगभग ग्यारह बजे गया था।"

"उसके बाद वह मेरे पास आया था। दो बजे दोपहर वह मेरे यहां से चला गया था। तब से अभी तक नहीं आया। क्या पहले भी कभी ऐसा हुआ है?"

"नहीं साहब, कभी नहीं। वह बिना बताये घर से इतना समय अनुपस्थित नहीं रहा।"

सेठ साहब इससे बहुत ही गम्भीर विचार में पड़ गये। कुछ सोच कर बोले, "वह मेरे पास आया था अवश्य और उसके साथ मैंने बहुत कुछ बातें भी की थीं। उस समय उसकी बातें सर्वथा ठीक थीं। न तो उसके मन पर कोई चिन्ता प्रतीत होती थी और न ही उसके दिमाग़ में कोई ख़लल था। वह पूरे होश-हवास में था। यहां तक कि मुझे यह बढ़िया सम्मति कि मैं अपने घर में रात को न सोऊँ उसी ने दी थी। अब विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसकी यह राय ठीक दिमाग़ से निकली हुई थी।"

इसके पश्चात राय साहब कहते गये, मानों वह श्यामाचरण से अपनी सफाई पेश कर रहे हों। "पण्डित जी! आज मुझे कुछ डाकुओं ने मार डालने की धमकी दी है और लिखा है कि यदि मुझे जान बचानी है तो मैं उनको पचास हज़ार नकद दे दूं।"

श्यामाचरण ने अचम्भे में पूछा, "पचास हज़ार?"

"हां, पचास हजार। मैंने यों तो पुलिस में रिपोर्ट कर दी है परन्तु वे क्या कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे, मुझे मालूम नहीं। मैंने अपनी रक्षा का सब से सुगम उपाय यही समझा है कि आज रात तो तुम्हारे घर काटूँ। कल फिर सोच लूँगा। हां, किन्तु यह स्मरण रहे कि किसी को भी विदित न हो कि मैं रात यहां रहा हूँ। नहीं तो यह तरकीब व्यर्थ हो जायगी।"

"नहीं, सेठ जी! आप निश्चिन्त रहें। किसी को सन्देह तक नहीं होगा। परन्तु आप कुछ अनुमान नहीं लगा सकते कि मधुसूदन कहां गया होगा?"

"अभी कहना कठिन है। क्या कुछ झगड़ा हुआ था?"

"झगड़ा? अ···आ···हां। कुछ बात तो हुई थी।"

"क्या हुई थी?"

"कुछ दिन हुए मधुसूदन की मौसी के गांव से कुछ लोग उसकी सगाई लेकर आये थे। इस बात पर झगड़ा हो गया था।"

"क्यों, इसमें झगड़े की कौन बात थी? वहां उसका विवाह तो हो नहीं सकता था।"

"क्यों नहीं हो सकता था?"

"पूर्णिमा से जो उसका विवाह होने वाला था।"

"परन्तु सेठ साहब! वह कायस्थ की कन्या है और हम ब्राह्मण हैं।"

"इससे क्या हो जाता? कायस्थ को ब्राह्मण बना लिया जाता।"

"धर्म-शास्त्र तो आपके आधीन नहीं हैं।"

"आज धर्म पर चलता ही कौन है? सरकार की तरफ से तो यह कानून हो गया है कि जात-पांत तोड़ कर विवाह हो सकते हैं।"

"परन्तु सरकारी कानून धर्म-शास्त्र के विपरीत होने से माननीय नहीं है।"

"सरकारी कानून को न मानने वाले और धर्म-शास्त्र को मानने वाले कर ही क्या सकते हैं। समय की प्रगति को रोकने की शक्ति तुम में है क्या?"

"यत्न तो कर सकता हूँ।"

"निःसन्देह। परन्तु उस यत्न का फल अब भोगो। शायद वह घर से भाग गया है और न जाने कहीं आत्मघात कर बैठा हो। पंडित जी, आपको मैंने पहले भी समझाया था कि उन दोनों का विवाह हो जाना ठीक है परन्तु आप नहीं माने। ईश्वर ही भला करे।"

इसके पश्चात दोनों गम्भीर विचार में मग्न हो गये।

[ ५ ]

उधर सेठ साहब के घर में एक भयंकर घटना घट रही थी।

मधुसूदन के चले जाने के पश्चात सेठ कुंजबिहारी लाल ने अपनी स्त्री से राय कर कि रात को घर में रहना उचित नहीं सब प्रबन्ध कर दिया। घर में जितने जेवर थे सब एक डिब्बे में बन्द कर इलाहाबाद' बैंक में जमा करा दिये। नकदी को जेब में और बैंक के हिसाब की किताबों को एक

अटेशी केस में बन्द कर चलने को तैयार हो गये।

रात के दस बजे उन्होंने अपने नौकर भगौतीदीन को बुलाया और कहा, "चौकीदार से कह दो कि वह रात को सो जाता है। यदि आज भी ऐसा किया तो ठीक नहीं होगा। हां, भगौती, देखना आज तुम भी जरा सचेत रहना। आज दिन से ही अपशकुन हो रहे हैं। लक्षण अच्छे प्रतीत नहीं होते।"

भगौती जिला सुल्तानपुर का एक विख्यात लठैत था। मूछों पर हाथ फेरकर बोला, "हजूर, आप कैसी बातें कर रहे हैं? किस की मजाल है कि इधर आंख भी उठा कर देखे।"

"हां, सो तो ठीक है। फिर भी होश्यार रहना चाहिये।"

जब भगौतीदीन चला गया तो घर की कहारी को भी शीघ्र ही छुट्टी दे दी गयी। वह रात को अपने घर चली जाती थी और दिन भर यहां काम करती थी। इस प्रकार जब सब बाहरी लोग चले गये तो सेठ साहब ने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये। मकान के पिछवाड़े में एक खिड़की थी जो एक गली में खुलती थी। यह मकान में आने जाने का मार्ग नहीं था। फिर भी उसमें से कूदकर बाहर निकला जा सकता था। सेठ साहब अपनी स्त्री और विधवा बहिन को साथ लेकर इस खिड़की से कूदकर गली में पहुंच गये। यह गली एक दूसरी गली में खुलती थी। वहां से कुछ दूरी पर एक दूसरे बाजार में पहुंचकर राय साहब ने मधुसूदन के मकान का मार्ग लिया। सेठ साहब ने यह बात इतनी चोरी से की कि उनके अतिरिक्त किसी अन्य को मालूम नहीं हुआ।

चौकीदार सेठ साहब के मकान की ड्योढ़ी में लाठी बगल में दबाये खड़ा था। जब से उसने सेठ साहब की नौकरी की थी कभी भी इस प्रकार ताड़ना नहीं किया गया था। आज की विशेष आज्ञा का अभिप्राय वह नहीं समझ सका। कुछ खिन्न मन और विचार-मग्न वह खड़ा था। यह बात तो ठीक थी कि बीच-बीच में वह सो जाया करता था परन्तु उसके इस सोने पर पहले कभी आपत्ति नहीं की गयी थी। आज क्यों?

घंटाघर में बारह बजे का घण्टा बज रहा था कि एक आदमी खाली हाथ उसके सामने आ खड़ा हुआ। "चौकीदार! क्या इस समय सेठ साहब के दर्शन नहीं हो सकते?" नवागत ने कहा।

चौकीदार ने इस प्रकार अचानक एक आदमी को सम्मुख आ प्रश्न करते देख, विचार-भंग हो, लाठी को संभाल लिया। परन्तु उसने देखा कि आने वाला कोई नवयुवक और भला मनुष्य प्रतीत होता है। वह खाली हाथ है और अकेला है। इस कारण चिन्ता की बात न जान बोला, "भाई नहीं। इस समय सेठ साहब सो रहे हैं।"

"सो तो ठीक है। परन्तु हमें बहुत आवश्यक काम है।"

"इसको मैं क्या जानूं। मैं तो यह जानता हूँ कि मुझे उन्हें उठाने की आज्ञा नहीं।"

"यह तो मैं कर लूंगा।"

"कैसे?"

"दरवाज़ा खटखटाकर।"

"यह मैं नहीं करने दूंगा। आप प्रातःकाल आइये न।"

"भाई रेलगाड़ी तो इस समय आई है। अब मैं रात भर कहां रहूँ?"

चौकीदार ने इस पर पूछा, "आपका असबाब कहां है?"

आने वाले ने कुछ जोर से आवाज़ दी, "ओ कुली! इधर आओ।" सड़क पर खड़ा एक आदमी एक सूटकेस लिये वहां पहुंच गया।

"अब भाई तुम ही दरवाजा खटखटा दो न। मुझे नहीं ज्ञात था कि इतनी दिक्कत होगी।"

चौकीदार ने यह समझ कि यह कोई वास्तविक महमान है मकान के मुख्य दरवाजे का फाटक खटखटाया। भीतर से भगौतीदीन ने किवाड़ खोल दिया। वह दरवाजे के साथ के ही कमरे में सोता था। पूछा, "क्या है हो?"

चौकीदार ने कहा, "यह महमान आये हैं। सेठ साहब को इत्तला कर दो।"

भगौतीदीन ने आने वाले को ऊपर नीचे से देखा और सन्देह का

कोई कारण न पा कहा, "आइये, बैठक में आजाइये। सेठ साहब ऊपर की मंजिल पर खुले में सोते हैं। देखता हूँ अगर वह जाग जायें तो।"

इस आमंत्रण पर आगंतुक भगौतीदीन के पीछे पीछे बैठक में चला गया। वहाँ जा उसने कुली को पुकारा। कुली भी सूटकेस लिये भीतर घुस गया। चौकीदार भी कुली के साथ भीतर चला गया। उसने मन में यह सोचा कि भगौतीदीन तो ऊपर की मंजिल पर सेठ साहब को सूचना देने चला जायगा इसलिये इस अपरिचित आदमी को बैठक में अकेले रहने देना ठीक नहीं।

बैठक में पहुँच भगौतीदीन ने पूछा, "हजूर का नाम क्या है और कहां से आना हुआ है?"

नये आनेवाले ने कहा, "हां! यह मेरा कार्ड लेते जाओ।" इतना कह उसने एक छपा कार्ड उसके हाथ में दे दिया।

भगौतीदीन बैठक को लांघ सीढ़ियों से ऊपर चला गया। चौकीदार ने अपने पीछे कुछ आवाज सुनी तो वह घूम कर ड्योढ़ी में चला आया। वहां पहुँचते ही तीन आदमियों ने उसे घेर लिया। पूर्व इसके कि वह कुछ बोले एक ने उसके मुँह पर हाथ रख उसे बोलने से रोक दिया और अन्य दो ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। उसी समय कुली, जो बैठक में सूटकेस लिये खड़ा था सूटकेस वहां रख, बाहर ड्योढ़ी में चला आया। उसने अपनी कमर से एक रस्सा खोल चौकीदार के हाथ और पांव कस कर बांध दिये। फिर उसके मुख में कपड़ा ठूंस, कसकर बांध दिया।

भगौतीदीन ऊपर की मंजिल पर जाकर भीतर का किवाड़ खटखटाने लगा। बहुत खटखटाने पर भी जब कोई आवाज नहीं आई तो वह नीचे चला आया। उसने देखा बैठक में नया आने वाला चुपचाप और शांत भाव से खड़ा है। भगौतीदीन ने कहा, "हजूर कोई बोलता नहीं। प्रतीत होता है गहरी नींद सो रहे हैं। आप यहीं ठहरिये। मैं बिजली का पंखा छोड़ देता हूं। सुबह देखा जायगा।"

आगंतुक ने कहा, "अच्छी बात है। तुम आराम करो। अब एक

बजने वाला है, तीन-चार घण्टे में तो दिन हुआ जाता है। और हां! यह सुनो तो।" इतना कह उसने भगौती की तरफ हाथ बढ़ाया। भगौती उसकी तरफ बढ़ा ही था कि चौकीदार की भांति उसे भी तीन आदमियों ने पकड़ लिया। भगौती एक बार तो छटपटाया परन्तु सम्मुख खड़े हुए आदमी के हाथ में पिस्तौल देख सहम गया और चुपचाप अपने आपको बंध जाने दिया।

इन दोनों बंधे हुए सेवकों को उस कोठरी में बन्द कर जिसमें भगौती रहता था पांचों के पांचों आये हुए बैठक में इकट्ठे हो गये। भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया गया।

इन लोगों में सब से पूर्व जो महमान बनकर आया था वह कमल था। कुली द्विवेदी था और तीन आदमी नये थे।

कमल ने कलाई की घड़ी पर समय देखा। इस समय बारह बजकर तेरह मिनट हुए थे। तेरह मिनट में इतनी सफाई और सुगमता से अपने काम का एक भाग समाप्त कर कमल आगे चला। द्विवेदी को बैठक में खड़ा कर सब से आगे सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। एक ने वह सूटकेस उठा लिया और पीछे २ चल पड़ा। सीढ़ियां चढ़ ऊपर की मंजिल पर पहुँच उन्होंने देखा कि भीतर का किवाड़ बन्द है। कमल ने बिजली का स्विच जला रोशनी की और सूटकेस खोल एक लोहे की सलाख निकाल किवाड़ में फंसा दो-तीन झटके दिये। किवाड़ खुल गया। भीतर से सांकल लगी थी जो टेढ़ी हो निकल गयी थी। चारों के चारों भीतर पहुँचे। खुली छत थी जिस पर तीन बिस्तर लगे थे, परन्तु उन पर सोया हुआ कोई न था। खुली छत के एक तरफ दो-तीन कमरे थे। सब को ताले लगे थे। एक एक कर सब खोले गये। परन्तु इनमें न तो कोई मनुष्य था और न ही कुछ नकदी। निराश हो कमल और उसके साथी नीचे चले आये। सीढ़ियों के एक तरफ एक किवाड़ था जो नीचे की मंजिल पर भीतर के कमरों को जाता था। यह भी भीतर से बन्द था। इसे भी ज्यों त्यों कर खोला गया। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा,

इस प्रकार कई कमरे थे। सब भीतर से बन्द थे। कमल और उसके साथी एक एक कर कमरों की तलाशी लेते गये और अगला कमरा खोलते गये। बर्तन, कपड़े और घर का सब प्रकार का सामान था परन्तु नकदी व जेवरों का कहीं चिन्हमात्र भी नहीं था। यहां तक कि चांदी का कोई बर्तन भी नहीं था। इस सब महनत के पश्चात कमल और उसके साथी अन्तिम कमरे में पहुँचे और वहां की तलाशी लेते समय उन्होंने देखा कि पिछवाड़े की एक खिड़की भीतर से बन्द नहीं। उसे इस प्रकार खुला देख कमल समझ गया कि चिड़िया तो हाथ से उड़ गयी है। वह गम्भीर विचार में पड़ गया कि ऐसा क्यों हुआ। अवश्य सेठ साहब को हमारे आने की सूचना मिल गयी होगी। या यों कहो कि वह डर कर केवल हमारे आने की आशंका में ही भाग गये हैं। इसी विचार में मग्न वे सोचते हुए बैठक में पहुँचे।

कमल ने द्विवेदी को कहा, "यह डाका तो सर्वथा निष्फल रहा। और हां, तुमने अब तक क्या किया है?"

द्विवेदी ने कहा, "बैठक की सब अलमारियां, मेजों के दराज, कुर्सियों के तले, कौचों के गद्दे, अभिप्राय यह कि सब स्थान ढूंढ डाले हैं और एक भी मतलब की वस्तु नहीं मिली। इसमें किंचित भी सन्देह नहीं कि यह मतलब की वस्तुएँ कहीं भीतर और जगह रखता है।"

कमल बोला, "प्रतीत होता है कि यह सेठ बहुत काइयां है। एक रत्ती भर भी तो सोना या चाँदी नहीं मिली और मज़ेदार बात तो यह है कि स्वयं और घर की सब स्त्रियां लापता हैं। उनका कहीं चिन्ह-मात्र भी नहीं मिला।"

द्विवेदी ने कहा, "यहां से शीघ्र भाग जाना चाहिये। मुझे तो अब यहां ठहरने में अनिष्ट ही प्रतीत होता है।"

'हां' यह आवाज बैठक के पीछे से आई। सबकी दृष्टि उस ओर घूम गयी। कमल ने देखा कि एक पुलिस कानस्टेबल सीढ़ियों के दरवाजे में खड़ा है और उसके हाथ में एक डंडा है।

यह कानस्टेबल अपनी नित्य प्रति की गश्त में सेठ साहब के मकान के पिछवाड़े की गली से गुजरा था। उसने सेठ साहब के मकान की खिड़की खुली देखी। सेठ साहब तो खिड़की को भीच गये थे, परन्तु जब कमल ने देखा कि खिड़की की अन्दर से सांकल नहीं लगी हुई तो उसने खोल कर देखा था कि वह किधर खुलती है। वह एक बार गली में झांका भी था, परन्तु फिर नकदी की तलाश में खिड़की बन्द करना भूल गया था।

जब कानस्टेबल रामसिंह गली में से गुजरा तो उसे खिड़की खुली देख सन्देह हुआ। वह वहां एक सैकण्ड तक खड़ा हो सोचने लगा कि क्या करे। ठीक इसी समय कमल कमरे में कुछ न पाने से निराश हो कह रहा था कि 'कमबख्त ने न जाने जेवर कहां रखे हैं।' पुलिस कानस्टेबल यह सुन समझ गया कि सेठ साहब के घर में चोर हैं। उसे यह नहीं ज्ञात था कि ये साधारण चोर नहीं हैं और अकेले इनसे निपटा नहीं जा सकेगा। अतएव वह कूदकर खिड़की में चढ़ गया। इस समय कमल इत्यादि बैठक में जा पहुंचे थे। वह इनके पीछे वहां पहुंच गया। वहां कमल और द्विवेदी में पूरा वार्तालाप उसने सुना था। उसने उनके मन में डर पैदा करने के लिये एकाएक, 'हां' का शब्द जोर से कहा था।

द्विवेदी तो कानस्टेबल को देख एकदम बैठक के बाहर के दरवाजे की ओर लपका। वह यह सोच रहा था कि यदि सेठ साहब वहां से लापता हैं तो निःसन्देह उन्हें उनके डाका डालने की सूचना मिल चुकी है और उन्होंने पुलिस वालों से सहायता मांगी होगी। वह अपने मन में सोचता था कि जिस समय वे मकान में व्यर्थ की खोज कर रहे थे उस समय सम्भव है कि मकान पुलिस वालों ने घेर लिया हो। वह मन ही मन कमल की योजना को दोषपूर्ण समझ रहा था। अतएव द्विवेदी तो एक ही छलांग में दरवाज़े को खोल बाहर हो गया, परन्तु कमल इस प्रकार भागने वाला नहीं था। वह सारी परिस्थिति को जानकर कुछ करना चाहता था। उसने जोर से कहा, "तुम आ गये तो लो।" इतना कहते २ कमल ने पिस्तौल जेब से निकाला। इसके निकालने में कुछ सैकण्ड लगे।

रामसिंह समझ गया कि पिस्तौल निकाला जा रहा है। वह कूदकर डाका डालने वालों में से एक के पीछे हो गया और उसे जोर से कमल की तरफ धकेल दिया। डाकू लुढ़कता हुआ कमल पर जा गिरा। इस समय तक कमल ने गोली चला ही दी। गोली कानस्टेबल को लगी तो परन्तु निशाना चूक गया था। कमल ने छाती का निशाना साधा था, परन्तु हाथ हिल जाने से गोली छाती के बजाय बायें कंधे पर लगी। कानस्टेबल ने अपनी जान खतरे में देख स्वभाव के मुताबिक जेब से सीटी निकाल बजा दी। कमल ने यह समझा था कि कानस्टेबल बिना चूं-चरां किये ढेर हो जायगा, परन्तु निशाना चूकता देख और कानस्टेबल को सहायता के लिये पुकारता देख वह घबरा गया। इस पर भी उसने फिर निशाना साधा। अब रामसिंह कूदकर दूसरे के पीछे जा खड़ा हुआ और निशाना इस बार भी व्यर्थ गया। गोली दीवार में जाकर लगी। इस पर कमल भी द्विवेदी के पीछे भागा। कमल के साथी भी भागे।

रामसिंह को बहुत पीड़ा हो रही थी। परन्तु जब उसने देखा कि कमल के अतिरिक्त और किसी ने रिवाल्वर अथवा गोली नहीं चलाई तो वह समझ गया कि उनमें से एक के पास ही पिस्तौल है। कमल भाग गया था। सबसे पीछे वह आदमी था जिसको उसने कमल पर धकेला था। रामसिंह ने उसको पकड़ लिया। उसने बहुत चीख-पुकार की परन्तु रामसिंह ने एक ही बांह से उसे ऐसी लपेट में लिया कि वह जमीन पर गिर पड़ा और फिर उसने उसे अपने नीचे दबोच लिया। एक दो मिनट में उसने उसके सिर पर अपने डंडे के दो-तीन हाथ जमाकर उसे आधा बेहोश कर दिया। अब वह उठा तो उसने बैठक का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। दूसरी ओर से सीढ़ियों को जाने वाले दरवाजे को उसने बाहर से बन्द कर दिया। इस प्रकार डाकू को काबू में कर वह पुनः पिछवाड़े वाली खिड़की से कूदकर गली और गली से भागता हुआ बाजार में पहुंचा। वहां जा उसने जोर से फिर कई बार सीटी बजाई। दूर से एक और कानस्टेबल भागता हुआ आया। उसे वह लेकर पुनः सेठ साहब के

मकान में पहुँचा।

इस समय तक सीटियों की आवाज़ से पड़ोस के दो-एक रहने वाले भी वहां आ पहुँचे थे। जब सब भीतर गये तो उन्होंने देखा कि वेहोश डाकू कुछ होश सम्भाल रहा है।

रामसिंह के कन्धे के घाव से बहुत रक्त बह चुका था और वह कमजोरी अनुभव करने लगा था। वह एक तरफ कुर्सी पर बैठ गया और दूसरे कानस्टेबल से उस आदमी को बांध लेने के लिये कहा। पड़ोसियों ने भी सहायता की। एक ने सेठ साहब के टेलीफ़ून से थाने में इत्तला कर दी। दूसरे ने एक कपड़ा ला डाकू को बांधने में हाथ बंटाया।

इसके बाद एक पड़ोसी, जो सेठ साहब के नौकर का नाम जानता था, जोर २ से 'भगौती ! भगौतीदीन' पुकारने लगा। परन्तु उसका कहीं पता नहीं था। इस पड़ोसी ने भगौती की कोठरी को जो ड्योढ़ी के समीप थी जाकर देखा। कोठरी की बाहर से सांकल चढ़ी थी। उसने सांकल उतार किवाड़ खोला तो दो आदमियों को बंधा पड़ा पाया। उस पड़ोसी ने कानस्टेबल को बुला उन्हें दिखाया। दोनों के मुख में कपड़ा ठूंसा हुआ था।

इतने में थाने से लगभग दस-बारह पुलिस के लोग वहां पहुँच गये। उन्होंने सब मकान को अपने आधीन कर लिया। हैड-कानस्टेबल ने सेठ साहब की बाबत पूछा, परन्तु इसका उत्तर कोई नहीं दे सका।

[ ६ ]

इलाहाबाद से दारागंज को जाते हुए मार्ग पर एक पुराने से मकान में कमल, द्विवेदी और उसके दो साथी बैठे थे। प्रातःकाल का समय था। कमल बहुत खिन्न मन था। उसकी पार्टी का यह पहला 'एक्शन' था और यही सर्वथा असफल रहा। सब से अधिक शोचनीय बात तो यह थी कि उनका एक साथी पकड़ा गया था। यह साथी मिरज़ापुर जिला के विन्ध्याचल गांव का रहने वाला था। इसका नाम श्रीहर्ष सिंह था। यह ठाकुर नवयुवक, बीस-बाईस वर्ष की आयु का, देहात के स्कूल में दसवीं श्रेणी तक पढ़ा था। इसके पश्चात इस समय तक बेकार था। कमल की

संगत में आकर पार्टी में सम्मिलित होगया था।

कमल नहीं कह सकता था कि यह नौजवान लड़का बक देगा अथवा नहीं। यदि वह भेद खोलना चाहे तो इनकी पार्टी को बहुत कुछ हानि पहुँचा सकता है। कम से कम कमल की जायदाद तो जब्त हो ही जायगी।

इसी तरह के सोच-विचार में ये चारों आदमी बैठे एक दूसरे का मुख देख रहे थे। आखिर द्विवेदी से न रहा गया। उसने कहा, "इसमें तो सन्देह नहीं कि सेठ साहब को हमारे आज रात के 'एक्शन' का समाचार मिल गया था। यह उन्हें क्योंकर ज्ञात हुआ?"

कमल ने आंखे नीची किये हुए कहा, "क्या जानें।"

कमल ने जब यह कहा तो उसकी गालों पर शर्म की सुर्खी प्रतीत हो रही थी। द्विवेदी को कुछ संदेह तो हुआ परन्तु वह इन आंखें नीची कर उत्तर देने तथा गालों पर एक क्षण के लिये लाली के दौड़ जाने का कारण कुछ और ही समझा। उसने समझा कि कमल के नेतृत्व में यह पहला 'एक्शन' ही असफल हुआ है, इस कारण वह लज्जित है। द्विवेदी ने ढाढ़स बंधाते हुए कहा, "अब जो हुआ सो हुआ। इस पर सोच करने से तो कुछ बनेगा नहीं। मेरा पता तो श्रीहर्ष क्या पार्टी में कोई भी नहीं जानता। मेरा पूरा नाम भी श्रीहर्ष नहीं जानता। इस कारण यदि वह भेद खोल भी दे तो मेरी कुछ भी हानि नहीं कर सकता। इस पर भी मुझे उसके पकड़े जाने का अत्यन्त शोक है। और मुझे पार्टी के भविष्य की बहुत चिन्ता है। मिस्टर कमल! अब आप क्या करने के लिये कहते हैं?"

"मुझे तो कुछ नहीं सूझता।"

"यदि इस समय धीरेन्द्र होता तो अवश्य अब तक हम लोगों को आज्ञा मिल चुकी होती कि हम क्या करें।"

धीरेन्द्र के नाम पर कमल चिढ़ गया। उसने गुस्से में कहा, "धीरेन्द्र की इसमें क्या बात है। वह कभी ऐसी परिस्थिति में पड़ जाता तो हम सब को वहीं छोड़कर भाग गया होता। वह डरपोक क्या कर सकता है?"

द्विवेदी ने फिर कहा, "कमल भैया, इसमें नाराज़ होने की कौन बात है ? उसकी योजना आज तक कभी सरकार के कान तक नहीं पहुँची और वह भीड़ पड़ने पर अपने मन को स्थिर रख सकता है। आखिर अब क्या किया जाय ? क्या तुम बता सकते हो ?"

"पहली बात तो यहाँ से निकल जाने की है। सब इकट्ठे नहीं जा सकते। इस कारण द्विवेदी, तुम तो यहां से प्रयाग स्टेशन पर जाकर सुल्तानपुर के मार्ग से लखनऊ पहुँच जाओ। मैं कलकत्ते जा रहा हूँ, और अपने लिये सोच लूँगा। अब तुम दोनों लोग," दूसरे दोनों की ओर देखकर बोला, "अकेले २ पैदल यहां से निकल जाओ। अभी पन्द्रह दिन तक तो जहां कहीं मन में आवे छिपे रहो। पश्चात हम लोग लखनऊ में मिलेंगे।"

इधर ये लोग इस प्रकार के मनसूबे बांध रहे थे और दूसरी ओर पुलिस वाले अपनी कार्यवाही में संलग्न थे। इस बार पुलिस ने पहले से अधिक चुस्ती दिखाई। कलक्टर के बंगले की घटना के समय तो पुलिस वालों को इतनी घबराहट हुई थी कि वे आवश्यक देखरेख भी नहीं रख सके थे। इस भूल के कारण अफसरों से उनको भारी डांट भी पड़ी थी। अतएव इस बार ज्योंही थाने में खबर पहुँची कि एक दर्जन कानस्टेबल सेठ साहब के घर पहुँच गये। जब पुलिस-अफसरों को यह ज्ञात हुआ कि डाका डालने वाले क्रान्तिकारी दल के हैं, तो उस समय पुलिस ने इलाहाबाद स्टेशन, लारियों के अड्डों और गंगा तथा जमुना के पुल पर पहरेदार बैठा दिये। कोई भी आदमी बिना देख-रेख के नहीं जाने दिया जाता था। परिणाम यह हुआ कि कमल के दोनों रंगरूट मोटरों के अड्डे पर शहर के बाहर निकलने के प्रयत्न में पकड़े गये। जब पुलिस-अफ़सर ने जो अड्डे पर उपस्थित था उनसे प्रश्न किये तो वे घबरा गये और एक तो वहां से भाग पड़ा। वह कुछ पग पर ही पकड़ा गया। दूसरा चूँकि अपने विषय में ठीक उत्तर नहीं दे सका इसलिये सन्देह में रोक लिया गया।

कमल सीधा जमुना पर पहुंचा। वहां कुछ नावें किनारे पर बंधी थीं। वह कुछ देर इधर उधर देखता रहा। वहां कोई नहीं था। अब उसने नाव चलाने के चप्पू ढूँढने आरम्भ किये। एक नाव में दो चप्पू पड़े थे। वह उस नाव को किनारे से खोल, उसे हलका सा धक्का देकर उसमें सवार होगया। नाव को नदी के बीच में ले जाकर उसने मंझधार में छोड़ दिया। सूर्य निकलने और गरमी अधिक होजाने से पूर्व वह दस-बारह मील नीचे चला गया। वहां एक वीरान किनारे पर नाव को बांध एक ओर चल दिया।

द्विवेदी ने कमल की युक्ति पर अमल करना सुरक्षित न समझ शहर के भीतर का मार्ग लिया। वहां अपने सम्बन्धियों के घर पहुंच, कुछ काम से इलाहाबाद पहुँचने का बहाना कर, ठहर गया।

[ ७ ]

सेठ साहब सूर्य उदय होने से पूर्व ही श्यामाचरण से विदा हो घर की तरफ चल पड़े। स्त्रियों को वह वहां ही छोड़ आये थे। उनको कह दिया था कि कुछ देर मन्दिर में पूजा-पाठ कर चली आना। जब वह घर के सम्मुख पहुंचे तो पुलिस और मुहल्ले वालों की भीड़ देख मन में प्रसन्न हुए और चिंतित भी। प्रसन्न तो इस विचार से कि वह बहुत भारी मुसीबत से बच गये और चिंतित इस बात से कि न जाने घर में क्या ऊधम मचा होगा। वह मकान के दरवाजे पर पहुंचे तो लोग उनके गिर्द जमा हो गये। एक ने पूछा, "राय साहब, कहां थे आप?" लोग उनके पदवी त्याग देने पर भी उन्हें राय साहब कहकर ही पुकारते थे। "यहां तो बहुत गड़बड़ मच रही है।"

इतने में हैड-कानस्टेबल वहां पहुंच गया। वह भगौतीदीन और चौकीदार का बयान लिख चुका था। पुलिस को मकान की रखवाली के लिये छोड़ वह कैदी को लेकर थाने जाने ही वाला था कि सेठ साहब वहां पहुंच गये। हैड-कानस्टेबल सेठ साहब को वहां देख ठहर गया। वह बोला, "हजूर, आप कहां थे? आपके घर तो डाका पड़ा है।"

सेठ साहब ने चिंतित भाव में पूछा, "अच्छा कुछ हानि तो....."

"नहीं साहब, कुछ खास हानि नहीं हुई। हमारा एक कानस्टेबल घायल हुआ है। चोट मामूली है। इस समय अस्पताल भेज दिया है।"

इतने में सुप्रिन्टेंडेन्ट पुलिस, इन्सपेक्टर पुलिस, सिटी-मैजिस्ट्रेट और कलक्टर मोटरों में सवार हो वहां आ पहुंचे। कलक्टर की तो सेठ साहब को सही-सलामत देख जान में जान आई। वह सोच रहा था कि एक दिन पहले सेठ साहब सहायता के लिये आये थे परन्तु उसने मज़ाक उड़ा दिया था। अब यदि सेठ साहब को कुछ हुआ तो उसकी बहुत बदनामी होगी। यही कारण था कि सेठ साहब को सही-सलामत देख उसे प्रसन्नता हुई थी।

जब सारी घटना का वर्णन, हैड-कानस्टेबल से जो वहां था, सुन चुका तो कलक्टर ने सेठ साहब से पूछा, "सेठ साहब! आप कहां थे?"

सेठ साहब ने कहा, "जब हजूर ने मदद देने से इन्कार कर दिया तो मैंने यहां से टल जाना उचित समझा। अब मैं समझता हूं कि मैंने बहुत अच्छा किया था।"

"तो आप घटना के समय यहां नहीं थे?"

"नहीं! मैं तो रात के दस बजे ही घर की औरतों के साथ यहां से चला गया था। रात मैंने अपने एक मित्र के घर गुज़ारी। यह सब हजूर की मेहरबानी थी। यदि पुलिस रक्षा नहीं कर सकती तो अपनी रक्षा आप करनी पड़ती है।"

कुछ और देख-भाल के पश्चात केवल दो कानस्टेबल वहां छोड़ पुलिस के अफसर अपने २ काम पर लौट गये। सेठ साहब ने अब घर के सब कमरे देखे और देखा कि सब सन्दूक, सब अल्मारियां और प्रायः प्रत्येक वस्तु उलट-पुलट पड़ी है। इस पर भी कोई भी वस्तु चोरी नहीं हुई। इससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि डाकू नकदी की तलाश में थे जो वे नहीं पासके। इस समय मधुसूदन की दूरदर्शिता की याद आई। इस याद के साथ ही उसके लापता होने की चिन्ता भी होने लगी। सेठ साहब

इस चिन्ता में कोच पर बैठ सिगार सुलगा कश लगाने लगे।

## छटा भाग

## मुकदमा

क्राईम इन्वेस्टिगेटिंग डिपार्टमैंट अर्थात खुफिया-पुलिस के दफ्तर में आज विशेष चहल-पहल थी। इस महकमे के इन्सपैक्टर पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र सेठ साहब के घर पर जो डाका पड़ा था उसके मामले की जांच कर रहे थे और श्रीहर्ष, वह नवयुवक जो सेठ साहब के घर पर रामसिंह कानस्टेबल द्वारा पकड़ लिया गया था, मिश्र जी के सम्मुख खड़ा था। मिश्र जी ने कुछ देर इस नवयुवक को सिर से पांव तक देखकर कहा, "तुम सेठ साहब के घर पर पकड़े गये हो?"

"मैं बिना अपने वकील से बातचीत किये कुछ नहीं बताऊगा।"

मिश्र जी हंस पड़े और समीप रखी हुई कुर्सी पर बैठने का संकेत कर कहने लगे, "बैठ जाओ। आराम और शांति से विचार कर बात करो। घबराओ नहीं। यह तुम लोगों का भ्रम है कि हम तुम्हारे दुश्मन हैं। देखो भाई, हम भी हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र कराने वालों से हमारी पूरी सहानुभूति है। अन्तर केवल यह है कि तुम्हारे काम का ढङ्ग हमको पसन्द नहीं। इस पर भी तुम्हें व्यर्थ अथवा झूठ-मूठ में फंसाकर हमें क्या मिलेगा? परन्तु यदि तुम इस बात के बताने में भी, कि तुमको पुलिस वालों ने घर के भीतर से पकड़ा है या बाहर से, वकील से राय करना आवश्यक समझते हो तो एक बात तो स्पष्ट ही है कि तुम सत्य-बात के बताने में, या यों कहो कि, सत्य बात को ज्यों का त्यों बताने में संकोच करते हो। इस बात को समझने के लिये कि तुम कहां पकड़े गये थे कानून की भारी योग्यता की आवश्यकता नहीं। यह एक सीधा सा प्रश्न है और इसका सीधा सा ही उत्तर होना चाहिये। अच्छा तुम कितना पढ़े हुए हो?"

श्रीहर्ष अब सोच रहा था कि इनके प्रश्नों का उत्तर दे या नहीं। ये प्रारम्भिक प्रश्न थे। वह अभी सोच ही रहा था कि इन्सपैक्टर ने फिर कहना आरम्भ किया, "देखो! इस चुप्पी से तो तुम यह प्रकट कर रहे हो कि तुम सत्य ही दोषी हो। तुम्हारे निर्दोष न होने में तो तुमने विश्वास करा दिया है। यदि तुम कहीं ऐसे ही पकड़ लिये गये होते तो साहब! तुम तुरन्त कह देते कि 'मैं तो निर्दोष हूँ।' क्या इतना बताने में भी कि तुमने कोई अपराध नहीं किया वकील की जरूरत है? यदि तुम ऐसा समझते हो तो बिना कहे तुम अपने आपको अपराधी सिद्ध कर रहे हो। यह ठीक है कि तुमने मुख से कुछ नहीं कहा, परन्तु जब हम लोगों को विश्वास हो जाता है कि हमने एक अपराधी को पकड़ा है तो फिर कानून की दृष्टि में प्रमाण बनाना तो हमारे बायें हाथ का करतब है। तुम्हारे साथ भी ऐसा ही होगा। फिर भी मैं चाहता हूं कि एक अवसर तुम्हें और दूं। बताओ तुम्हारा नाम क्या है और तुम कहां के रहने वाले हो?"

श्रीहर्ष को मिश्र जी की युक्तियों ने संशय में डाल दिया। उसे संशय यह था कि यदि वह सत्य सत्य सब बातें बता दे तो इससे उसे लाभ तो कुछ भी नहीं होगा। हां, पुलिस वालों को सुभीता हो जायगा। उसे यह सुभीता पुलिस वालों को देना चाहिये या नहीं यही द्विविधा उसके मन में उत्पन्न हो रही थी और वह निश्चय नहीं कर सका था। इस समय उसने केवल कुछ कहने के विचार से ही कहा, "आप जो कुछ कहते हैं वह ठीक है या नहीं, मैं नहीं जानता। एक बात मेरी समझ में आती है कि आपको यह सब कुछ बताने से मुझे लाभ ही क्या होगा? कुछ भी नहीं।"

श्रीहर्ष की यह पहली बात थी जो उसने पकड़े जाने के पश्चात की थी। पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र अपनी इतनी सफलता पर प्रसन्न थे। वह कहने लगे, "अवश्य होगा। लो सुनो। यदि तुमने कोई अपराध नहीं किया तो प्रश्नों का सीधा सीधा उत्तर देने से तुम हमारे मन में ऐसा

विश्वास करा दोगे और हम तुम्हें छोड़ देंगे। आखिर मुकदमा तो हमने ही बनाना है। और यदि तुम अपराधी हो तो सत्य सत्य बताने से तुमको मुआफी मिल सकती है। यदि तुम अपराधी हो और पूरा दण्ड भोगने के लिए तैयार हो तब तुम जो तुम्हारा मन कहे करो। परन्तु इतना याद रख लेना कि अपराधी के अपराध के प्रमाण उसकी सहायता के बिना भी मिल जाते हैं।"

इतना कह इन्सपैक्टर कुछ काल के लिये चुप कर गया। वह सम्मुख बैठे नवयुवक के मुख पर उतार-चढ़ाव देख रहा था। अब वह फिर कहने लगा, "मेरी इस अन्तिम बात का शायद तुम्हें विश्वास नहीं होता। क्यों ठीक है न? यदि विश्वास नहीं तो सुनो। तुम लोगों के सेठ साहब के मकान में डाका डालने की सूचना सेठ साहब को और उनसे हमको पहले ही पहुंच चुकी थी। यही कारण था कि तुमको वहां पर न तो सेठ साहब मिले और न ही कुछ नकदी तथा जवाहिरात। और जानते हो यह सूचना किसने दी थी? तुम्हारे नेता ने। उसने एक चिट्ठी सेठ साहब को लिखी थी कि वह आप लोगों को पचास हजार रुपया दे दें अन्यथा उनके घर में डाका डाला जायगा।"

"यह गलत है।"

"गलत है? यह देखो।" इतना कह इन्सपैक्टर ने मेज की दराज से एक फाइल निकाल उसमें से एक चिट्ठी निकाल दिखाई। श्रीहर्ष ने वह चिट्ठी दूर से ही देखी। वह अंग्रेजी में टाइप की हुई थी। अब वह फिर कहने लगा, "तुम कह सकते हो कि इससे क्या लाभ हुआ? देखो! इससे एक बात तो यह प्रतीत होती है कि तुम्हारा नेता समझदार आदमी नहीं है। एक तो इतना अधिक रुपया मांगा है कि कोई भी दे नहीं सकता। दूसरा यह कि डाका डालने से पहले सूचना देना मूर्खता है और अपने साथियों को पुलिस के हाथ फंसाना है। इस बेसमझी के अतिरिक्त इससे एक बात यह भी हुई है कि हमने वह टाइपराइटर ढूंढ लिया है जिस पर यह चिट्ठी टाइप की गई थी। कल हमने शहर भर

के कई टाइपराइटरों के छापे दफ्तर में मंगवाये थे। यह जानना तो अत्यन्त सुगम था कि चिट्ठी इलाहाबाद में ही डाक में डाली गई थी। लिफाफे पर मोहर इलाहाबाद शहर के एक सब-पोस्ट ऑफिस की थी और हमने उसके समीप के तमाम दुकानदारों, दफ्तरों, टाइपिस्टों के टाइपरायटरों के छापे मंगवा लिये थे। हमने उससे यह पता कर लिया कि यह चिट्ठी किस मशीन पर टाइप की गई है और इस टाइपराइटर का मालिक हमें बता गया है कि इस चिट्ठी का टाइप कराने वाला कौन है और कहां का रहने वाला है। अब सोचो कि यदि तुम चुप भी रहो तो तुम लोग फँस सकते हो या नहीं।"

श्रीहर्ष अब भी चुप था। उसके मन में घोर युद्ध हो रहा था। वह इस चिट्ठी के विषय में कुछ नहीं जानता था। वह सोच रहा था कि यदि यह सत्य है तो निश्चय कमल ने भारी मूर्खता की है। वह सोचता था कि क्या इस मूर्ख नेता को बचाने के लिये वह अपनी जान जोखम में डाल दे? फिर कभी उसके मन में यह आता था कि ये पुलिस वालों के झांसे हैं। वास्तव में न कोई चिट्ठी लिखी गई है और न ही इनको कुछ पता चला है।

पण्डित ज्योतिप्रसाद मिश्र बहुत ही योग्य पुलिस अफसरों में से थे। वह उस नवयुवक को विचार-मग्न देख समझ रहे थे कि बात बन रही है। उन्होंने समझा लोहा गरम हो गया है। अब इस लोहे को पीटना चाहिये तो काम बन जायगा। उन्होंने बिना श्रीहर्ष के कहने की प्रतीक्षा किये अपना कहना जारी रखा :—

"क्या अब भी तुम समझते हो कि हम तुम्हें बहका रहे हैं? हां! पुलिस वाले ऐसा किया करते हैं, परन्तु मैं उन लोगों में से नहीं हूँ। मुझे तुम्हारी सूरत-शक्ल देख, तुम्हारी सुकुमारता देख, तुम पर दया आती है। तुम अभी अनजान हो और तुम्हें धोखे में डाल दिया गया है। यदि कोई और होता तो इतनी दिमाग़पची करने की जरूरत नहीं थी। मुकदमा तो बन ही जायगा। हां, यह तो हमने तुम्हें बताया ही

नहीं कि उस टाइपराइटर के मालिक ने क्या कहा है ? उसने बताया है कि दो दिन हुए मिरजापुर के ठाकुर ब्रजबिहारी सिंह का लड़का कमलजीत उसके पास आया था और एक चिट्ठी टाइप करने के लिये मशीन मांगी थी। वहीं उसकी बैठक में बैठकर उसने दो चिट्ठियां टाइप की थीं। उसने कागज पहिचान लिया है और लिफाफे को भी पहिचाना है। वह कमलजीत के पिता को जानता है। जब पिता जीता था तो कमल उसके साथ उसके घर आया करता था। इस कारण उस दिन उसके टाइप करने के लिये आने पर कुछ भी संदेह नही हुआ। अब तुम बताओ हमने ठीक पता पालिया है या नहीं।"

कमल का नाम और पूरा पता पुलिस वालों के हाथ में है, यह जान उसका मुख विवर्ण होगया। वह घबरा उठा। उसके हाथ और होंठ कांपने लगे। मिश्र जी यह सब देख रहे थे। परन्तु यह प्रकट करते हुए कि वह उसकी बेचैनी को नहीं देख रहे कहना जारी रखा, "इस समय यदि तुम स्पष्ट सब कुछ बता दोगे तो मैं तुम्हें मुआफ़ी दिलवा दूंगा। अन्यथा आप लोगों के लिये फांसी की डोरी तैयार हो चुकी है और कुछ महीनो में वह आप सबके गलों में लटकती होगी। यह मत समझना कि हम आज प्रातःकाल से चुपचाप बैठे हैं। हमने तुम्हारे दो और साथियों को पकड़ लिया है। उनकी पहिचान भी हो चुकी है। जिस पुलिस वाले को तुमने घायल किया था वह उन्हें पहिचान चुका है। यदि तुम नहीं मानोगे तो उनमें से कोई अवश्य सरकारी गवाह बन जायगा। अब तो केवल यह प्रश्न है कि तुम्हारी जान बचती है या उनमें से किसी की। क्या तुम उनको देखना चाहते हो ? यह लो।" इतना कह इन्सपैक्टर ने मेज पर रखी घंटी बजाई जिसे सुन एक आदमी भीतर आया। इन्सपैक्टर ने उसे कुछ संकेत में कहा। वह आदमी बाहर चला गया और कुछ ही समय में चार कानस्टेबलों के साथ, कमल के साथी जो मोटर वालों के अड्डे पर पकड़े गये थे, भीतर लाये गये। पुलिस वालों ने बन्दियों को सामने पेशकर सलाम की। इस पर इन्सपैक्टर

ने कहा, "इन्हें नम्बर ४ और नम्बर ५ की कोठरी में पृथक २ बन्द कर दो।" कानस्टेबलों ने सलाम की और बन्दियों को साथ ले कमरे से बाहर चले गये। जब सब लोग वहां से चले गये तो उसने फिर श्रीहर्ष से कहना आरम्भ किया, "क्यों महाशय! अब भी तुम्हें मेरे कहने का विश्वास हुआ है या नहीं? मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं दूसरे पुलिस वालों जैसा नहीं हूं। मुझे तुम लोगों से पूरी सहानुभूति है और मैं अपनी शक्ति के अनुसार तुम लोगों की सहायता करने के लिये तैयार हूँ। परन्तु मैं एक मशीन का छोटा सा पुर्जा हूँ। मैं मशीन की गति को पलट नहीं सकता। मैं तुम्हें बचा सकता हूँ और उसके लिये तुम्हें सब बात सत्य २ बतानी होगी। अब यह अन्तिम अवसर है। वकील इत्यादि की बात छोड़ो। वकील प्रमाणों को बदल नहीं सकते। वे अपराध को मिटा नहीं सकते। वे तो केवल निरपराधों को, वह भी कभी, बचा सकते हैं। कानून की चक्की बड़ी प्रबल है। यह अपराधियों को, कितने भी कड़े वे क्यों न हों, निश्चय से पीस डालती है।"

श्रीहर्ष ने जब अपने दो साथियों को भी बंधा देखा और कमल का पूरा पता पुलिस वालों के हाथ में पाया तो अधिक मुकाबिला करना व्यर्थ समझ बोला, "मैं आपको सत्य सत्य बता तो दूं, परन्तु........।"

"परन्तु क्या?"

"यही कि मेरे साथ कैसा व्यवहार होगा और दूसरे मेरे साथियों के साथ कैसे बीतेगी?"

"हां यदि तुम अब बिना देर किये सब कुछ बता दो तो मैं तुम्हें मुआफी दिलवा सकता हूं। रही तुम्हारे साथियों की बात। उनके साथ भी रियायत का बर्ताव हो सकता है यदि वे बहुत लुकाव-छिपाव न करें और अपने किये पर पश्चाताप करें। साथ ही वचन दें कि वे फिर कभी ऐसी हरकत नहीं करेंगे।"

यह अन्तिम बात भी जब श्रीहर्ष के मार्ग से दूर कर दी गयी तो वह सब कुछ बताने पर राजी हो गया। अब उसे कलम, दवात और कागज

देकर एक कमरे में बन्द कर दिया गया और वह अपना बयान लिखने लगा।

इसके पश्चात पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र ने अन्य दो नवयुवकों को जो मोटर-बसों के अड्डे पर पकड़े गये थे बुलाया। उनको इन्सपैक्टर ने कहा, "अच्छा तुम लोगों का नाम क्या है?"

ये दोनों बहुत घबराये हुए थे। एक बोला, "मेरा नाम हरिमोहन पाण्डे है और इसका नाम राधाकृष्ण सिंह है। हम दोनों त्रिवेणी-स्नान करने के लिये रात की गाड़ी से आये थे। प्रातःकाल स्नान कर हम घर को वापिस जा रहे थे कि पुलिस वालों ने हमें पकड़ लिया है। और हम कुछ नहीं जानते।"

इन्सपैक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, "तुम बहुत सच्चे आदमी हो। तुमने सब बात एकदम बता दी है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। हां तो जरा यह भी बता दो न कि तुम कहां के रहने वाले हो?"

"हम दोनों मिरजापुर जिले के रहने वाले हैं। मैं मिरजापुर में पान की दुकान करता हूँ और यह वहाँ स्कूल की नौकरी की आशा में आया हुआ था। हम दोनों एक ही गांव के रहने वाले हैं। इस कारण यह मेरे पास ही ठहरा हुआ था।"

"तुम बहुत ही अच्छे आदमी हो। भाई यदि सब लोग तुम्हारे जैसे सीधी बातें करने वाले हों तो पुलिस वालों का काम ही बन जाय। हमारा जीवन ही सुगम हो जाय। हां! भाई साहब अब तुम यह बताओ कि तुम कमलजीत बाबू को जानते हो?"

कमलजीत का नाम सुन दोनों अवाक् मुख इन्सपैक्टर की ओर देखने लगे। अब इन्सपैक्टर जोर से कहका लगाकर हंस पड़ा और बोला, "क्यों पाण्डे जी महाराज! घबरा क्यों गये? कौन से दर्जा तक पढ़े हो?"

"दर्जा पूछ कर क्या करियेगा? कहते लज्जा लगती है।"

"नहीं भाई, शर्म की कौन बात है? पढ़ना चोरी करना थोड़े ही है!"

"हां। नहीं, चोरी नहीं है। मैं हिन्दू-यूनिवर्सिटी बनारस की बी.ए. की परीक्षा देने वाला था कि पिता जी के देहांत के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

तीन साल नौकरी की तलाश में शहर २ घूमता रहा। आखिर पनवाड़ी की दुकान कर ली है। इसमें रुपया–बारह आने रोज मिल जाते हैं।"

इस कथा ने मिश्र जी को कुछ गम्भीर बना दिया। वह भी अण्डर-ग्रेजुएट ही थे। परन्तु पिता पुलिस में थे इस कारण नौकरी सुगमता से मिल गयी और उन्नति भी खूब की। एक लम्बी सांस लेकर पूछना जारी रखा, "और तुम ठाकुर साहब क्या पढ़े हो?"

राधाकृष्ण ने बहुत धीमे शब्दों में कहा, "मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट हूँ। सुना था मिरजापुर में एक मास्टर की जगह खाली है। उसी के लिये वहां पर यत्न कर रहा था। यहां तो केवल पाण्डे जी के साथ चला आया हूँ और इस मुसीबत में फंस गया हूं।"

"मुझे तुम लोगों से पूरी सहानुभूति है और मैं चाहता हूँ कि शीघ्र तुम लोगों को यहां से जाने की आज्ञा दे दूं। परन्तु एक बात तो तुम बताते ही नहीं कि कमलजीत तुम्हारे साथ कहां से आया था या तुम उसके साथ कैसे होगये थे?"

इस काल में हरिमोहन पाण्डे ने अपने मन को स्थिर कर लिया था। वह बोला, "हम किसी कमलजीत को नहीं जानते। हमारा किसी इस नाम के आदमी से सम्बन्ध नहीं है।"

मिश्र जी ने एक बार फिर यत्न किया। वह बोले, "पाण्डे जी महाराज! देखो, झूठ बोलने से कोई बच नहीं सकता। यदि तुम्हें अपने कामों के अच्छा होने का विश्वास है तो निडर हो कह दो। मैं समझता हूँ इसी प्रकार तुम अपने प्रयोजन को सिद्ध कर सकोगे। जो काम चोरी २ किया जाता है उसका प्रभाव नेक और लाभप्रद नहीं हो सकता।"

अब पांडे जी के हंसने की बारी थी। यद्यपि मुख का रंग उड़ गया था तो भी दांत निकाल कर हंसते हुए उसने कहा, "इन्सपैक्टर साहब! मानिये य न मानिये, यह आपके वश में है। परन्तु हमने जो कहा है वह सत्य है और इसी बात को बार २ कहने से कुछ लाभ न होगा।"

इन्सपैक्टर ने इस बार ग़लती की थी। उसे उन दोनों से पृथक २

पूछना चाहिये था। पाण्डे जी को अपनी बात पर दृढ़ देख उसे अपनी ग़लती भी सूझ गयी। उसने तुरन्त हुक्म दिया कि इन लोगों को अपनी २ कोठरियों में बन्द कर दिया जाय।

[ २ ]

मधुसूदन गायघाट से पकड़ कर थाने ले जाया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल हथकड़ियों में जकड़ा हुआ इलाहाबाद लाया गया। मार्ग में उसको बहुत कष्ट मिला था, परन्तु मधुसूदन को इस कष्ट का ध्यान नहीं था। वह तो पूर्णिमा और उसके साथियों की सोच रहा था। 'क्या यह सत्य है कि वह पत्र धीरेन्द्र ने लिखा था?' उसका मन कहता था 'नहीं,' और अब उसके मन के विचार की पुष्टि पूर्णिमा ने स्वयं की थी। हां उसे एक नई बात प्रतीत हुई थी। वह यह कि पूर्णिमा का मन उससे दूर हो गया है। पूर्णिमा का अपने पकड़े जाने की सम्भावना बताये जाने पर *यह कहना कि 'आपको क्या' इस प्रेम-बन्धन के ढीला पड़ जाने का* सूचक है। एक समय था कि पूर्णिमा की पार्टी का एक आदमी उस पर बलात्कार करना चाहता था। वह हाथ में भरा पिस्तौल लिये हुए था। और जब मधुसूदन केवल एक डण्डा हाथ में लेकर उससे मुकाबिले के लिये चला था तो पूर्णिमा ने उसे चेतावनी तो दी थी परन्तु रोका नहीं था। उस समय वह मधुसूदन पर अपना अधिकार समझती थी। अब यह कहना कि 'आपको क्या' मन की एक विचित्र अवस्था को बताता था। अब वह मधुसूदन पर अपना कोई अधिकार नहीं मानती है। यह प्रेम के शिथिल होजाने का ही सूचक हो सकता है।

साथ ही, धीरेन्द्र के लिये उसका अपनी जान पर खेल जाना मधुसूदन के मन में ईर्षा पैदा करने वाला था। उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था कि उसका स्थान, पूर्णिमा के मन में, धीरेन्द्र ले रहा है।

"परन्तु" मधुसूदन सोचता था, "मुझे इसमें रोष करने की आवश्यकता नहीं है। विवाह के लिये कोई किसी को बाध्य नहीं कर सकता। वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है और मैं भी हूँ। यदि मैं उससे प्रेम करता हूँ

तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि मैं उसके मन के भावों का आदर करूं।"

मधुसूदन को विश्वास था कि इलाहाबाद पहुंचते ही वह छोड़ दिया जायगा। उसके विपरीत तो कोई अपराध सिद्ध नहीं हो सकता। केवल किसी मकान के आगे से गुजरना कैसे अपराध हो सकता है। रहा उसका रात के बारह बजे बनारस की गलियों में घूमना। इसके लिये वह कुछ बहाना बना देगा। झूठ तो यह होगा ही, परन्तु पूर्णिमा के लिये वह ऐसा कर सकता था।

वह एक बजे के लगभग पुलिस-स्टेशन पर पहुँचा। वहां उसे तुरन्त खुफिया-पुलिस वालों के हवाले कर दिया गया। उसके साथ बनारस से एक चालान भी आया था जिसमें उस परिस्थिति का भी वर्णन था जिसमें वह पकड़ा गया था।

इन्सपैक्टर ज्योतिप्रसाद के सामने उसे मय चालान के हाजिर किया गया। इन्सपैक्टर के सम्मुख यह एक नई उलझन थी। इस समय तक श्रीहर्ष ने अपना लिखा हुआ बयान दे दिया था। उस बयान में गायघाट के मकान नं० २० का कहीं उल्लेख नहीं था। इन्सपैक्टर ने श्रीहर्ष को उस चिट्ठी की याद दिलाई थी जो सेठ कुँजबिहारी को गयी थी, परन्तु श्रीहर्ष ने बहुत गम्भीरता से उत्तर दिया था कि वह चिट्ठी और पचास हजार की बाबत कुछ नहीं जानता। ज्योतिप्रसाद को श्रीहर्ष के इस कथन पर विश्वास था, परन्तु जब बीस नम्बर गायघाट से एक आदमी के पकड़े जाने की सूचना मिली तो वह उलझन में फंस गया। इस आदमी को किस प्रकार श्रीहर्ष के बयान में स्थान दे, यह प्रश्न उसके सामने उपस्थित हो गया।

इन्सपैक्टर ने कुछ संशय में पड़े हुए भाव से पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"मधुसूदन उपाध्याय।"

"कहां के रहने वाले हो?"

"इलाहाबाद के।"

"पिता का नाम ?"

"श्यामाचरण उपाध्याय ।"

"तुम बनारस में क्या कर रहे थे ?"

"अपने एक मित्र को मिलने गया था । वह घर पर नहीं था । इस कारण घाट की तरफ जा रहा था, कि कहीं गंगा के किनारे सो रहूँ ।"

इस वर्णन से इन्सपैक्टर सोचने लगा कि कोई निर्दोष पकड़ा गया है । परन्तु वह और गहराई में जाना चाहता था । इस कारण उसने पूछा, "तुम क्या काम करते हो ?"

"मैं आयुर्वेद पढ़ता हूँ ।

"तुम्हारी योग्यता कितनी है ?"

"मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट हूँ ।"

"ओह ! तुम्हारे मित्र का क्या नाम है जिसे तुम मिलने गये थे ?"

"नरोत्तम प्रसाद सक्सेना ।"

"कहां रहता है ?"

"ढुन्डीराज में ।"

"तो तुम गायघाट पर इतनी दूर क्यों पहुँच गये ?"

"बिना इच्छा के ।"

"अच्छा ! नरोत्तम प्रसाद से तुम्हें क्या काम था ?"

"वह मेरा सहपाठी था । उससे मेरी घनिष्टता है । मैं केवल मिलने के लिये गया था ।"

"तुम्हारा यहां कोई जामिन है ?"

"हां सेठ कुँजबिहारी साहब ।"

'कुँजबिहारी !' इतना कह इन्सपैक्टर गम्भीर विचार में पड़ गया । उसने चालान पढ़ना आरम्भ कर दिया । चालान में लिखा था, 'कल शाम को यह नौजवान इलाहाबाद स्टेशन पर बहुत बेचैनी में घूमता हुआ देखा गया । बनारस कैंट स्टेशन पर वह बेतहाशा भागकर बाहर निकला और इक्के वाले को बहुत तेज भागकर वह चौक में पहुँचा ।

वहां से वह ढुन्डीराज में पहुंचा और एक मकान में घुसता हुआ देखा गया। पश्चात वह गायघाट नं० २० के सामने सन्देहात्मक अवस्था में पकड़ा गया।'

यह चालान पढ़ इन्सपेक्टर को प्रायः विश्वास हो गया कि यह युवक पचास हजार वाली चिट्ठी से सम्बन्ध रखता है। इस पर उसने पूछा, "तुम सेठ साहब को जानते हो?"

"हां, भली भांति।"

"उनसे अन्तिम बार कब मिले थे?"

"कल दोपहर को।"

"उन्होंने तुम्हें किसी चिट्ठी की बावत बताया था?"

"हां।" मधुसूदन को अब प्रतीत हुआ कि मुआमिला इतना सरल नहीं जितना वह समझे हुए था।

"क्या कहा था उन्होंने?"

"उन्होंने कहा था कि उनको एक चिट्ठी मिली है जिसमें उनसे पचास हजार रुपया मांगा है और धमकी दी है। परन्तु वह चिट्ठी उन्होंने पुलिस में दे दी थी।"

"तो इसके बाद तुम बनारस चले गये?"

"हां।"

"तो पण्डित जी महाराज, यह तो सिद्ध हो गया कि आपका वहां जाना इसी चिट्ठी के सम्बन्ध में था।"

यद्यपि यह बात सत्य थी, परन्तु मधुसूदन यह समझता था कि उसके कथन से यह सिद्ध नहीं हो सकता। इस कारण मधुसूदन ने बहुत शांत चित्त से कहा, "आप भूल कर रहे हैं।"

"भूल?" ज्योतिप्रसाद बहुत भद्र और सभ्य होने पर भी था तो पुलिस के महकमे में। इस प्रकार बिना हजूर, जनाब इत्यादि विशेषण के अपने आपको ग़लत सुनने का उसे अभ्यास नहीं था। उसने कुछ माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "मैं भूल नहीं कर रहा, तुम झूठ बोल रहे हो।"

"अच्छी बात है तुम सिद्ध करो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ।"

ज्योतिप्रसाद के क्रोध का पारावार नहीं रहा। अब तो बात में से 'आप' शब्द भी लोप हो गया था और उसका स्थान 'तुम' शब्द ने ले लिया था।

इन्सपैक्टर ने तमककर कहा, "तुम बहुत बदतमीज़ मालूम होते हो।"

मधुसूदन यद्यपि अपनी तरफ से साधारण ढङ्ग से बातचीत कर रहा था, तो भी उसने 'तुम' शब्द का प्रयोग केवल इस कारण किया था कि इन्सपैक्टर ऐसे ही अंटसंट बोलने न लगे। परन्तु इसका प्रभाव वही हुआ जिसकी उसे आशंका थी। वह एक बात जानता था कि प्रायः पुलिस वाले दबे हुओं को दबाते हैं। इस कारण उसने अभी भी दबना पसन्द नहीं किया। उसने कहा, "तुमने कौन भलमनसाहत का व्यवहार किया है? देखो! मैं नहीं जानता कि तुमने मुझे क्यों पकड़ रखा है? जब मैंने तुम्हें सब बातें बता दी हैं तो कहते हो कि मैंने झूठ बोला है। तुम्हारे पास जो कुछ भी प्रमाण मेरे झूठ बोलने का हो वह मैजिस्ट्रेट को बता देना। मेरे सम्मुख मेरे कथन पर टीका-टिप्पणी करने का तुम्हें अधिकार नहीं है।"

ज्योतिप्रसाद 'तुम' 'तुम' बार २ सुनकर झल्ला उठा। आखिर उससे न रहा गया। उसने कहा, "तुम मुझे 'तुम' 'तुम' कहकर क्यों पुकारते हो?"

"जैसे तुम मुझे पुकार रहे हो वैसे ही मैं भी तुम्हें पुकार रहा हूँ। आखिर मैं तुम्हें आप कहकर क्यों पुकारूं?"

"ओह! मुझे आप कहकर क्यों पुकारो? यह तुम पूछते हो न! तो लो सुनो। तुम क्रान्तिकारी हो, तुमने सेठ साहब को चिट्ठी लिखी कि वह पचास हजार तुम्हें दें। जब तुमने देखा कि मामला पुलिस के हाथ में चला गया है तो अपने साथियों को सचेत करने के लिये तुम बनारस गये और वहां पर सबको सचेत कर भगा दिया। बताओ तुमने यह सब कुछ किया है या नहीं? और यदि किया है तो तुम कितने मान के योग्य

हो यह तुम स्वयं समझ सकते हो।"

मधुसूदन ने अभी भी शांति से उत्तर दिया, "तुम आदि से अन्त तक सब मन-घड़न्त कहानी कह रहे हो। इससे तुम कितने मान के योग्य हो यह तुम स्वयं विचार कर लो।"

"मेरी इस मन-घड़न्त कहानी का प्रमाण तो तुम स्वयं अपने मुख से दोगे।"

"जब दूंगा, तब देखा जायगा। अभी तो यह सब तुम्हारी कल्पना-मात्र है।"

"तो तुम नहीं बताओगे कि तुम बनारस किस लिये गये थे ?"

"बताया तो है। अपने एक मित्र को मिलने गया था।"

"अच्छी बात है।"

इतना कह इन्सपैक्टर ने घंटी बजाई। दो कानस्टेबल वहां आ पहुँचे। उसने आज्ञा दी, "इसको ले जाओ और डण्डा-बेड़ी चढ़ा दो।"

इसमें सन्देह नहीं कि मधुसूदन एक मजबूत शरीर रखता था। इस पर भी वह इस प्रकार के व्यायाम का जो डण्डा-बेड़ी में करना पड़ता है अभ्यासी नहीं था। उसे थाने के एक कमरे में ले जाया गया। वहां पर दीवार में खूंटियां गड़ी थीं। खूंटियां फर्श से सात फुट ऊंची थीं और एक दूसरे से दो फुट के अन्तर पर थीं। मधुसूदन को दीवार के साथ खड़ा कर उसका एक हाथ एक खूंटी के साथ बांध दिया गया और दूसरा हाथ दूसरी खूंटी के साथ। इस प्रकार उसके हाथ सिर से ऊपर परन्तु एक दूसरे से दूर बंध गये थे। अब उसके पैरों में बेड़ियां डाल दी गयीं। इन बेड़ियों के बीच में एक दो फुट लम्बा डण्डा लगा हुआ था। परिणाम यह हुआ कि बेड़ियां लग जाने पर मधुसूदन अपने पैरों को दो फुट फैला कर रखने पर बाध्य हो गया। जो लोग उसको बांधने आये थे वे कोठरी का दरवाजा बन्द कर वहां से चले गये।

[ ३ ]

ज्योतिप्रसाद मिश्र का काम अभी समाप्त नहीं हुआ था। उसने

अपने महकमे के एक आदमी को बनारस कुछ खास बातें नोट करा कर भेज दिया। स्वयं सेठ कुंजबिहारी साहब के मकान की तरफ चल पड़ा।

सेठ साहब के घर पूछने और सहानुभूति करने वालों का तांता बंधा हुआ था। परन्तु उन्होंने यह किसी को नहीं बताया कि रात वह कहां रहे। सब लोग अपना २ अनुमान लगा रहे थे, और सब के अनुमान गलत थे। कोई यह नहीं समझ सका कि सेठ साहब श्यामाचरण जैसे गरीब ब्राह्मण के घर ठहरे थे।

सायंकाल इन्सपैक्टर ज्योतिप्रसाद वहां पहुंचा। ज्योतिप्रसाद ने अपना परिचय दिया और बताया कि इस मामले में वह खोज कर रहा है। इस पर सेठ साहब सब दूसरे आदमियों को वहां से बिदा कर अकेले इन्सपैक्टर के साथ रह गये और उत्सुकता से उसका मुख देखने लगे।

इन्सपैक्टर ने बड़े अभिमान से कहा, "सेठ साहब हमने इस मामले में बहुत कुछ पता पालिया है। चिट्ठी लिखने वाले का पता मिल गया है। उसके वारंट जारी होगये हैं। उसके कुछ साथी पकड़ लिये गये हैं। एक सरकारी गवाह भी बन गया है। अब आपसे कुछ बातों में सहायता चाहता हूँ। आशा है आप मेरी मदद करेंगे।"

"हां हां। इसमें भी भला कुछ संदेह है।"

"हां तो आप बताएँ कि कल दोपहर के समय आपसे कोई मिलने आया था?"

सेठ साहब को अब मधुसूदन की याद आई। दिन भर लोगों के आने-जाने में वह उसे भूल गये थे। उन्होंने उत्सुकता से कहा, "हां क्या बात है?"

"उसका नाम?"

"मधुसूदन। हमारे मन्दिर के पुजारी का लड़का। वह कल से गायब है। क्या उसकी कुछ खबर है?"

"खबर क्या, वह भी इसी पार्टी का मेम्बर है।"

"गलत है।"

"गलत नहीं, बिलकुल ठीक है। कल रात के बारह बजे के लगभग वह उसी मकान के समीप घूमता हुआ पकड़ा गया है, जहां आपको रुपया पहुंचाने के लिये लिखा गया था।"

"सच ?" सेठ साहब की हैरानी का पारावार नहीं था।

"बिलकुल सच। वह अब ज़ेर हिरासत है। आप अब बतायें कि आपने उसे बुलाया था या वह अपने आप आया था ?"

"वह अपने आप आया था, परन्तु मुझे विश्वास नहीं आता। वह तो मुझे कह रहा था कि इतनी बड़ी रकम इन लोगों को कभी नहीं देनी चाहिये। क्या जानें वे क्या करते हैं और क्या नहीं।"

"आप अपने विश्वास को रहने दीजिये। वह बहुत ही धूर्त प्रतीत होता है।"

"धूर्त ! तो आज ही वह ऐसा होगया होगा। कल तक तो वह बहुत सरल प्रतीत होता था।"

"कुछ भी हो। हां तो आपने उसे क्या २ बातें बताई थीं ?"

"मैंने उसे चिट्ठी का आशय बताया था और पश्चात् उसने ही मुझे रात को घर से बाहर रहने की राय दी थी।"

"अच्छा ! तब तो बात स्पष्ट हो गई है। चोर को कहा चोरी कर और साधु को कहा सचेत रह।"

"परन्तु उसने यह भी कहा था कि नकदी और जेवर यहां से हटा देने चाहियें।"

"सेठ साहब, यही तो मैं कह रहा हूँ कि उसको चिट्ठी की बाबत और चिट्ठी डालने वालों के प्रोग्राम की बाबत सब कुछ विदित था। आपको तो कह दिया सचेत रहो और शायद उनको भी यही कहने वह बनारस गया था।"

"इन्सपैक्टर साहब ! मुझे उस लड़के पर बहुत विश्वास है। मैं उसे बचपन से जानता हूँ। उसकी प्रत्येक बात मुझे ज्ञात है और मैं उसके बनारस जाने का कारण भी जानता हूँ।"

"आप कारण जानते हैं। कैसे?

"वह मुझसे कभी कुछ चोरी नहीं रखता। उसने मेरे सामने कभी झूठ नहीं बोला। उसका एक मित्र बनारस में है और वह उसकी बहिन को प्रेम करता है। वह उससे विवाह करना चाहता है। मुझे विश्वास है कि वह इसी काम से वहां गया होगा।"

"परन्तु जब वह यहां से गया था तो बहुत बेचैन था। स्टेशन पर पुलिस ने उसे बहुत घबराई हुई हालत में देखा। बनारस में भी उसकी बेचैनी प्रत्यक्ष थी। इसके अतिरिक्त वह अपने मित्र के घर से दूर पकड़ा गया है।"

"उसकी बेचैनी की बात तो समझ में आ सकती है। वह कल अपने पिता से लड़कर गया था। उसका पिता इस लड़की के साथ उसके विवाह के लिये राजी नहीं है। इस कारण उसका बेचैन होना तो ठीक ही था। रहा उसका गायघाट पर पहुंचना यह मैं नहीं बता सकता। सम्भव है उसका झगड़ा लड़की से भी हो गया हो या कोई और ही बात हो। इतना मैं जानता हूँ कि वह मुझसे कुछ भी मांग सकता था। उसको मैं इससे भी अधिक दे सकता था। तब उसे मुझे धमकी देने की क्या आवश्यकता थी?"

इन्सपैक्टर ने इसके उत्तर में केवल यह कहा, "कुछ भी हो मुझे विश्वास है कि वह इस मामले से घना सम्बन्ध रखता है।"

यह कह सेठ साहब की बातों पर विचार करता हुआ वह वहां से विदा हो गया।

वहां से वह अपने घर पहुंचा। वहां वह अपने पारिवारिक कामों में इतना व्यस्त हुआ कि उसे यह सर्वथा भूल ही गया कि मधुसूदन दीवार के साथ टंगा हुआ है।

रात को वह कुछ मित्रों के साथ सिनेमा देखने चला गया। वहां से वह लौटा तो थकावट से सो गया। प्रातःकाल स्नान इत्यादि से निवृत्त हो जब वह पूजा पर बैठा तो उसे मधुसूदन की याद आई। यह विचार

आते ही कि शायद रात भर वह वहां टंगा रहा होगा, वह बेचैन हो उठा। उसका ध्यान पूजा-पाठ में नहीं लगा। वह तुरन्त उठा और टांगा कर सीधा थाने में पहुंचा। वहां गया तो एक और उलझन में फंस गया। थाने में डी. आई. जी. और कलक्टर पहुँचे हुए थे। वे लोग इसी मुकद्मे के सम्बन्ध में आये थे और इन्सपैक्टर ज्योतिप्रसाद से मिलना चाहते थे। इन्सपैक्टर जल्दी में दो कानस्टेबलों को मधुसूदन की खबर लेने के लिये भेज, स्वयं डी. आई. जी. के पास जा पहुँचा। वह उनको अभी श्रीहर्ष के बयान के विषय में ही बता रहा था कि उनमें से एक कानस्टेबल, जिसे उसने मधुसूदन की खबर लेने भेजा था, सामने आ खड़ा हुआ। उसका मुख भय से सर्वथा सफेद पड़ गया था। इन्सपैक्टर उसकी यह डरावनी अवस्था देख घबरा गया। डी. आई. जी. को वहां ही छोड़ वह कानस्टेबल के पास पहुँचा। कानस्टेबल ने कान में कहा, "हजूर, मर गया है।"

इस सूचना ने इन्सपैक्टर को इतना भयभीत किया कि वह वहीं बैठ गया। कलक्टर जो इन्सपैक्टर को देख रहा था उसके मुख का रंग देख चकित रह गया। वह उठ कर कानस्टेबल से पूछने लगा, "क्या हुआ है ?"

कानस्टेबल ने बहुत भय के साथ इन्सपैक्टर की ओर देखा, परन्तु कलक्टर ने डांट कर कहा, "बताता क्यों नहीं ?"

इन्सपैक्टर ने डरते डरते कहा, "हजूर, एक मुलजिम डंडा-बेड़ी में मर गया है।" इन्सपैक्टर के माथे से पसीना टपक रहा था।

डी. आई. जी. और कलक्टर दोनों कानस्टेबल के साथ उस कमरे में गये जहां मधुसूदन फर्श पर पड़ा था। दो और कानस्टेबल वहां थे। उन्होंने डंडा-बेड़ी उतार दी थी और मधुसूदन के हाथ-पांव मल रहे थे। डी. आई. जी. ने चिन्तित स्वर में पूछा, "क्या बात है ? कुछ है उम्मीद ?"

"हजूर, मरा तो नहीं, मगर हालत खतरनाक जरूर है।"

इन्सपैक्टर को जो वहां आ पहुँचा था कलक्टर ने कहा, "जल्दी डाक्टर को टेलीफून करो।" फिर बेहोश के पास पहुँच कर उसकी नाड़ी

देखने लगा। जब वहां कुछ नहीं पाया तो छाती पर कान रखकर हृदय की खटखट सुनने लगा। यहां कुछ आशाजनक लक्षण देख कहने लगा, "इसके हाथ ऊपर-नीचे हिलाओ।" मधुसूदन को कुछ ऊँचा कर उसकी पीठ को हाथों से दबा कर वे सांस जारी करने का यत्न करने लगे। इसी प्रकार प्रयत्न जारी था जब डाक्टर हाज़िर हो गया। उसने आते ही एक इंजेक्शन लगा दिया। इस प्रकार एक घंटे के प्रयत्न के पश्चात मधुसूदन ने आंखें खोल दीं।

डी० आई० जी० यहां से छुट्टी पाकर दफ्तर में पहुँचा और वहां इन्स-पैक्टर को डांट-फटकार बताने लगा। बोला "तुम कैसे बेहूदा काम करते हो। मुलजिम को ऐसी कड़ी सजा दे घर जाकर सो रहे थे। भगवान का धन्यवाद करो कि बच गये हो, नहीं तो बात बिलकुल ही बिगड़ चुकी थी।"

"हजूर, मुआफ़ करें। कल काम बहुत ज्यादा होने से मैं भूल गया था। अब फिर ऐसी भूल नहीं होगी।"

"आखिर यह है कौन जिसकी जान ही ले डाली थी?"

अब इन्सपैक्टर ने एक तो अपनी इतनी निर्दयता को उचित सिद्ध करने के लिये और दूसरा अपने आपको बहुत कठिन काम में व्यस्त बताने के लिये मधुसूदन को बहुत ही भयानक आदमी सिद्ध करने का पूरा यत्न किया। कहने लगा, "हजूर, यह सेठ साहब के पास बैठने वालों में है। इसने क्रान्तिकारियों को शायद यह आशा दिलाई थी कि सेठ साहब यह रकम चुपचाप दे देंगे। परन्तु जब उनको पुलिस में रिपोर्ट करते देखा तो अपने साथियों को चेतावनी देने चला गया और स्वयं ही पुलिस के फंदे में फंस गया। ऐसा प्रतीत होता है कि पार्टी के दो भाग हैं। एक भाग के लोग डाका डालने चले आये थे और दूसरा भाग रुपया वसूल करने वहां बैठा रहा था। यह भी प्रतीत होता है कि एक भाग का परिचय दूसरे भाग से नहीं है और दोनों में सम्बन्ध इसी युवक के द्वारा है। डाका डालने वाले भाग में से तीन आदमी पकड़े गये हैं और उनमें से एक तो सरकारी गवाह बनने को भी तैयार हो गया है।

रुपया प्राप्त करने वाले भाग में से कोई नहीं पकड़ा गया, परन्तु दोनों में सम्बन्ध जिसके द्वारा है वह हमारे काबू में आगया है। सम्भव है कि यह दोनों विभागों का नेता हो।

डी० आई० जी० जो बहुत ध्यान से यह सब कथा सुन रहा था इतने विषम षड़यन्त्र का हाल सुन चकित रह गया। कहने लगा, "इन लोगों का संगठन बहुत दृढ़ प्रतीत होता है। इसी कारण शायद कलक्टर के बंगले की घटना का सुराग नहीं मिला।"

"हां हजूर। मधुसूदन का, यही जो बेहोश हो गया था, सेठ कुँजबिहारी से बहुत मेल-जोल है और कलक्टर के बंगले की घटना के दिन सेठ साहब का ही सब प्रबन्ध था। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस लौंडे ने सेठ साहब को उल्लू बनाकर बम चलाने वालों को बंगले में घुसने का अवसर दिया होगा। हजूर, यह अत्यन्त भयानक आदमी है और सेठ साहब का इस पर इतना विश्वास है कि वह इसको दोषी मानने के लिये तैयार ही नहीं होते।"

"परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या तुम ये सब बातें अदालत में सिद्ध कर सकोगे? यह विचार तो तुम्हारा सत्य प्रतीत होता है, परन्तु अदालत में तो विचार के साथ ठोस प्रमाण भी होने चाहियें।"

"इन्हीं प्रमाणों को पैदा करते करते ही तो फांसी गले में लटक चली थी। जहां तक डाका डालने वाले विभाग का सम्बन्ध है, सिवाय एक के शेष सब मुलजिमों का पता चल गया है। कठिनाई यह है कि इस विभाग के लोग पार्टी के दूसरे विभाग से कोई भी परिचय नहीं रखते। दोनों विभागों की कुँजी मधुसूदन के हाथ में है। या तो यह ही बक उठे या कोई और आदमी पकड़ा जाय। मैंने कुछ और बातें जानने के लिये बनारस आदमी भेजा है। कल उनका पता चल जायगा। एक युवक जो मिरजापुर के एक जमींदार का लड़का है बहुत आवश्यक व्यक्ति है। उसका नाम कमलजीत है। उसके वारन्ट जारी हो चुके हैं, परन्तु वह अभी पकड़ा नहीं गया। यह वही युवक है जिसने रामसिंह पर गोली

चलाई थी। एक और व्यक्ति है जिसको द्विवेदी के नाम से पुकारा जाता था। वह एक रहस्यमय व्यक्ति है। उसका पूरा नाम-धाम कोई भी नहीं जानता, परन्तु है वह बहुत ही समझदार और चतुर।"

"अच्छी बात। इस मुकदमे के सफल होने पर मिश्र जी आप राय बहादुर तो अवश्य बन जायेंगे और इनाम वगैरह भी तो मिलेगा ही।"

"और हां जनाब, ऐसे मुकदमे पर सरकार के कई लाख खर्च होंगे। उसमें से कुछ तो मेरे भी हिस्से में आना चाहिये।"

"हां! हां!!" यह कहता हुआ डी० आई० जी० उठकर चला गया।

[ ४ ]

मधुसूदन को होश तो आगया था, परन्तु उसके स्वास्थ्य को ऐसा धक्का पहुंचा कि डाक्टर ने साफ २ कह दिया कि अगर अब इसको कोई दण्ड दिया गया तो इसके दिल की हरकत बन्द हो जायगी। महकमा पुलिस को पक्का विश्वास हो गया था कि यह युवक ही क्रांतिकारी दल का कर्ता-धर्ता था। परन्तु वह न तो कुछ बोला और न ही श्रीहर्ष, जो सरकारी गवाह बन गया था और जिसे मुआफी मिल चुकी थी, मधुसूदन को अपने बयान में लेने को तैयार हुआ। एक दिन जब पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र ने बहुत जोर दिया तो श्रीहर्ष ने कह दिया, "देखो पंडित जी, प्रत्येक बात की एक सीमा होती है। मैंने अपनी जान बचाने के लिये अपने साथियों को पकड़वा दिया जरूर है परन्तु बेकसूर व्यक्ति को मैं अपनी जान के बदले भी नहीं फसाऊँगा।"

पं० ज्योतिप्रसाद ने कहा, "परन्तु वह बेकसूर तो है नहीं। मैंने सब प्रमाण तुम्हारे सामने रख दिये हैं। हां, इतनी बात है कि ये प्रमाण अदालत में उपस्थित नहीं किये जा सकते। अदालत को तो किसी आदमी की देखी-भाली बातों का विश्वास होसकता है। यह तो केवल एक सच्ची बात को तुमने अपने मुख से कहना है।"

"परन्तु मिश्र जी, मैं तो उसकी बाबत कुछ नहीं जानता। मैं नहीं कहूँगा। आपके पास प्रमाण हैं तो आप उनको अदालत में उपस्थित

करें। मैं जिस बात को नहीं जानता उसको कैसे कह दूं?"

"इससे तो तुम्हारा मुआफ़ी-नामा वापिस हो जायगा।"

"हो जाय। मैं एक बेकसूर को तो नहीं फसाऊंगा। मैंने पहले ही बहुत पाप किया है। उसका प्रायश्चित करते २ और पाप करूं यह मुझसे नहीं हो सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि जान बचाने की इच्छा ने भी मेरे गवाह बनने में भारी भाग लिया है, परन्तु मुख्य बात यह है कि मुझे अपनी पार्टी के कार्यक्रम के सफल होने में सन्देह हो गया है। मुझे यह जान पड़ता है कि स्वराज्य प्राप्त करने का यह मार्ग नहीं। इस कारण अपनी पार्टी के बन्द किये जाने के लिये मैंने यह यत्न किया है। यह पार्टी के साथ द्रोह, धोखेबाज़ी है, और मैं इसे समझता हूँ, परन्तु देश के हित के लिये मैंने यह धोखेबाज़ी स्वीकार कर ली है। किंतु यह मधुसूदन कौन है, कौन नहीं है, मैं नहीं जानता। आपके प्रमाण केवल आपके दिमाग़ की उपज भी हो सकते हैं। मेरे प्रायश्चित से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। मैं यह नहीं कर सकता। और यथार्थ में आपके बार बार डराने से मेरा मरने का भय भी चला गया है। आप जो चाहें करें।"

इस प्रकार की स्पष्ट बातों के बाद इन्सपेक्टर को अपने प्रस्तुत किये मुकदमे के सिद्ध करने की आशा जाती रही। यह नहीं कि उसने केवल श्रीहर्ष से ही सहायता मांगी हो। उसने मधुसूदन को भी बहुत समझाया। उसने उससे कहा, "देखो पण्डित जी! आतंकवाद से तो स्वराज्य मिल नहीं सकता और ऐसे निष्प्रयोजन और निष्फल प्रयत्न को जारी रखना अथवा जारी रहने देना देश और मनुष्यता के लिये हानिकर है। यदि तुम इस आतंकवादियों की संस्था को तोड़-फोड़ नहीं देते तो तुम देश को हानि पहुंचाते और मनुष्यता से द्रोह करते हो।"

इस पर मधुसूदन उसको कह देता, "मैं सोलह आने तुमसे सहमत हूँ, परन्तु आतंकवादियों के पकड़वाने में अशक्त हूं। मैं उनकी बाबत कुछ नहीं जानता। मैं जो कुछ जानता हूँ उससे अधिक तुम जानते हो। मैं तुमको अधिक नहीं बता सकता।"

कई प्रकार से घूम-घुमाव कर, दबा-धमका कर मधुसूदन पर प्रश्न किये जाते थे। एक बार इन्सपैक्टर ने मधुसूदन से पूछा, "वह कौन लड़की है जिससे तुम्हारा विवाह होने वाला है?"

"मैं क्या जानूं।"

"तुम्हारा विवाह क्या निश्चय नहीं हुआ था?"

"हां हुआ था परन्तु तुम्हारा इससे मतलब? विवाह तो मेरा होना था जो अब नहीं हो रहा। तुम्हें मेरे विवाह होने अथवा न होने से कुछ मतलब नहीं।"

एक और बार इन्सपैक्टर ने अकस्मात पूछा, "क्या कमल भी तुम्हारी पार्टी का सदस्य है?"

"कौन सी पार्टी का? मेरी कोई पार्टी नहीं है।"

"वही जिसने सेठ साहब को चिट्ठी लिखी थी।"

"मैं चिट्ठी लिखने वाली पार्टी को नहीं जानता।"

"तुम जानते हो और तुम्हारे विपरीत प्रमाण एकत्रित किये गये हैं।"

"तो मुझ पर मुकदमा क्यों नहीं चला देते? मैं अपने मुकदमे में सफाई उपस्थित करूंगा। अब तुमसे बात नहीं करूंगा।"

इस प्रकार इधर से भी निराश हो वह सेठ कुँजबिहारी के दरवाजे पर पहुंचा। परन्तु इस समय तक सेठ साहब भी सचेत हो गये थे। उन्हें इस बात पर तो विश्वास आता ही नहीं था कि मधुसूदन ने उनके साथ विश्वासघात किया है। परन्तु यह वह नहीं जानते थे कि वह उसी दिन बनारस क्यों गया था और फिर गायघाट पर क्यों पहुंचा। जब वह इस विषय में कुछ जानते नहीं थे तो अपने मन का अनुमान बताना उचित नहीं समझते थे। पहले दिन इन्सपैक्टर से उन्होंने कुछ ऐसी बातें कर दी थीं जो विषय से सम्बन्ध नहीं रखती थीं और जिनकी बाबत उन्होंने केवल अनुमान से काम लिया था। परन्तु जब उनको ज्ञात हुआ कि मधुसूदन एक संगीन मुकदमे में फंस गया है तो उन्होंने एक योग्य वकील से राय कर ली। वकील ने बताया कि वह कोई ऐसी बात न बतावें

जिसके सत्य होने का सोलह आने विश्वास न हो। अनुमान की बातें करने से वह मधुसूदन को और अपने आपको भी हानि पहुंचा सकते हैं। इस राय के पश्चात सेठ साहब सचेत होगये। न केवल वह स्वयं सचेत हुए, प्रत्युत उन्होंने श्यामाचरण को भी सिखा दिया कि कोई बात पुलिस वालों को न बताई जाय। परिणाम यह हुआ कि सेठ साहब से पहली भेंट के पश्चात इन्सपैक्टर ज्योतिप्रसाद कुछ भी मतलब की बात नहीं पा सके। एक दिन पं० ज्योतिप्रसाद सेठ जी से घण्टों बातें करते रहे। कहने लगे, "देखिये साहब! ये क्रांतिकारी लोग साम्यवादी हैं। साम्यवाद का अर्थ है संसार की सब विभूति एक समान सब लोगों में बांट दी जाय, न कोई बड़ा रहे, न छोटा, न धनी, न ग़रीब। सब गाजर-मूली एक ही भाव होंगे। ये लोग अनर्थ कर देंगे। ये न धर्म को मानते हैं न कर्म को। ईश्वर को ये कुछ नहीं समझते। विवाह-शादी के बन्धन को व्यर्थ बताते हैं। ये संसार के सुख में कांटे हैं। इनकी सहायता करनी सरकार, जाति, धर्म, न्याय और अपने आपके साथ अन्याय करना है। रूस में जहां साम्यवादियों का राज्य है धनी लोगों की सब सम्पत्ति छीन कर सरकार ने अपने अधिकार में कर ली है। किसी को, चाहे वह कितना भी योग्य हो, धनी बनने नहीं दिया जाता। कोई अच्छा काम करे या घटिया सबको केवल खाने, पहिरने और रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।"

सेठ साहब बड़े इतमिनान से कह देते, "पण्डित जी, मैंने ये सब बातें समाचार-पत्रों में पढ़ी हैं और ठीक भी हो सकती हैं। मुझे न तो ये पसन्द हैं न ही नापसन्द। मैं तो यह मानने वाला हूँ कि कुछ भी समाज का प्रबन्ध हो, योग्य आदमियों को श्रेष्ठ माना ही जायगा। तुम यह नहीं समझते क्योंकि तुम्हारे पास कभी धन एकत्रित हुआ ही नहीं। मुझसे पूछो। मेरी सम्पत्ति इतनी है कि मैं सौ बार भी पचास हजार देकर निर्धन नहीं हो सकता। फिर भी मेरे सम्मुख धन कोई बड़ी वस्तु नहीं है। मैंने यह धन अपने आप कमाया है। क्यों? केवल इसलिये कि इस समय संसार में धन से मान होता है। धन से प्रतिष्ठा है और संसार के सब

स्ट्रेट के सम्मुख पुलिस ने मधुसूदन के विपरीत अपना दावा उठा लिया।

सेठ साहब मधुसूदन के मुकद्मे में और 'रिमाण्ड' दिये जाने के विपरीत बहस करने के लिये इलाहाबाद के चोटी के आधी दर्जन वकील लेकर पहुँचे हुए थे। परन्तु जहां उनको यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि बिना बहस के ही मुकद्मा उठा लिया गया है वहां साथ ही उतना ही क्रोध, निराशा, पुलिस के विपरीत घृणा, और सरकार के प्रति विद्रोह उनके मन में उत्पन्न हुआ जब मधुसूदन को मैजिस्ट्रेट के कमरे से बाहर निकलते ही फिर पकड़ लिया गया। अब उसे प्रान्तीय सरकार की आज्ञा पर पकड़ा गया था और यह आज्ञा रेग्युलेशन १८१८ के अनुसार निकाली गई थी। अब बिना मुकद्मे के मधुसूदन को बन्दी रखने का हुक्म था।

---

## सातवां भाग

# परिवर्तन

कलकत्ते में चित्तरंजन सक्वेयर के नं० ४३ के मकान की सब से ऊपर की मंजिल पर पूर्णिमा और उसकी मां एक कमरे में बैठी थीं। कुछ चिट्ठियां और 'दैनिक लीडर' की कुछ प्रतियां उनके सामने पड़ी थीं। पूर्णिमा ठोड़ी को हथेली पर रखे हुए गम्भीर विचार में मग्न थी। उसकी मां भी विचार-मग्न अपनी लड़की की ओर देख रही थी।

जब से ये लोग धीरेन्द्र के कहने पर बनारस से आये थे बराबर लीडर अखबार पढ़ा करते थे। कारण यह था कि मधुसूदन का समाचार कभी कभी इसमें निकलता रहता था। इसके अतिरिक्त चिट्ठी-पत्री से भी वहां के समाचार उनको मिलते रहते थे। सेठ साहब मधुसूदन का पूरा पूरा वृत्तान्त लिखकर भेजा करते थे। उनकी चिट्ठियां डाक द्वारा न आकर उनका एक नौकर रामाधार लाया करता था।

जब से मधुसूदन की भावी स्त्री के विषय में पुलिस वालों ने पूछ-

इन दिनों नरोत्तम कई बार इलाहाबाद गया था। यह जानकर उसे बहुत प्रसन्नता हो रही थी कि मधुसूदन के विपरीत मुकदमा बनाने में पुलिस सफल नहीं हो रही। साथ ही वह यह जान बहुत चिंतित भी था कि पुलिस इस बात की खोज में है कि मधुसूदन किस मित्र से मिलने बनारस गया था और वह कौन लड़की है जिससे उसका विवाह होने वाला है। इसका अर्थ यह था कि नरोत्तम और उसकी बहन के लिये अभी कलकत्ते में ही रहना उचित था।

इस दिन लीडर पत्र में मधुसूदन के छोड़े जाने और फिर सन १८१८ के रेग्युलेशन के आधीन पकड़े जाने का समाचार छपा था। साथ ही सेठ साहब की चिट्ठी भी आई थी जिसमें पुलिस की कार्यवाही का पूरा २ ब्योरा था। यही पढ़ मां-बेटी दोनों गम्भीर विचार में डूबी हुई थीं। पूर्णिमा के आंसू उसकी आखों में छलक रहे थे। वह उन्हें रोकने का बहुत यत्न कर रही थी परन्तु वे प्रति क्षण रुकने कठिन होते जाते थे। जब वह अपने प्रयत्न में हार गयी तो उठकर पिछले कमरे में चली गयी और भीतर से दरवाजा बन्दकर रोने लगी।

पूर्णिमा की मां वहीं बैठी इस सब परिवर्तन पर विचार करती रही। नरोत्तम कहीं बाहर गया हुआ था। घर आया तो मां ने सब वृत्तांत सुनाया। वह लीडर की ताज़ा प्रति उठाकर पढ़ने लगा। पश्चात उसने सेठ साहब का पत्र भी पढ़ा। लम्बी सांस खैंचकर बोला, "यही तो कारण है कि हम इस राज्य-पद्धति का विरोध करते हैं।"

सायंकाल नरोत्तम ने पूर्णिमा के कमरे का दरवाजा खटखटाया। "दीदी! दीदी! दरवाजा खोलो।" दरवाजा खुलने पर नरोत्तम ने देखा कि रोते २ उसकी आंखें फूल उठी हैं। वह कमरे में दाखिल होते हुए बोला, "दीदी! यह क्या है? क्या इसी बूते पर पार्टी में सम्मिलित हुई थी? यह तो तुम्हें पहले ही ज्ञात होना चाहिये था कि एक न एक दिन सब कुछ स्वाहा होगा। दीदी! मुझे तुमसे इतनी कायरता की आशा नहीं थी। जिस पिता की हम सन्तान हैं उनका तुम अपमान कर रही

हो। इतना अधीर होने से क्या बनेगा ? तुम केवल अपना रोना रोती हो, यहां तो तेतीस करोड़ का यही रोना है। जो सैनिक लड़ने के लिये मैदान में निकल आया है उसे फिर अपने हानि-लाभ की गणना करना शोभा नहीं देता। जो सर्वस्व देने को उद्यत है उसे छोटे २ हानि-लाभों की चिंता करनी उचित नहीं हो सकती। कर्मवीर बनो। उठो ! अभी तो मंजिल बहुत दूर है। अभी से हताश होकर लेट जाने से काम नहीं चलेगा।"

पूर्णिमा ने बहुत धीमी आवाज़ से कहा, "भैया, तुम सत्य कहते हो। मैं भी यही सोच रही हूँ। परन्तु मुझे अब आगे मार्ग नहीं सूझ पड़ता। जिस पथ पर मैं पहले चल रही थी वह तो वीरान जंगल में जाकर लुप्त हो जाता है। वह हमें मंजिल पर लेजाने के लिये ठीक नहीं प्रतीत होता।"

"फिर वही निराशावादियों की बातें। यथार्थ में तुम्हारा मन दुर्बल पड़ गया है। इसी लिये तुम अपने काम में सन्देह कर रही हो। यह कार्य की निष्फलता नहीं, प्रत्युत कठिनाई है जो तुम्हें विचलित कर रही है।"

"नहीं, नहीं, भैया ! ऐसा नहीं। मैं कठिनाई से नहीं डरती, प्रत्युत मैं तो समझती हूँ कि दूसरा मार्ग अधिक दुस्तर है। वह लम्बा है, विकट है, संकीर्ण है और थका देने वाला है, परन्तु है निश्चित। वह अन्तिम ध्येय तक ले जायगा। हिंसा अर्थात पशु-बल का मार्ग तो वहां नहीं जाता। यह तो आधे में ही रह जाता है और इसके सम्मुख अभिमान, मोह-ममता की भीत खड़ी है जिसका पार करना प्रायः असम्भव है।"

"यथार्थ में, पूर्णिमा, आज इस बहस को जी नहीं चाहता। मैं तो आज लखनऊ जा रहा हूं। पता चला है धीरेन्द्र वहां है। मैं मधुसूदन को छुड़ाने का यत्न करना चाहता हूँ। वह हम लोगों को बचाने के लिये बनारस आया था और इस प्रयत्न में पकड़ा गया है। अब मैं चाहता हूँ कि उसको छुड़ाने के प्रयत्न में हमें अपनी जान पर खेल जाना चाहिये।"

पूर्णिमा ने केवल यह कहा, "व्यर्थ है।"

"तुम्हें तो न जाने क्या होगया है ? कोई हमारी बात पसन्द ही नहीं आती।"

"यह सब पत्तों में जल देने के समान है।"

"जो कुछ भी हो। मैं आज रात को जा रहा हूँ। इसी कारण तुम्हें मिलने के लिये आया हूँ। मेरा विचार है कि तुम आलोक फिल्म कम्पनी से पक्का कर लो। इससे एक तो मन बदल जायगा, दूसरा शायद जो योजना बनाने जा रहा हूँ उसके लिये कुछ रुपये की आवश्यकता हो। देखो! अब रोने-धोने में समय खोना मूर्खता है। कर्तव्य-परायण बन जाओ। सफलता तो निश्चय है।"

[ २ ]

पूर्णिमा के पास से विदा होने पर नरोत्तम के मन में कई बातें चक्कर लगा रही थीं। वह उन सबको पूर्णिमा को बताना नहीं चाहता था। उसी दिन कलकत्ते से रवाना होकर दूसरे दिन वह लखनऊ पहुँच गया। वहां धीरेन्द्र तो मिला नहीं परन्तु उसकी खोज में वह द्विवेदी को पागया। द्विवेदी नरोत्तम को देख बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "ईश्वर का लाख धन्यवाद है कि दो मास की खोज के पश्चात तुम्हें तो पाया है।"

"तो क्या तुम मेरी खोज में यहां बैठे थे?"

"तुम्हारी नहीं, परन्तु दादा की। अब तुमसे पता मिल ही जायगा।"

"हां, उनसे क्या काम है और यहां उनकी खोज क्यों हो रही है?"

"बात यह है कि लगभग दो मास हुए मेरी दादा से इलाहाबाद में भेंट हुई थी और उन्होंने मुझे गोमती के किनारे इसी स्थान पर मिलने के लिये कहा था। उस दिन तो मैं इलाहाबाद में रुपये की प्रतीक्षा कर रहा था। दो दिन पश्चात मैं वहां से यहां चला आया और तब से नित्य इस स्थान पर आता हूँ। आज तुम्हें देख बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ। सुनाओ कहां हैं दादा?"

"मैं भी तो उन्हीं की तलाश में यहां आया हूँ।"

"ओह! तब तो ग़जब हो गया।"

"क्यों?"

"मेरे मन में मधुसूदन को छुड़ाने की एक योजना थी और उसके

लिये दादा से परामर्श की आवश्यकता थी।"

नरोत्तम मधुसूदन का नाम द्विवेदी के मुख से सुन चकित रह गया। उसने पूछा, "मधुसूदन से तुम्हारा और दादा का क्या सम्बन्ध है?"

"मेरा? मेरा कुछ नहीं, परन्तु दादा का है।"

"क्या?"

"यह तो मैं नहीं जानता। उस दिन इलाहाबाद में दादा ने मुझे बताया था कि उन्हें मधुसूदन की बहुत चिन्ता लग रही है।"

"तो तुमने पूछा नहीं, कि क्यों?"

"नहीं, न तो समय था और न ही मैंने उचित समझा। मैंने यह समझा है कि वह कोई हमारी पार्टी में नया सदस्य है।"

"परन्तु तुम यह आयोजना कमल से क्यों नहीं करवाते?"

"वह तो मूर्ख है। शायद तुम नहीं जानते कि मेरा कमल की नई पार्टी से क्या सम्बन्ध था। पार्टी के वार्षिक अधिवेशन से पहले कमल ने मेरे सम्मुख दादा की घोर निंदा की थी और मैं उन्हें दोषी मानने लगा था। परन्तु जब अधिवेशन में पूर्णिमा ने सब भेद प्रमाण सहित खोल दिया तो मेरे विचार बदल गये। यद्यपि वोट तो मैंने कमल के पक्ष में दिया था तथापि मैं उसके लांछनों को गलत समझने लगा था। अगले दिन मैं दादा से मिला था और उनसे क्षमा मांग ली थी। मैंने ही कमल के दल-बल सहित तैयार होकर उनसे मिलने के लिये आने की सूचना दी थी। तब दादा ने मुझे कमल के साथ रहकर वहां के भेद उनको बताने के लिये आदेश दिया था। यदि दादा की इच्छा उसके सब भेद लेने की न होती तो मैं कभी भी उसकी पार्टी में सम्मिलित न होता और अपनी जान जोखम में न डालता।"

"यह सब कुछ तो मैं जानता हूँ, परन्तु कमलजीत है कहां?"

"वह भी आजकल लखनऊ में है। उसकी सब सम्पत्ति सरकार ने जब्त कर ली है। यथार्थ बात यह हुई कि जब पहले कमलजीत ने सेठ कुंजबिहारी के घर डाका डालने की आयोजना की तो मैंने उसका विरोध

किया। मेरे विरोध का कारण यह था कि हमारे पास केवल दो पिस्तौल थे और उनमें से एक बिगड़ा हुआ था। उसने मेरे विरोध की कुछ परवाह नहीं की। इस पर उसने एक मूर्खता और की। वह यह कि सेठ साहब को एक चिट्ठी लिख दी। इससे सेठ साहब सचेत हो गये और घर में से सब नकदी और जवाहिरात बाहर ले गये और स्वयं भी लापता हो गये। यह कार्यवाही उसने किसी को बताई ही नहीं। यदि वह मुझको बताता तो मैं ऐसा करने की कभी सम्मति न देता। यदि इस पर भी वह यही करता तो मैं उसके साथ वहां न जाता। यह तो मूर्खता की पराकाष्टा थी। एक तो हमारे पास हथियार न होने के बराबर थे दूसरे उसने सेठ साहब और पुलिस को सावधान कर दिया था। मेरी तो कुछ हानि हुई नहीं। कमल की पार्टी का कोई भी आदमी मेरा पूरा नाम और पता नहीं जानता। अतएव सरकारी गवाह और कोई भी दूसरा बन्दी मेरा नाम-धाम नहीं बता सकता। और तो और कमल भी नहीं बता सकता।"

नरोत्तम ने पूछा, "तुम उस घटना के पश्चात फिर कमल से कब मिले हो?"

"केवल एक बार। वह लखनऊ के कम्पनी बाग़ में। मैंने चिट्ठी की बाबत कुछ तो समाचार-पत्र में पढ़ा था और कुछ मुझे कमल ने स्वयं बताया था।"

"कमल ने क्या कहा था?"

"उसने तो केवल यही कहा था कि यदि टाइपराइटर का मालिक न बक जाता तो कुछ हर्ज़ नहीं था। मैंने उसे इस चिट्ठी के विषय में बहुत फटकारा। मेरा कहना तो यही था कि उसने मुझे बताये बिना वह चिट्ठी क्यों लिखी। वह कहता था कि वह नेता था और उसको मेरे बताये बिना कोई भी काम करने का अधिकार था। अंत में मैंने उसको यह कहा कि तुम में यह अधिकार रखने की योग्यता नहीं है, इस कारण मैं तुम्हें अपना नेता नहीं मानता। मैंने उसको चेतावनी दे दी कि भविष्य में मैं उसका परिचित नहीं रहूँगा। कहीं भी यदि वह मुझे मिले तो मेरे साथ बात करने

[ ३ ]

मैमनसिंह में नगर के बाहर एक कोने में सड़क के किनारे एक बड़े सेहन वाले मकान में लोहा ढालने और लोहे के पुर्जे बनाने का एक कारखाना था। कारखाने के मालिक मिस्टर हारानदास थे। यह महाशय कलकत्ता यूनिवर्सिटी के बी० ई० थे और इनके कारखाने में प्रायः सबके सब पढ़े-लिखे काम करते थे। कोई भी मैट्रिक से कम योग्यता का कारीगर वहां पर नहीं था। एक विशेषता इस कारखाने में और थी। यहां पर कोई नया कारीगर काम के लिये नहीं रखा जाता था और न ही पुराने कारीगरों में से, कई वर्ष से, कोई छोड़ कर गया था। कारीगरों में और मालिक में कभी झगड़ा होता नहीं देखा गया। अभिप्राय यह कि बहुत सुभीते से काम होता जाता था। काम बहुत सफ़ाई और योग्यता से किया जाता और दाम बाजार से अधिक लिया जाता। अतएव मिस्टर दास के कारखाने का नाम दिन प्रति दिन अधिक फैलता जाता था। बिना यत्न के ही काम बहुत आजाता, परन्तु हारान बाबू कारखाने को विस्तृत करने का नाम तक नहीं लेते थे। बहुत लोगों को उन्हें जवाब दे देना पड़ता कि उनका काम नहीं बन सकता। काम बनवाने वाले प्रायः कहते, "बाबू साहब, कारखाने को बड़ा क्यों नहीं कर देते? अगर पूँजी की आवश्यकता हो तो प्रबन्ध किया जा सकता है।"

हारान बाबू बहुत सन्तोष से उत्तर दिया करते, "श्रीमान, एक आदमी को खाने के लिये कितने अन्न की आवश्कता है?"

एक साहब ने हारान बाबू के सन्तोष से लाभ उठाने के लिये उनके पड़ोस में ही एक और कारखाना खोल लिया। इस कारखाने को खुले एक वर्ष के लगभग हो चुका था। इस पर भी काम के अच्छेपन में हारान बाबू के कारखाने से मुकाबिला नहीं कर सकता था। इस कारखाने के मालिक का नाम मथुरा बाबू था और इसने भी अपने कारखाने का मैनेजर एक बी०ई० नियत किया था। इस पर भी हारान बाबू के काम से घटिया काम ही निकलता था। ग्राहक काम ठीक न होने से शिकायत

करते थे और मैनेजर कारीगरों को डांटता था। कारीगर जब काम सीख कर योग्य हो जाते थे तो दूसरे स्थान पर नौकरी करने चले जाते थे। उनके स्थान पर नये कारीगर रखने पड़ते थे। कोई कारीगर डटकर काम नहीं करता था। जब काम मिलता था तो कारीगर स्वयं या उनकी स्त्रियां बीमार हो जाती थीं। जब काम कम होता था तो कारीगर दुकान में खाली बैठे रहते थे। परिणाम यह था कि कारखाने का मालिक नित्य हानि उठा रहा था। आखिर वह घबरा उठा और उसने मैनेजर को राय करने के लिये बुलाया। मैनेजर बोला, "साहब, मैं क्या कर सकता हूँ? जब नये कारीगर रखे जाते हैं तो वे काम खराब कर देते हैं, और जब हमारी हानि कर वे काम सीख जाते हैं तो तुरन्त काम छोड़ कर किसी दूसरे के यहां काम करने चले जाते हैं।"

मथुरा बाबू ने कहा, "इसका कारण जानने के लिये ही तो आपको पूछ रहा हूँ। देखो न, हारान बाबू का कारखाना पिछले पांच वर्ष से चल रहा है, और जो कारीगर पांच वर्ष हुए उनके यहां थे वे ही आज भी हैं। कभी वेतन का झगड़ा नहीं हुआ। काम ग्राहक को समय पर मिल जाता है। सब लोग उनके काम से सन्तुष्ट हैं। यह तो तुम स्वयं जानते हो कि उनका प्रत्येक कारीगर बहुत ही योग्य आदमी है।"

मैनेजर साहब बहुत परेशान थे। वह कई कारीगरों को उचित से दुगुना वेतन देने को कह चुके थे, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। जब वे इस योग्य हुए कि काम ठीक कर सकें वे काम छोड़ गये और उनके स्थान पर फिर नये अशिक्षित कारीगरों को रखना पड़ा। अब जब मालिक ने हारान बाबू का उदाहरण दिया तो वह निरुत्तर हो गये। वह बहुत धीमे स्वर में बोले, "जनाब, क्या बताऊँ? मैं तो समझता हूँ कि यह हारान बाबू पूर्व के रहने वाले हैं और आसाम में मन्त्र-सिद्धि बहुत लोग जानते हैं। यही कारण हो सकता है कि इनके पास से कोई भागता नहीं।"

मथुरा बाबू बहुत उद्विग्न हो उठे और बोले, "जादू-बादू कुछ नहीं है। तुम पढ़-लिखकर ऐसी मूर्खतापूर्ण बात करते हो। देखो, मेरी राय

है कि हारान बाबू के किसी कारीगर से मित्रता कर उसे अपनें कारखाने में खैंच लाओ। यदि तुम ऐसा कर सको तो मैं समझता हूँ कि सफलता की कुछ आशा की जा सकती है।"

यह बात मैनेजर के मन लगी। उसी दिन सायकाल जब हारान बाबू का कारखाना बन्द हुआ तो मैनेजर मोहन बाबू अपने कारखाने से निकल कारीगरों के पीछे २ हो लिये। एक जो उनमें से सर्वथा सीधा-सादा प्रतीत होता था मैनेजर उसके साथ २ चलने लगा। जब दोनों की दृष्टि मिली तो मोहन बाबू ने हाथ जोड़ नमस्कार किया और बोले, "आज क्या समय से पूर्व ही छुट्टी कर दी है?"

कारीगर ने उत्तर दिया, "नहीं तो, हम ठीक छः बजे बन्द करते हैं। हम 'ओवरटाइम' नहीं लगाते।"

इस बातचीत से उत्साहित हो मोहन बाबू ने बात जारी रखी। पूछा, "आप तो यहां के रहने वाले नहीं प्रतीत होते।"

"नहीं, मैं ढाका का रहने वाला हूँ।"

"ओह! आपका शुभ नाम क्या है?"

"निर्मल।"

"खूब! आप कब से हारान बाबू के यहां काम करते हैं?"

"पांच वर्ष से।"

"ओह! बहुत दिन से हैं। आपको क्या वेतन देते हैं?"

"वेतन? जितना खाने पहिरने को चाहिये।"

"क्या मतलब? देखिये निर्मल बाबू, मेरा कोई खास मतलब नहीं। फिर भी एक पड़ोसी होने से यदि मैं दिलचस्पी प्रकट करूं तो अचम्भा नहीं करना चाहिये। हमारे यहां तो आप जैसे कारीगर को एक सौ मासिक से कम नहीं मिलेगा। खाने-पीने का तो कुछ अर्थ नहीं। एक आदमी दस रुपये मासिक में भी निर्वाह कर सकता है और दूसरा पांच सौ में भी नहीं कर सकता।"

उस समय वे एक 'रेस्टोरां' के सम्मुख से जा रहे थे। मोहन बाबू ने

सकी ओर देखकर कहा, "आइये, जरा एक प्याला चाय पी लें।"

निर्मल ने एक-आध बार न की, परन्तु मोहन बाबू का आग्रह प्रबल नकला और दोनों भीतर चाय पीने चले गये। मोहन बाबू ने चाय, पेस्ट्री', 'सैंड-विचेज़', भाव यह कि एक बढ़िया चाय-पार्टी के लिये कह दिया। निर्मल को वह रैस्टोरेंट के एक कोने में लेगया और वहां बैठ बातचीत आरम्भ कर दी।

निर्मल ने कहा, "मैनेजर साहब, एक आदमी को खाने के लिये कितना चाहिये।"

मोहन बाबू ने खिसियाकर पूछा, "खाने को! क्या बस खाने से ही सब आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं? क्या आपका विवाह नहीं हुआ? क्या ये सब मज़ेदार चीजें (इस समय मंगवाई हुई वस्तुएं उनके सम्मुख आनी आरम्भ होगयी थीं) मनुष्य के लिये नहीं बनीं?"

निर्मल ने बहुत शान्ति से उत्तर दिया, "हां, हां! ये सब वस्तुएं भी चाहियें और मुझे इतना वेतन मिलता है कि मैं ये सब पदार्थ चाहूँ तो खा भी सकता हूँ और खिला भी।"

"तब तो ठीक है। मुझे यह सुन बहुत प्रसन्नता हुई है कि हारान बाबू अच्छा वेतन देते हैं।"

"हां और मैं उनके व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हूं।"

"परन्तु यदि आपको तरक्की मिले तब तो आप हारान बाबू को छोड़ दीजियेगा। सब कारीगर ऐसा ही करते हैं।"

"हां, परन्तु उनसे अच्छा मैनेजर, मालिक और वेतन देने वाला कहां मिलेगा?"

"क्यों? यह भी कोई बात है? उदाहरण के रूप में यदि आप चाहें तो हम ही आपको तरक्की दे सकते हैं।"

"भला सुनूं तो आप मुझे क्या वेतन देंगे?"

इस समय चाय बनकर आगयी और उक्त प्रश्न से उत्पन्न हुई घबराहट को छिपाने के लिये मोहन बाबू ने चाय बनानी आरम्भ कर

दी। कुछ देर तक वह अपने चित्त को स्थिर कर और चाय के एक-दो घूंट पीकर उत्साह बांधकर बोले, "क्या सवा सौ रुपया मासिक आपको मंजूर होगा?"

निर्मल ने चाय की एक सरूकी लगाकर कहा, "क्या आपका विचार कारखाना बन्द कर देने का है?"

"नहीं तो! आपने यह कैसे समझ लिया है?"

"वह इस प्रकार कि आप मुझे सवा सौ मासिक देंगे और यह बिना जाने कि मैं कितना काम कर सकता हूं। इससे इसके अतिरिक्त और क्या परिणाम निकाला जा सकता है कि आप शीघ्र ही कारखाना बन्द कर भाग जायेंगे। इस प्रकार आप मुनाफ़ा नहीं कमा सकते।"

"परन्तु हारान बाबू भी तो आपको इतना वेतन देकर मुनाफ़ा कमाते हैं।"

"हां! परन्तु आप नहीं जानते कि वह स्वयं कितना वेतन दुकान से लेते हैं।"

"कितना लेते हैं?"

"एक सौ रुपया मासिक।"

"एक सौ रुपया मासिक?" मोहन बाबू का मुख हैरानी से अवाक् रह गया। चाय का प्याला उनके हाथ में था। उन्होंने पीने को हाथ में उठाया हुआ था। प्याला हाथ में पकड़ा रह गया, और वह बहुत अचम्भे में निर्मल का मुख देखने लगे। निर्मल बिना किसी प्रकार का विस्मय प्रकट किये चाय पीता रहा। जब उसने देखा कि मोहन बाबू आंखें फाड़कर उसकी तरफ देख रहे हैं तो पूछने लगा, "आप ठहर क्यों गये? मेरे मुख पर क्या देख रहे हैं?"

मोहन बाबू चाय का घूंट भरकर और उसे गले के नीचे उतारकर कहने लगे, "मैं यह देख रहा हूं कि आप मुझसे हंसी तो नहीं कर रहे।"

"हंसी! नहीं। हंसी का कुछ प्रयोजन ही नहीं।"

"तो क्या आप यह सत्य कहते हैं कि हारान बाबू केवल एक सौ रुपया मासिक वेतन पाते हैं? क्या वह कारखाने के मालिक नहीं हैं?"

"हैं तो, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह कारखाने में से जितना चाहें निकाल लें। ऐसा करने से कारखाना चल नहीं सकता। उनकी इस नीति का परिणाम यह है कि हमको, जो काम करने वाले हैं, सन्तोषजनक वेतन मिलता है। हमारे कारखाने के औजार इतने बढ़िया हैं कि हमारे काम में गलती नहीं होती। इसके विपरीत आपके यहां क्या होता है? आपके मालिक हैं, वह कारखाने के चलाने में कुछ भाग नहीं लेते और फिर भी एक हजार मासिक निकाल लेते हैं। चार सौ मासिक आप पाते हैं। इसका परिणाम यह है कि आप कारीगरों को पचास-साठ से अधिक दे ही नहीं सकते। आपकी मशीनें पुरानी हैं, औज़ार घटिया हैं, कारीगर असन्तुष्ट हैं और काम अच्छा तथा समय पर नहीं दे सकते।"

मोहन बाबू अब चाय के प्याले में चीनी घोल रहे थे। वह उक्त कथन सुनकर विचार-मग्न हो गये और चीनी हिलाते ही जाते थे। निर्मल ने उनको इस अवस्था में देख उनका ध्यान आकर्षित करने के लिये कहा, "काम का वेतन होता है और रुपये का सूद। जो रुपये की एवज में वेतन लेना चाहते हैं वे कारखाने की उन्नति में बाधक होते हैं। आपके मालिक ने बीस हजार रुपया कारखाने में लगाया है। बीस हजार रुपये का सूद बैंक की दर से पचास रुपये मासिक से अधिक नहीं बनता। तो बताइये वह एक हजार रुपया क्यों निकालते हैं? क्या एक कारीगर के मुकाबिले में वह नौ सौ पचास रुपये मासिक का काम कर सकते अथवा करते हैं? यदि नहीं तो निःसन्देह वह कारखाने को लूट रहे हैं। और इससे कारखाने की उन्नति में बाधा नहीं पड़ती क्या?"

कारखानों में वेतन के विषय पर इस ढंग पर सोचना मोहन बाबू ने नहीं सीखा था। वह तो यह जानते थे कि अगर कोई धनी मनुष्य रुपया लगाकर कारखाना या दुकान खोलता है तो वह, चाहे काम कुछ भी न

करे, सबसे अधिक वेतन का अधिकारी है, और कारीगर, चाहे वह कितना बढ़िया काम भी क्यों न करता हो, धनी मालिक के बराबर वेतन नहीं पा सकता। वेतन काम के अनुसार और रुपये का सूद, यह सिद्धांत उन्होंने पहले ही दिन सुना था। यही कारण था कि उन्हें बहुत हैरानी हो रही थी।

निर्मल ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा, "मैं कारखाने में नौ घण्टे काम करता हूँ और मेरे काम की तुलना कारखाने में किसी के काम से नहीं है। मेरे काम से कारखाने को सब से अधिक आय है। इस कारण मेरा वेतन सब से अधिक है। हारान बाबू तो एक मुन्शी का काम करते हैं। कभी कभी नई बनने वाली वस्तु का डिज़ाइन भी बनाते हैं और वह एक सौ रुपये इस काम के लिये पर्याप्त समझते हैं।"

मोहन बाबू ने कुछ उत्सुकता से कहा, "और जिम्मेदारी जो इतनी भारी है।"

"जिम्मेदारी तो सबकी सांझी है। यदि मैं काम दोषयुक्त बनाऊंगा तो हारान बाबू इसमें कैसे जिम्मेदार हो सकते हैं? काम के बढ़िया होने का पुरस्कार और खराब होने का दण्ड मुझे ही होना चाहिये, न कि हारान बाबू को। कारखाने की नेकनामी का जिम्मा हम में से हर एक पर है, केवल हारान बाबू पर नहीं।"

"परन्तु रुपये के अस्त-व्यस्त हो जाने की ज़िम्मेदारी भी तो है।"

"रुपया तो हम सबका सांझा है। हम सब इसकी बहुत ध्यान से रक्षा करते हैं।"

"ओह! अब समझा कि आपका कारखाना एक 'जॉयन्ट स्टॉक कम्पनी' है।"

"नहीं, हमारा हिस्सा पूँजी में कुछ नहीं है। बात यह है कि छः वर्ष हुए, हारान बाबू के पिता उनको छः हज़ार रुपये की सम्पत्ति छोड़ गये थे। उन्होंने वह सम्पत्ति बेचकर रुपया कारखाने में लगा दिया था। जब भी कोई कारीगर यहां रक्खा जाता है तो उनको यह बता दिया जाता है कि

उसे कारखाने के लाभ में हिस्सेदार समझा जायगा। कारखाने का लाभ तथा हानि उसे उठानी होगी। प्रति वर्ष लाभ-हानि गिन ली जाती है। और लाभ, जो सदैव होता रहा है, तीन भागों में बांट दिया जाता है। एक भाग कारखाने में नई नई मशीने लगाने में प्रयोग में लाया जाता है, दूसरा भाग समय-कुसमय के काम के लिये पूंजी के रूप में रखा जाता है और तीसरा भाग कारीगरों में बांट दिया जाता है। इससे हम सब कारखाने को उन्नत करने में ज़िम्मेदारी अनुभव करते हैं।"

मोहन बाबू यह सब सुनकर चकित रह गये। इस समय चाय समाप्त हो गयी थी। दोनों रैस्टोरेंट से बाहर निकल आये। मोहन बाबू ने निर्मल से हाथ मिलाया और कहा, "अब मुझे एक दूसरे स्थान पर जाना है। इस विषय पर आपसे फिर किसी समय बात करूंगा। नमस्कार।"

निर्मल मन में मुस्कराता हुआ अपने घर की ओर चला गया।

दूसरे दिन, यह उन दिनों की बात है जब कमल धीरेन्द्र की पार्टी से लड़कर अलग होगया था और धीरेन्द्र बनारस छोड़कर चला आया था, हारान बाबू अपने कारखाने में बैठे हुए थे। कारीगर काम पर आरहे थे। निर्मल जब आया तो उसने हारान बाबू को नमस्कार कर मुस्कराते हुए कहा, "उस्ताद! यह मथुरा बाबू अब हमारे कारखाने से किसी को भगाकर लेजाने के यत्न में हैं।"

"क्यों?"

"शायद वह हमारी सफलता का कारण जानना चाहते हैं।"

इसके पश्चात निर्मल ने मोहन बाबू से भेंट और बातचीत का सब वृत्तांत सुना दिया।

हारान बाबू ने कहा, "तुमने ठीक ही उत्तर दिया है। परन्तु एक बात वह न तो जान सकते हैं और हम बता भी नहीं सकते। वह है हमारा इस कारखाने में महनत करने का एक लक्ष्य। हम सब का लक्ष्य एक है और वह लाभ अथवा वेतन से कहीं ऊंचा है। मथुरा बाबू का कारखाना खोलने का प्रयोजन है अधिक से अधिक लाभ उठाना। इसी प्रकार

उनके कारखाने में काम करने वालों में से प्रत्येक का लक्ष्य है अधिक से अधिक वेतन प्राप्त करना। हमारा ध्येय यह नहीं है।"

"हां! परन्तु ये पूंजीपति हमारी बातों को समझने की शक्ति ही नहीं रखते। अच्छा तो उस्ताद अब मुझे क्या काम करना है?"

हारान ने कहा, "तुम कुछ देर यहीं बैठो। मैं अभी तुम्हें एक मशीन का डिज़ाइन बताऊंगा। हमने वे मशीनें एक सौ के लगभग बनानी हैं। दादा बनारस से आये हुए हैं। उन्हें भी आजाने दो।"

निर्मल डटकर बैठ गया। वह समझ गया कि कारखाना खोलने का यथार्थ लक्ष्य आज फिर प्रयोग में लाया जाने वाला है। वह दत्तचित्त था और इस बात की प्रतीक्षा में था कि वह महान काम प्रकट किया जाय। कुछ ही समय में धीरेन्द्र, जो कारखाने के किसी दूसरे भाग में स्नान इत्यादि कर रहा था, वहां आ पहुँचा। हारान, धीरेन्द्र और निर्मल दोनों को बताने लगा। पेन्सिल से कागज पर चित्र खैंचकर उसने अपना आशय दोनों को बता दिया और फिर कहा, "इसे 'टाइम बम' अर्थात नियत समय पर फटने वाला बम कहते हैं। जब बम फैक्टरी में बनता है तब उसमें सब मसाला इत्यादि भर दिया जाता है, परन्तु यह फटने के लिये तैयार नहीं होता। किसी भी प्रकार की चोट या ठोकर इसके फटने में सहायक नहीं हो सकती। इस (तस्वीर पर पैंसिल से बताकर) स्थान पर एक पेच लगा रहता है। इस पेच का नीचे की घड़ी से सम्बन्ध रहता है। जितने चक्कर इस पेच को दाहिनी ओर को दोगे उतने ही घंटे पश्चात बिजली का सम्बन्ध बीच में हो जयगा और एक चिन्गारी पैदा होगी, जिससे बम फट जायगा। जब बम अन्तिम बार अपने ठिकाने के लिये विदा होगा तब यह अन्दाज लगाकर कि कितने घण्टे में यह शत्रु के हाथ में पहुंचेगा उतनी बार पेच को घुमा दिया जायगा। ठीक समय पर बम फट जायगा और उस समय यदि कोई इसको पकड़े होगा अथवा इसके समीप होगा तो वह तुरन्त मृत्यु का ग्रास बन जायगा।"

धीरेन्द्र ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "बहुत ठीक। मैं यही

चाहता हूँ। मैं इस वर्ष एक ऐसा 'एक्शन' करना चाहता हूँ जो ब्रिटिश राज्य को जड़ तक हिला देगा। एक सौ ऐसी मशीनें कितने समय में तैयार हो सकती हैं?"

"दो मास में।"

"तब तो काम तुरन्त आरम्भ करवा देना चाहिये।"

हारान ने निर्मल से पूछा, "निर्मल बाबू समझ गये, क्या और कैसे बनेगा? आज 'पैटर्न' बन जाने चाहियें और कल भट्टी जलेगी। कल से पूर्व सांचे तैयार हों और इनकी ढलाई हो जाय। परसों ये लेथ पर चढ़ाकर साफ कर दिये जावें। शेष काम धीरे धीरे होता रहेगा। आज अक्तूबर की बीस तारीख है। दिसम्बर बीस तक ये बनकर पेटियों में बन्द तैयार मिलने चाहियें।"

धीरेन्द्र ने कहा, "मैं संकेत देकर अपने आदमी भेजूँगा। संकेत ठीक मिलने पर ये उन लोगों को मिल जाने चाहियें। प्रत्येक को समझा भी दिया जाय कि कैसे इनके फटने के समय को निश्चित करना है।"

हारान के कारखाने में कारीगरों को न तो बहुत समझाने की आवश्यकता होती थी और न ही बार २ याद दिलाने की। एक बार उनको काम समझाकर समय बता दिया जाता कि कब वह काम पूर्ण मिलना चाहिये। ठीक समय वह काम बनकर मिल जाता था। काम आरम्भ होगया। धीरेन्द्र मैमनसिंह से पूरे भरोसे के साथ चला गया।

हारान के कारखाने का प्रत्येक आदमी क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य था और वह पार्टी में अपने स्थान को भली भांति समझता था। यही कारण था कि इतना बड़ा कारखाना सरलता से चलता जाता था।

दिसम्बर के महीने की बीस तारीख थी। इस दिन हारान बहुत बड़े काम में व्यस्त था। प्रातःकाल से ही धीरेन्द्र के आदमी आ रहे थे और हारान उनको एक एक कर अलग कमरे में लेजाकर बमों का रहस्य बताता था और जितने बम उनको आवश्यकता होती थी, लकड़ी के सन्दूकों में बन्द, दे देता था।

दोपहर के बारह बजे थे। एक पंजाबी नौजवान हारान के पास पहुंचा। ज्योंही उसने संकेत किया हारान उसे कमरे में ले गया और समझा दिया। उसको छः बमों की आवश्यकता थी। वह उसे दे दिये गये। जब वह पंजाबी नौजवान बाहर निकला तो हारान उसके साथ था और दोनों ने विदा होने के लिये हाथ मिलाये। ठीक उसी समय मथुरा बाबू दफ्तर में दाखिल हुए। उन्होंने उस पंजाबी नवयुवक को छः लकड़ी के डिब्बे उठाये हुए देखा। वह यह जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठे कि इन डिब्बों में क्या है, परन्तु पूछना अनुचित समझ वह मन को रोककर रह गये। पंजाबी युवक के चले जाने के पश्चात हारान मथुरा बाबू से मिला और उनको सत्कार से बैठते हुए कहा, "आइये साहब, कैसे आज आपके दर्शन हुए?"

मथुरा बाबू ने अपना सत्कार होते देख कुछ संतोष से कहा, "कल रात कमिश्नर साहब की मोटर गाड़ी का एक बेयरिंग टूट गया था। वह हमने रात अपने कारखाने में बनवाया था पर ठीक नहीं बना। कमिश्नर साहब रात यहां से चले जाने वाले हैं। क्या आप एक वैसा बनवा देंगे? मेरे कारखाने में इतनी जल्दी बनना असम्भव है।"

अभी मथुरा बाबू ने बात समाप्त ही की थी कि एक नवयुवक वहां पहुंच गया। हारान ने उसे देख मथुरा बाबू से बेयरिंग ले आने के लिये कह दिया और स्वयं उस युवक को पिछले कमरे में ले गया। उसको तीन बम लेने थे। वह बमों को चालू करने का ढंग जान और तीन लकड़ी के डिब्बे लेकर बाहर निकला तो माथुरा बाबू टूटा हुआ बेयरिंग लेकर वहां पहुंच गये। उनकी दृष्टि फिर उन डिब्बों पर गयी। अब उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने पूछ ही लिया, "हारान बाबू, इन डिब्बों में क्या बेचते हैं आप?"

"ये एक प्रकार की निटिंग मशीनें हैं।"

"[illegible] निकाली हैं आपने?"

"[illegible], कुछ दिन [illegible] हैं।"

मथुरा बाबू को और आगे पूछने का साहस नहीं हुआ। वह अपने काम को दिखाने लगे। हारान ने बेयरिंग देखते ही कह दिया, "हम ऐसा बना हुआ आपको तुरन्त दे सकते हैं।"

दूसरे कमरे में से एक बेयरिंग जो बिलकुल तैयार था हारान ले आया। मिला कर देख लिये गये। वह सर्वथा ठीक था। मथुरा बाबू उसका दाम पूछ लेकर चले गये।

परन्तु निटिंग मशीनों ने उनके दिमाग़ पर भारी प्रभाव डाला था। वह सोचते थे कि यह अवश्य कोई बहुत बढ़िया मशीन होगी जो धड़ाधड़ बिक रही है। उनके इस विस्मय को और भी पुष्टि मिली जब उसी दिन सायंकाल उन्होंने दो और लोगों को दो-दो मशीनें ले जाते देखा। वह इन मशीनों की बाबत जानने के लिये अधीर हो उठे। इस पर भी हारान के सम्मुख वह अपनी उत्सुकता प्रकट नहीं होने देना चाहते थे। इस कारण किसी अच्छे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

[ ४ ]

नरोत्तम के लखनऊ चले जाने पर यद्यपि पूर्णिमा ने कुछ आशा नहीं बांधी थी, परन्तु फिर भी उसका मन कुछ उत्साह और अभिमान से भर गया था। मनुष्य एक विचित्र प्राणी है। वह भावुकता से भरा हुआ है। शुष्क से शुष्क नैयायिक भी मन के उद्‌गारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। हमारे मन को कौन बात अच्छी लगती है और कौन बुरी, यह युक्ति का विषय नहीं है। यथार्थ बात तो यह है कि मन की पसन्द का आधार संस्कार और वातावरण हैं और युक्तियां उस बात को उचित सिद्ध करने के लिये पीछे निर्माण की जाती हैं। भारतवर्ष में एक बहिन के लिये भाई का वीरतापूर्ण काम करना सदा श्रेष्ठ समझा जाता है और बहिनें ऐसे भाइयों के लिये गौरव और अभिमान करती हैं। इस विचार-धारा को पूर्णिमा भी अनुभव करती थी। उसकी बुद्धि तो यह कहती थी कि केवल मधुसूदन के लिये सारी पार्टी को खतरे में डाल देना उचित नहीं है, परन्तु मन यह कहता था कि उसका भाई वीर है

और वह अपनी बहिन के लिये जान पर खेल जाने के लिये तैयार है। यह विचारमात्र ही बहिन के सारे शरीर और हृदय को पुलकित कर देने के लिये पर्याप्त था।

दूसरे ही दिन उसने आलोक फिल्म-कम्पनी वालों से जाकर इकरारनामा लिख दिया। इस कम्पनी वाले पूर्णिमा के 'मेरे भगवान' चित्र में काम को सराहते थे और उसको अपने एक नये चित्र के लिये आमंत्रित कर चुके थे। वहां वह एक हजार मासिक वेतन पर एक वर्ष के इकरारनामे पर नियुक्त हो गयी। यह केवल इसलिये था कि वह भी मधुसूदन के छुड़ाने में कुछ न कुछ भाग ले।

दिन पर दिन बीतते गये और नरोत्तम का कोई समाचार नहीं आया। अन्त में एक दिन समाचार-पत्र में यह छपा कि मधुसूदन को झांसी डैटिन्यूज़-कैम्प में भेज दिया गया है। इस कैम्प का कुछ वृत्तान्त भी छपा। लिखा था कि कैम्प किले के भीतर बनाया गया है। किले के एक कोने में जहां चहारदीवारी साठ फुट ऊंची है और जहां जाने के लिये तीन सुरक्षित फाटकों में से होकर जाना होता है वह कैम्प बनाया गया है। कई आठ फुट लम्बी, आठ फुट चौड़ी कोठरियां बनाई गयी हैं और ये बन्दियों के रहने के लिये हैं। प्रत्येक बन्दी को छः आने रोज मिलते हैं जिनमें से उसे अपनी प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण करनी पड़ती है। खाना किले के बाहर से आता है और उनके लिये जो आदमी है उसे मजदूरी छः आनों में से देनी पड़ती है। इस समाचार के पढ़ने से पूर्णिमा की आशा टूट गयी।

पूर्णिमा की विचार-धारा भी अब दूसरी ओर बहने लगी थी। इसमें कारण था साइमन कमीशन और देश की परिस्थिति। सन् १९१९ वाले भारतीय विधान में यह लिखा हुआ था कि उस शासन-प्रणाली के दस वर्ष तक कार्य करने के पश्चात ब्रिटिश सरकार उस पर पुनः विचार करेगी। अतएव ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १९२८ के आरम्भ में एक कमीशन भारतवर्ष में भेजा। इस कमीशन के प्रधान थे सर जॉन साइमन।

अस्तु कमीशन का नाम साइमन कमीशन पड़ गया।

भारतवासियों का विचार था कि द्वैध शासन-प्रणाली असफल रही है। वे एक ऐसा नया विधान चाहते थे जिसमें उन्हें अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त हों। वे चाहते थे कि साइमन कमीशन के कुछ सदस्य भारतवासी भी हों। इस विषय पर देश भर में आन्दोलन खड़ा किया गया। इस पर भी ब्रिटिश सरकार ने शुद्ध अंग्रेजी कमीशन भारतवर्ष में भेज दिया। लोगों ने इसका अर्थ यह समझा कि भारतवर्ष के राज्य-विधान के निर्माण-कार्य में भारतवासियों का कुछ भी अधिकार नहीं समझा गया। यह एक भारी अपमान की बात थी। गोरे शासक यह नहीं चाहते थे कि भारतीय राज्य-विधान के बनाने में भारतवासियों की सम्मति तक भी ली जाय। कमीशन-निर्माण के विषय में पार्लियामेंन्ट में विचार करते समय कुछ टोरी सदस्यों ने तो यहां तक कह दिया था कि वे भारतवर्ष के शासक हैं इस कारण शासन-विधान को सुधारना उनका कर्तव्य है। शासित लोगों को तो उनकी बात माननी ही होगी।

यह अपमानयुक्त अवस्था भारतवासियों को असह्य हो गयी। इससे देश भर में असन्तोष की आग भड़क उठी। स्थान २ पर जलसे और प्रस्ताव पास किये गये। ब्रिटिश सरकार ने इस आन्दोलन को शान्त करने के लिये भारतवर्ष के कुछ लोगों की एक सहायक समिति बना दी। यह समिति साइमन कमीशन के साथ २ भारतवर्ष में भ्रमण करने के लिये और कमीशन के प्रधान की इच्छानुसार कमीशन के काम में भाग लेने के लिये नियत की गई थी। जब लोगों को ज्ञात हुआ कि इस समिति के सदस्यों का पद यह होगा कि जब प्रधान चाहे उनको बुलाकर पास बैठा ले और जब चाहे उन्हें बाहर हो जाने के लिये कह दे, तो वे क्रोध से आगबबूला हो गये। लोग यह समझते थे कि राज्य के गूढ़ रहस्य लोगों तक न पहुँचने देने के लिये ही यह नियम बनाया गया है, और हुआ भी ऐसा ही। गवर्नरों, फौजी अफसरों, अथवा अन्य आवश्यक पदाधिकारियों के वक्तव्य लेते समय और उनसे प्रश्नोत्तर करते समय

भारतवासियों की सहकारी समिति को बाहर कर दिया गया। यद्यपि इस सहकारी समिति में कोई भी ऐसा भारतवासी नहीं था जिसे भारतवासियों का विश्वास प्राप्त हो, तो भी इनका अपमान वे न सह सके।

कमीशन भारतवर्ष में आया परन्तु भारतवासियों ने इस कमीशन को अपने माथे पर कलंक का टीका समझा। इस कमीशन का बहिष्कार किया गया। उसके स्थान २ पर पहुंचने पर काले झण्डे दिखाये गये। 'साइमन गो बैक' के नारे लगाये गये।

भारत-सरकार को यह पसन्द न था। वह समझती थी कि ब्रिटिश सरकार के ये प्रतिनिधि अति मान के योग्य हैं। इनको काले झण्डे दिखाना ब्रिटिश जाति को काले झण्डे दिखाना है अर्थात अपमान करना है। सरकार यह सहन नहीं कर सकी। परिणाम यह हुआ कि जहां २ यह कमीशन गया वहां ही पुलिस की लाठियों से फोड़े गये सिरों के रक्त से भूमि रंजित होती गई। लाहौर में जगत-प्रसिद्ध पंजाब-केसरी ला० लाजपत राय पर लाठियां चलीं। लाला जी की मृत्यु का कारण भी यही बताया जाता है। लखनऊ में सर्वमान्य नेता पं० जवाहर लाल नेहरू पर डंडे पड़े। सैंकड़ों को पकड़ लिया गया। परन्तु यह आन्दोलन दिन प्रति दिन उन्नत ही होता गया। कमीशन के मन में यह विश्वास दिलाने के लिये कि भारतवासी कमीशन का स्वागत करते हैं पुलिस हजारों रुपये व्यय कर थोड़े से देहातियों को नगरों में लाकर साइमन कमीशन के स्वागत का प्रदर्शन कराती थी। परन्तु वे लोग जब यथार्थ बात समझ जाते तो प्रायः भाग जाते थे। इस प्रकार का सत्कार भारत में सर्वत्र पाकर कमीशन विलायत लौट गया।

देश भर में असन्तोष और अपमानित होने की भावना भर रही थी। इस पर भी लोग आशा लगाये हुए थे कि साइमन कमीशन के सदस्य, जो भारतवासियों के असन्तोष को देख गये थे, अपनी रिपोर्ट में भारतवर्ष के लिये उदारतापूर्ण विधान प्रस्तुत करेंगे। यह आशा भी निश्फल हो गयी। कमीशन की रिपोर्ट छपी और वह भारतवर्ष की किसी भी पार्टी को

प्रसन्न न कर सकी। भारत के नरम दल के लोग भी इसको अन्यायपूर्ण और आशा से कम समझते थे। दूसरी ओर इंगलैंड के लोग इन छोटे-मोटे अधिकारों को, जिनके देने की साइमन कमीशन ने सिफारिश की थी, बहुत अधिक समझते थे। वे कहते थे कि हमने भारत को बल से प्राप्त किया है और हम बल से इस पर राज्य करेंगे।

कांग्रेस, जो देश में सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था है, इस समय पूर्ण स्वाधीनता की मांग पेश किये हुए थी। इस संस्था के लोगों को जब विदित हुआ कि साइमन कमीशन ने यथार्थ शक्ति का केन्द्र तो ब्रिटिश पार्लियामेंट ही रखा है तो उनके क्रोध का पारावार नहीं रहा। कांग्रेस ने एक सर्वदल-सम्मेलन द्वारा निर्मित विधान स्वीकार कर ब्रिटिश सरकार के सामने चुनौती के रूप में उपस्थित कर दिया। इसमें उन्होंने कहा कि यदि यह विधान ब्रिटिश सरकार ने एक वर्ष में न माना तो कांग्रेस देश की स्वाधीनता की घोषणा कर देगी।

इस अवसर पर भारत के वाइसराय विलायत गये और वहां की सरकार से राय कर भारतवर्ष में आकर उन्होंने गोलमेज़ परिषद् की घोषणा कर दी। परन्तु जब महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेस-नेताओं के पूछने पर वाइसराय ने बताया कि गोलमेज़ परिषद् के निर्णय ज्यों के त्यों मानने पर ब्रिटिश पार्लियामेंट बाध्य नहीं है तो परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि किसी समिति के निर्णय माने नहीं जाने तो उस समिति के बनाने में लाभ ही क्या है? इसलिये कांग्रेस ने सन् १९२९ के अन्तिम मास के अन्तिम मिनट के समाप्त होने पर पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

सन् १९३० एक विशेष विचार से प्रारम्भ किया गया। वह विचार था कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये कांग्रेस प्राणों की बाजी लगा देने का प्रण करती है।

इन्हीं दिनों लाहौर में सौंडर्स हत्या-काण्ड तथा दिल्ली में असेम्बली बम-केस के बाद कई युवकों को पकड़ा गया। पुलिस ने पंजाब में एक

क्रांतिकारी दल ढूंढ निकाला। क्रांतिकारी दल में सरकारी गवाह बनने के कारणों की खबरें धीरे २ लोगों के कानों तक पहुंच रही थीं। इस दल के कुछ सदस्यों के विषय-लोलुपता और वासना के प्रभाव में साथियों को दग़ा देने के समाचार परिचित लोगों के हृदय को कम्पा रहे थे। जन-साधारण तो उन लोगों को देवता, देश-उपकारक समझते थे, परन्तु पूर्णिमा उनमें नहीं थी। वह स्वयं एक क्रांतिकारी दल की सदस्या थी और कमल के व्यवहार का कटु अनुभव रखती थी।

यह थी देश की परिस्थिति जिसका शिक्षित भारत पर भारी प्रभाव पड़ा था। पूर्णिमा भी इस प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी।

[ ५ ]

पंजाब के क्रांतिकारी दल के बारे में पूर्णिमा को ज्ञात हुआ था द्विवेदी द्वारा।

द्विवेदी जिन दिनों लखनऊ में था तब उसकी पंजाब के एक क्रांतिकारी से भेंट हो गयी। जिस होटल में वह ठहरा हुआ था उसी में वह पंजाबी युवक भी आ पहुंचा। उसके लखनऊ में पहुंचते ही पुलिस उसके पीछे लग गयी और लखनऊ का वह होटल पुलिसवालों की निगरानी में हो गया।

भारतवर्ष की खुफिया पुलिस दूसरे देशों की पुलिस की तरह नहीं है। अन्य देशों में तो खुफिया पुलिस खुफिया ही रहती है। संश्यात्मक व्यक्ति को स्वयं अथवा उसके सम्बन्ध में आने वाले अन्य लोगों को पुलिस की उपस्थिति का भासमात्र भी नहीं होता, परन्तु यहां तो नगर भर में विख्यात हो जाता है कि अमुक व्यक्ति पर खुफिया पुलिस की कृपा-दृष्टि है। इस समय भी यही हुआ।

वह पंजाबी युवक जब होटल में असबाब लेकर पहुँचा तो दो सफेद-पोश उसके साथ ही आये। युवक अभी होटल में स्थान के लिये बातचीत कर ही रहा था कि एक सफेद-पोश मैनेजर के पास जाकर उसका परिचय दे आया। परिणाम यह हुआ कि मैनेजर सशंक हो गया और भागा २ उस युवक के पास आकर बोला, "हमारे यहां कोई कमरा खाली नहीं है।"

उस युवक ने कहा, "अभी तो आपके क्लर्क ने कहा है कि एक जगह खाली है और मेरा असबाब वहां चला भी गया है।"

मैनेजर ने फिर कहा, "नहीं साहब, आपके लिये वह जगह ठीक नहीं है।"

द्विवेदी भी वहीं खड़ा यह वार्तालाप सुन रहा था। वह मैनेजर के मुख से यह सुनकर कुछ चकित हुआ। वह यह न समझ सका कि यह भले लोगों की पोशाक में पंजाबी सिख नौजवान कौन है जिसके लिये वहां रहना मैनेजर उचित नहीं समझता। उसने बहुत ध्यान से उस नवयुवक की ओर देखा और फिर मैनेजर की ओर। मैनेजर को भयभीत देख उसने पूछा, "मैनेजर साहब, कौन सा कमरा इनके लिये ठीक नहीं?"

मैनेजर ने कहा, "कोई भी कमरा नहीं।"

"क्यों?"

"मैं इनको यहां नहीं रखना चाहता।"

द्विवेदी बहुत हैरान हुआ। उसने नये आये हुए की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा।

युवक उसके इस मूक प्रश्न को समझ गया। उसने निराशा प्रकट करते हुए कहा, "यह मैनेजर साहब का दोष नहीं, यह इन खुफिया पुलिस वालों की कृपा है।" इतना कह उसने उन सफेद-पोशों की ओर संकेत किया और कहा, "पहले एक और स्थान से मुझे इसी प्रकार भगाया गया है।"

द्विवेदी के मन में शरारत सूझी। उसने युवक को एक तरफ ले जाकर कुछ कान में कहा। वह कुछ चिन्तित भाव से बोला, "परन्तु..."

द्विवेदी ने उसे बीच में ही रोककर कहा, "परन्तु-वन्तु कुछ नहीं। इनको छकाने के लिये आप तनिक अपनी असुविधा ही स्वीकार कर लें।"

वह युवक कहने लगा, "असुविधा! मुझे किंचित भी नहीं। मैं तो आपकी ही बाबत सोच रहा था।"

द्विवेदी उस सिख युवक के हाथ में अपना हाथ डाल उसे अपने कमरे

में ले गया। वहां लेजाकर उसे अपना कमरा दिखाया। वह दो सीटों का कमरा था, परन्तु द्विवेदी ने अकेले ही लिया हुआ था।

सिख युवक ने कहा, "स्थान तो ठीक है परन्तु आप क्यों यह मुसीबत मोल ले रहे हैं?"

द्विवेदी ने मुस्कराते हुए कहा, "मुझे इसमें मज़ा आता है।"

उस पंजाबी युवक का असबाब द्विवेदी के कमरे में पहुँच गया। मैनेजर चकित था कि यह क्या हो रहा है। जब वह इसका आशय समझा तो वह द्विवेदी के कमरे में पहुंचा और कहने लगा, "साहब, यह क्या कर रहे हैं?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"इनको आप यहां ठहरने दे रहे हैं?"

"हां।"

"बिना मेरी इजाज़त के?"

"नहीं साहब, आपकी इजाज़त से। आपने मुझे यह कमरा भाड़े पर दे रखा है। यह दो के रहने के लिये है और दो का ही किराया मुझ अकेले से आठ दिन का पेशगी ले रखा है। रसीद मेरे पास है।"

"परन्तु मुझे आपत्ति तो इन पर है।"

"यह तो मेरे मित्र हैं।"

"एक क्षण में मित्र हो गये?"

"हां, इसमें अचम्भा करने की कौन बात है। पुरुष-स्त्री का एक नज़र भर में प्रेम हो जाता है और यहां तो हमने दो मिनट बातचीत भी कर ली है।"

"परन्तु विमलानन्द," द्विवेदी ने यह नाम होटल में लिखाया हुआ था, "यह युवक क्रान्तिकारी है। इसके पीछे पुलिस लगी है। पुलिस होटल में धरना देकर बैठी रहेगी और मेरे व्यापार में हानि होगी।"

"इसमें इन साहब का क्या दोष है? यह तो पुलिस का दोष है कि इनके पीछे ऐसे ढंग से लगी है जिससे आपको व्यापार में हानि होने की

सम्भावना है । आप उनसे झगड़ा क्यों नहीं करते ?"

"उनसे ? यह भला कैसे हो सकता है ? वे सरकारी कर्मचारी हैं ।"

"मैनेजर साहब, आप बहुत ही डरपोक और सीधे हैं ।" द्विवेदी का अभिप्राय था 'बुद्धू'। "भला यह तो बताओ कि उनके पास क्या इन साहब को होटल से निकलवा देने का हुक्मनामा है ? उनके पास तुम्हारे होटल में आकर बैठने का हुक्म है ? क्या तुम यह भी नहीं जानते कि कोई भी आदमी बिना किसी सरकारी अफसर के हुक्म के किसी के मकान में नहीं आसकता ? तुम उनको नीचे चले जाने के लिये क्यों नहीं कहते ?"

"मैं मजबूर हूँ ।"

"तुम मजबूर हो तो हम भी मजबूर हैं । तुम्हारे पास कोई सबूत नहीं कि यह साहब खराब चालचलन के हैं । तुम इनको यहां से निकाल नहीं सकते । जाओ थाने में रिपोर्ट लिखा दो । मैं समझ लूंगा ।"

मैनेजर बहुत हैरान था कि क्या करे । आखिर उसे एक तरकीब सूझी । वह बोला, "यदि मैं डरपोक हूँ तो आप ही बहादुरी कर इन पुलिस वालों से बातचीत क्यों नहीं कर लेते ?"

यही तो द्विवेदी चाहता था । उसने कहा, "हां, इसमें कौन बड़ी बात है । परन्तु तुम बीच में न बोलना । मैं अभी उनको यहां से भगा देता हूँ ।"

इतना कह वह मैनेजर के साथ दफ्तर में आया जहां वे दोनों सफेद-पोश इस आशा में बैठे थे कि इस होटल से भी वह पंजाबी युवक निकाल दिया जायगा और इस प्रकार वह लखनऊ से भाग जायगा । यह हलचल देख होटल के कुछ और रहने वाले भी वहां एकत्रित हो गये थे । द्विवेदी दफ्तर में पहुंचते ही एक की तरफ घूर कर बोला, "तुम कौन हो ?"

वह सफेद-पोश इस प्रश्न से चकरा गया । बोला, "मैं, मैं ? इन मैनेजर साहब को मालूम है ।"

"यह तुम्हारे अफसर हैं या नौकर । खुद बतलाओ तुम कौन हो और यहां इस मकान पर किस लिये आये हो ? यह कोई धर्मशाला नहीं है ।"

वह पुलिस वाला अपने साथी का मुख देखने लगा ।

इस शोर को सुन कुछ और लोग वहां पहुंच गये थे। सब लोग उत्सुकता से उन लोगों के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे दोनों सहायता के लिये मैनेजर की तरफ देखने लगे। परन्तु द्विवेदी ने मैनेजर को कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया। वह बोल उठा, "तुम जेब-कतरे प्रतीत होते हो। शीघ्र बताओ तुम यहां क्यों आये हो ? नहीं तो अभी धक्के दे देकर नीचे धकेल दूँगा।" इतना कहते ही द्विवेदी ने अपने कुर्ते की आस्तीन ऊपर चढ़ा लीं। पुलिस वालों ने देखा कि होटल में दूसरे रहने वाले भी लाल आंखें कर उनकी तरफ देख रहे हैं। वे डर गये और द्विवेदी से बोले, "हम खुफिया पुलिस के आदमी हैं।"

इस कथन ने द्विवेदी के हाव-भाव में कोई भेद उत्पन्न नहीं किया और दूसरे लोग तो और भी नाराज़ हुए। केवल मैनेजर डर से पसीना २ हुआ जाता था। द्विवेदी ने कहा, "तुम्हारे पास पहिचान के लिये कुछ है ?"

"है तो, मगर आपको नहीं दिखायेंगे।"

"तो मुझे तुम्हारे कहने पर विश्वास नहीं। तुम यहां से भाग जाओ, नहीं तो पीटे जाओगे। जाओ ! चले जाओ।"

द्विवेदी ने जोर से उनको धमकाया और वे दुम दबाकर होटल के नीचे उतर गये। यह तमाशा देख सब पूछने लगे कि माजरा क्या है ? द्विवेदी ने कहा, "ये लोग कहते हैं कि हम खुफिया पुलिस के हैं और एक साहब जो अभी आये हैं उनको यहां से बाहर निकाल देने के लिये कह रहे हैं। मैं कहता हूँ ये बदमाश हैं और उस मुसाफिर को लूट लेना चाहते हैं।"

मैनेजर डरा हुआ एक कोने में खड़ा था। द्विवेदी ने मैनेजर की पीठ ठोकते हुए कहा, "मैनेजर साहब, डरो मत। ये लोग कुछ नावाजिब बात कर रहे थे। इसी से डरकर भाग गये हैं। यदि इनका यहां आना और उस मुसाफिर को निकलवा देना कानून के अनुसार होता तो ये टेली-फ़ोन से तुरन्त थाने में खबर कर यहां और पुलिस वाले बुला लेते। यदि कोई और तुमसे पूछने आये तो मुझे बुला लेना। मैं सब बात ठीक

कर दूंगा।"

वहां सब टीकटाककर वह अपने कमरे में आया। यहां सिख नवयुवक कपड़े उतारकर आराम और शान्ति से बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। द्विवेदी को आते देख उसने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी तरफ देखा। द्विवेदी उसे देख हंस पड़ा और बोला, "ये आपके साथ कहां से लगे हैं?"

"साहब कुछ न पूछिये। नाक में दम कर दिया है इन्होंने।"

"तो आप इनसे छुटकारा पाना चाहते हैं?"

"कौन नहीं चाहेगा?"

"अच्छी बात है। आप लखनऊ में अपना काम कर लें, तब जाते समय मैं आपको इनको चकमा देने का उपाय बताऊंगा।"

नव आगन्तुक चुप रहा।

यह वह दिन था जिस दिन द्विवेदी की प्रतीक्षा कर नरोत्तम गोमती से निराश लौटा था। इस दिन सायंकाल से कुछ पहले वह सिख नवयुवक *लखनऊ में अपना काम कर होटल में वापिस आया। द्विवेदी आज दिन* भर कहीं नहीं गया। वह अपने कमरे में पुलिस वालों को चकमा देने के उपाय पर विचार कर रहा था। सिख नवयुवक कहने लगा, "लो साहब, मैं तो कल डाक गाड़ी से जाने का विचार रखता हूं।"

"तो आपका काम यहां समाप्त होगया?"

"काम क्या समाप्त हुआ है वह तो आरम्भ भी नहीं हो सका। खैर आप इस बात को जाने दें। मैं आपका धन्यवाद करता हूँ जो आपने मेरे साथ इतनी सहानुभूति दिखाई।"

"धन्यवाद की कुछ ऐसी जरूरत नहीं है। मुझे स्वयं ऐसी बातों में मज़ा आता है। इन कानून के ठेकेदारों को भगाने और तंग करने का मुझे अभ्यास सा होगया है। आख़िर ये आपको क्यों तंग कर रहे हैं?"

"अजी यह एक लम्बी कहानी है। आज पंजाब में तो कोई नौजवान भी पुलिस की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता।"

द्विवेदी ने कहा, "तो आपको इनकी दृष्टि से ओझल कर दूं?"

"कैसे ? यों तो मैं भी बहुत ढंग इस्तैमाल कर सकता हूँ, परन्तु मेरे पास यह असबाब है जो मैं अपने साथ ले जाना चाहता हूँ; अन्यथा मैं किसी न किसी तरह इनको धोखा दे ही जाता।"

"अच्छा आप यह बतायें कि आपके पास टिकट कहां तक का है ?"

"टिकट तो लखनऊ तक का था। अब आगे खरीदना है।"

"आपने किसी को बताया तो नहीं कि आप कलकत्ते जा रहे हैं।"

"सिवाय आपके किसी को नहीं।"

"तो ठीक है। अगर आप मेरा थोड़ा विश्वास करें तो मैं आपको यहां से निकाल सकता हूँ।"

"कैसे ?"

"आप अपना असबाब अभी मुझे दे दें। मैं उसे ले जाकर बुक करा दूंगा, और आपको उसकी रसीद दे दूंगा। रात को आप चुपचाप यहां से चले जाइयेगा। डाक गाड़ी में सवार न होकर आप प्रातःकाल पांच बजे सवारी गाड़ी से रवाना हो जाइये। वह मुग़लसराय में डाक से पन्द्रह मिनट पहले पहुँचेगी। वहां आप डाक गाड़ी में सवार हो जाइयेगा।"

"परन्तु ये लोग रात को भी होटल पर धरना देते हैं, और प्रायः होटल के फाटक की बाहर से सांकल चढ़ा देते हैं। मैंने बरेली में रात को खिसक जाने का विचार किया था। वहां जब मैं फाटक पर पहुँचा तो बाहर से सांकल लगी थी।"

"इसका इलाज मैं कर दूंगा। देखिये ! मैं अब जाऊंगा तो वापिस नहीं लौटूंगा। ठीक प्रातःकाल तीन बजे मैं बाहर से आऊंगा। आप भी ठीक उसी समय चुपचाप कमरे से निकल नीचे के फाटक को भीतर से खोल दीजियेगा। मैं बाहर से खोल दूंगा। आप बाहर से फाटक बन्द कर चले जाइयेगा। मैं भीतर से बन्दकर आकर सो रहूंगा।"

"आपकी योजना तो बहुत बढ़िया है, परन्तु आपको मेरे लिये इतना कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं पहले ही आपका कृतज्ञ हूँ।"

"मेरे कष्ट की बात छोड़िये। मैं तो ऐसी बातों में आनन्द अनुभव

करता हूँ। सब से कठिन बात तो यह है कि क्या आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं?"

इस सीधे प्रश्न से वह सिख युवक कुछ घबराया। क्योंकि यह भी एक कारण था। उसे दो बातों का संशय था। एक तो यह कि वह कोई लखनवी ठग न हो। चलते २ असबाब लेकर ही चलता बने। इसका उत्तर तो सहज था। द्विवेदी का अपना असबाब इतना था कि उसे छोड़ कर वह भाग जायेगा, इस पर विश्वास नहीं होता था। एक दूसरा सन्देह भी था। वह यह कि वह स्वयं भी कोई खुफिया पुलिस का अफसर हो और असबाब ले जाकर तलाशी ले। इसका उत्तर भी वह सोचता था। वह यह कि यदि उसने असबाब की तलाशी लेनी होती तो वह इस समय तक ले चुका होता, क्यों कि वह दिन भर अपना असबाब उसी के पास छोड़कर तो घूमता रहा था। उसके असबाब में कोई सन्देहोत्पादक वस्तु तो थी ही नहीं। यदि उसने तलाशी ली है तो अवश्य जान गया होगा कि इसमें कुछ नहीं। फिर असबाब ले जाने का क्या कारण हो सकता है? उसके मन में ये दोनों सन्देह पांव नहीं जमा सके। उसने सोच-विचार कर कहा, "तो ठीक है। यदि आप कष्ट नहीं समझते तो इन लोगों को चकमा देना मुझे बहुत लाभ पहुंचायेगा। मैं यहां से कलकत्ते, वहां से मद्रास और फिर लङ्का तक जाने का विचार रखता हूँ। यदि ये लोग मेरे पीछे लगे रहे तो मेरी स्वतन्त्रता में भारी बाधा पड़ेगी और साथ ही होटलों में रहने का भी सुभीता न हो सकेगा।"

द्विवेदी ने कहा, "खूब! आप असबाब बांध दें। यदि कोई आवश्यक वस्तु है तो निकाल लें और जेब में रख लें। आइये हम अपनी घड़ियां मिला लें। ठीक तीन बजे मैं होटल के दरवाजे के बाहर होऊँगा। आप उस समय भीतर से दरवाजा खोल दें। यदि बाहर से बन्द हुआ तो मैं उस समय तक खोल चुका होऊँगा। आप चुपचाप बाहर निकल जावें और मैं भीतर चला आऊंगा। मैं आपको एक पैकट दे दूंगा। उसमें असबाब की रसीद और कलकत्ते का टिकट होगा। आप, यदि मैं

संकेत करूं, तो बाहर से सांकल लगा दें और यदि न करूं तो मत लगावें। पश्चात आप स्टेशन पर चले जावें। वहां गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी मिलेगी। यह गाड़ी ठीक पांच बजे रवाना होकर सायंकाल साढ़े पांच बजे मुगलसराय पहुँचती है। पंजाब मेल वहां पांच बजकर चालीस मिनट पर पहुँचता है और आप गाड़ी बदल कर सुभीते से अगले दिन प्रातः कलकत्ते पहुंच जायेंगे।"

"परन्तु यदि पीछे गड़बड़ हुई तो आपको कष्ट होगा।"

"अजी नहीं, आप मेरी चिन्ता न करें। मैंने अपने विषय में भी योजना बनाई हुई है।"

"परन्तु आपसे फिर मुलाकात कब होगी ?"

"इसको भाग्य पर छोड़िये। मैं अपनी योजना की सफलता जानने का तो उत्सुक रहूंगा। यदि आपकी इच्छा हो तो कलकत्ते जाकर इस पते पर एक पोस्टकार्ड डाल दीजियेगा। मुझे मिल जायगा।" इतना कह उसने कलकत्ते के एक होटल की मार्फत विमलानन्द लिख दिया। यह पता उस नवयुवक ने अपने बटुवे में रख लिया और कलकत्ते के टिकट के दाम द्विवेदी के हाथ में दे दिये। द्विवेदी बाज़ार से एक कुली को बुला लाया और सिख युवक का सामान उठवा कर निकल गया। उसे जाते देख किसी को सन्देह नहीं हुआ।

शाम के खाने के समय होटल के क्लर्क ने उस सिख युवक से पूछा कि उनके कमरे का दूसरा बाबू क्यों नहीं आया ? सिख युवक ने उत्तर दे दिया, "वह आज बाहर किसी मित्र के यहां खायेंगे।" बात इस प्रकार समाप्त हो गयी।

द्विवेदी ने स्टेशन पर पहुंच कलकत्ते का इन्टर-क्लास टिकट खरीद, असबाब ब्रेक में रखवाने के लिये बुक करवा दिया। उस समय देहरादून कलकत्ता एक्सप्रेस जाने वाली थी। इस कारण किसी को किंचितमात्र भी सन्देह नहीं हुआ। पश्चात स्टेशन रेस्टोरेंट से खाना खाकर वेटिंग-रूम में सो गया। ठीक दो बजे रात को उठकर वह पैदल होटल को चल

पड़ा! तीन बजने में कुछ मिनट अभी थे कि उसने होटल के नीचे के दरवाजे पर आकर देखा कि एक खुफिया पुलिस का आदमी फाटक के पास पड़ा सो रहा है और उसने फाटक की सांकल बाहर से चढ़ा रखी है। वह समझता था कि यदि किसी ने होटल से बाहर जाना होगा तो दरवाजा बाहर से बन्द होने पर खटखटायेगा और वह जाग जायगा। द्विवेदी ने दबे पांव फाटक के पास आ सांकल उतार दी और फिर फाटक से दूर हट गया। उसने यह इस कारण किया था कि पता लग जाय कि वह पुलिस वाला जाग तो नहीं जाता। नहीं, वह नहीं जागा और खुर्राटे मारता रहा। द्विवेदी कुछ दूर जा समय की प्रतीक्षा करता रहा। जब तीन बजने में पांच-छः सैकण्ड रह गये तो वह बिना शोर किये फाटक के पास आ खड़ा हुआ। वह सिख युवक भी समय का पाबन्द निकला। सूई के तीन पर आते ही उसने भीतर से किवाड़ को धीरे से खोल दिया। दोनों एक दूसरे को देख अति प्रसन्न हुए। वह सिख युवक बाहर निकल आया और द्विवेदी ने लिफाफ़ा जिसमें असबाब की रसीद और एक टिकट था उसके हाथ में पकड़ा दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल द्विवेदी उठ मैनेजर से मिलने गया। बोला, "क्यों साहब, क्या हाल-चाल हैं? फिर तो किसी ने आपसे नहीं पूछा?"

"नहीं, अभी तक तो नहीं। मगर पण्डित जी इन लोगों से जितना डरकर रहा जाय उतना ही अच्छा है।"

"इसी से तो ये सिर चढ़ जाते हैं। इनका स्थान वहीं है जहां ये अब हैं। इन्हें जितना सिर चढ़ाओ उतना ही ये तङ्ग करते हैं। शैतान से डरने पर वह सिर चढ़ता है।"

"आप सैलानी आदमी हैं। हम व्यापारियों को बहुत फूंक २ कर कदम रखना पड़ता है। खैर छोड़िये इस चर्चा को। बताइये वह है कौन, जिसके लिये इतना झगड़ा किया जा रहा है?"

"अजी कोई हो। हमको इससे क्या मतलब? सुनिये, मेरा बिल आप तैयार रखें। मैं आज चला जाऊंगा। अभी दो दिन का कमरे का भाड़ा

रहता है। मैं वह आपसे वापिस नहीं लूंगा। इन दो दिन तक यदि वह पंजाबी इस कमरे में रहना चाहे तो रहने दें। उसे निकालें नहीं और यदि वह चला जाय तो आपका कमरा खाली है।"

"तो आप आज जा रहे हैं?"

"हां।"

"उसको भी साथ लेते जाते तो अच्छा होता। वह चला यहां किस लिये छोड़े जा रहे हैं।"

"आशा तो है कि वह आज चला जायगा। यदि न गया तो परसों सुबह तक तो वह यहां रह सकता है। पीछे जैसे आपका मन करे करना।"

इसके पश्चात द्विवेदी ने अपना असबाब बांधा और तैयार हो गया। उस दिन उस सिख युवक को किसी ने होटल में नहीं देखा, परन्तु किसी ने कोई उत्सुकता प्रकट नहीं की। द्विवेदी ने खाना खाया और असबाब लादकर चल दिया। वह स्टेशन पर पहुंच कलकत्ते का टिकट खरीद रवाना हो गया।

[ ६ ]

कलकत्ते में पहुंच द्विवेदी उसी होटल में पहुंचा जहां का पता उसने पंजाबी नवयुवक को दे रखा था और उसकी आशा के अनुसार वह पंजाबी युवक उसको वहां मिलने आया। द्विवेदी ने आते ही कहा, "सुनाइये साहब! मेरी योजना की सफलता कहां तक रही?"

"बहुत धन्यवाद! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ? आपसे परिचय मेरे जीवन की एक मार्के की घटना है।"

द्विवेदी ने निःसंकोच भाव से अपना वही नाम, जो उसने लखनऊ में और कलकत्ते के होटल में दिया था, बताकर कहा, "मैं मुरादाबाद के एक ब्राह्मण परिवार में से हूँ। पिताजी बहुत धन कमाकर छोड़ गये हैं और मेरा काम उस धन को खर्च करना है। आजकल मैं हिन्दुस्तान के बड़े २ नगरों में घूम घूमकर अनुभव प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूं।"

"बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। बिना संसार के अनुभव के जीवन-यात्रा आरम्भ करनी केवल व्यर्थ ही नहीं, प्रत्युत हानिकर भी है। मैं अनुभवहीन होने के कारण ही इस मुसीबत में फंसा हूँ। आप जैसे सज्जन को अपने इस जीवन की विकटतम परिस्थिति की एक बात बताने में शायद आपको लाभ ही होगा। यदि आपको सुनने में आपत्ति न हो तो मैं सुनाना चाहता हूँ। यह भी आपके अनुभवों के कोष में एक आवश्यक वृद्धि होगी। मैं, जैसा कि आप अभी तक समझ गये होंगे, पंजाब का रहने वाला हूँ और पंजाब के एक क्रान्तिकारी दल से सम्बन्ध रखता हूँ। जब मैं इस दल में सम्मिलित हुआ था तो मेरे मन में ऐसा जान पड़ता था कि इस दल का प्रत्येक सदस्य देवता, त्याग-मूर्ति और देश-प्रेम में इतना रत है कि वह इसके एक २ रज-कण पर मस्तक नवाने के लिये प्रस्तुत है। मैं समझता था कि देश-प्रेम का अर्थ है देश की आर्थिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और राजनीतिक उन्नति में संलग्न होना। देश की सभ्यता, साहित्य और कला को उन्नत करना मैं अपना कर्तव्य समझता था। मैं समझता था कि ये क्रान्तिकारी देश के लिये यह सब कुछ करना चाहते हैं। इनमें से एक ने एक सार्वजनिक सभा में व्याख्यान देते हुए ऐसा मनमोहक चित्र खैंचा था कि मैं अगले ही दिन इस दल का सदस्य होगया। परन्तु उस समय मैं अनुभवहीन था। मैं अभी कॉलेज से निकला ही था। मैंने अपने घरवालों से सम्बन्ध त्याग दिया और दिन-रात इस दल की उन्नति और इस दल के कार्यक्रम को पूरा करने में समय देने लगा।

"परन्तु इसमें जाकर मैंने जो कुछ देखा उससे मेरे मन में इन लोगों के लिये, इनके कार्यक्रम के लिये, अभिप्राय यह है कि इनकी प्रत्येक बात के लिये घृणा उत्पन्न होगयी। मैंने देखा कि पार्टी के प्रायः सब सदस्य विदेशी वस्त्र प्रयोग में लाते हैं, विदेशी साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम, सिगरेट, कलम, स्याही, भाव यह है कि सिर से पैरों तक विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। एक दिन मैंने पार्टी के नेता से कहा, 'भाई

साहब, यह खास लन्दन की बनी जुर्राबें लाने की क्या आवश्यकता थी ? कोई भी स्वदेशी जोड़ा काम दे सकता है।' वह साहब बोले, 'देशी जुर्राबें मोटी, ढीली और भारी होती हैं। यह देखिये कितनी चुस्त प्रतीत होती हैं।'

"केवल पोशाक ही नहीं, प्रत्युत विचार, भावनायें और आकांक्षायें भी उनकी विदेशी हैं। वे रामायण और प्राचीन ग्रन्थों को गप्पें मानते हैं। गीता को पागल मन की उपज ( Freak of madness ), वेदों को उन्होंने कभी देखा भी नहीं। भारतवर्ष की किसी भी वस्तु से उनका लगाव नहीं है, परन्तु इसके विपरीत इङ्गलैण्ड का इतिहास, शेक्सपियर और मिल्टन कृत ग्रन्थों, बर्क और ग्लैडस्टन के वाक्यों से उनको पूरा परिचय है। उनको वे आदर्श व्यक्ति मानते हैं। उनकी राजनीति भी विदेशों से चुराई हुई है। वे कार्लमार्क्स को गौतम और कणाद से बड़ा ज्ञानी, लेनिन और ट्राटस्की को विक्रम और अशोक से अधिक मानयुक्त समझते हैं। वे धर्म की निन्दा इसलिये करते हैं क्योंकि रूस में धर्म की निन्दा होती है।

"यदि नौबत यहीं तक रहती तो कुछ अधिक चिन्ता की बात न थी। सब से अधिक मन को ठेस पहुँचाने वाली बात तो उनमें से प्रायः सदस्यों का भ्रष्ट आचरण है। भ्रष्ट मैं अपने विचार से कहता हूँ। वे तो इसे अनुचित नहीं समझते। भले घरों की लड़कियों को फुसलाकर पार्टी में सम्मिलित कर लेना और फिर उनसे व्यभिचार करना। गर्भ रहने पर गर्भपात करना यह उनकी साधारण चरित्र की कथा है। डाके डालकर रुपया इकट्ठा करना और फिर उसे उक्त आचरणों में व्यय कर देना, ये लोग अपना अधिकार समझते हैं।

"मुझे इस दल में सम्मिलित हुए अभी छः मास ही हुए हैं और मुझे इन लोगों से झगड़ा करने पर बाध्य होना पड़ा है। मेरे देश-भक्ति के चित्त को इन लोगों के आचरण ने इतनी ठेस पहुँचाई है कि मैंने एक दिन दल की सभा में इनके भ्रष्ट आचरण की घोर निन्दा की।

परिणाम यह हुआ कि पार्टी ने मुझे गोली मारकर मार डालने का प्रस्ताव किया है। यह देख मैं लाहौर से भाग आया हूँ। पुलिस वालों को मुझ पर पहले ही सन्देह था, परन्तु न जाने कैसे वे पता पागये कि मैं लाहौर छोड़ रहा हूँ। उन्होंने मेरा पीछा आरम्भ कर दिया। लाहौर से दिल्ली, दिल्ली से बरेली और बरेली से लखनऊ पहुंचा। बरेली में मैंने पुलिस वालों से निकल जाने की कोशिश की, परन्तु असफल रहा। लखनऊ में आपकी सहायता से मैं इस बात में सफल होगया हूँ। परन्तु अपने दलवालों की धमकी अभी मेरे सिर पर है। आज प्रातः ही मैंने दल के एक सदस्य की झलक मात्र एक ट्राम में देखी है। उसकी मैंने दल के अधिवेशन में भारी निन्दा की थी क्योंकि सब से अधिक विषय-लोलुप वही है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह मेरे पीछे लगा है। मैं आज कलकत्ते से चला जाऊँगा।"

यह सब कथा सुन द्विवेदी का हृदय कांप उठा। उनकी पार्टी में भी कमल ऐसा था जो अपनी वासना से बाध्य होकर पार्टी को हानि पहुंचाने पर प्रस्तुत होगया था। उसकी नेता धीरेन्द्र को फँसाने की योजना कितनी घृणित थी। द्विवेदी मन में सोचता था कि क्या भारतवर्ष के नवयुवकों का पतन सर्व व्यापक है।

कुछ देर चुप रहकर उस पंजाबी युवक ने फिर कहना आरम्भ किया, "जब मैं यह सोचता हूँ कि दल का एक सदस्य दूसरे को पुलिस के हवाले इस कारण कर सकता है कि वह लड़की जिसको वह प्रेम करता है दूसरे से प्यार करती है, तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

इस कथन ने द्विवेदी को पागल बना दिया। वह चौंक कर कुर्सी पर से खड़ा होगया और क्रोध के आवेश में पूछने लगा, "यह सत्य है क्या?"

"हां! एक केस में जब पुलिस वाले किसी को सरकारी गवाह नहीं बना सके तो उन्होंने एक बन्दी से कहा, 'यदि तुम कुछ नहीं बताओगे तो अमुक युवक उस लड़की को पा जायगा जिसे तुम चाहते हो।' इसका

परिणाम यह हुआ कि उस बन्दी ने फरार साथी के पकड़ने का रहस्य बता दिया। इस प्रकार सब पकड़े गये।"

यह सुन द्विवेदी की आंखों में खून उतर आया। वह क्रोध के मारे कांपने लगा। बोला, "तुम झूठ तो नहीं कहते हो?"

"झूठ कहने में प्रयोजन? मैं तो स्वयं लज्जित हूँ। आप हमारी पार्टी के नेता होते तो भी कुछ बात थी। आपसे झूठ कहकर मुझे क्या प्राप्त हो सकता है? मैं तो एक परिणाम पर पहुँचा हूँ। वह यह कि कई कारणों से हमारा चरित्र बिगड़ गया है और ऐसी संस्थायें चरित्रहीन युवक नहीं चला सकते। देश में राजनीतिक कार्य करना गाड़ी को घोड़े के आगे लगाना है। सब से पूर्व हमें भारतवर्ष के नवयुवकों के चरित्र-निर्माण का काम करना चाहिये। चरित्रहीन होने से हम किसी भी काम को सफलता से नहीं चला सकते।"

द्विवेदी यह काली कहानी सुन बहुत ही लज्जित हुआ। उसका क्रोध घृणा और ग्लानि में बदल गया। एक छिपी पुकार जो उसकी आत्मा को बार बार फटकार रही थी अब नग्न रूप धारण कर उसकी आंखों के सम्मुख नाचने लगी। बहुत देर तक दोनों अपने २ विचार में डूबे रहे। आखिर द्विवेदी ने हाथ बढ़ा उस पंजाबी युवक को विदा करते हुए कहा, "मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ? कहिये तो आपके पीछे लगे आदमी को गोली मारकर मार डालूं।"

"नहीं, धन्यवाद। मैं ऐसा नहीं चाहता। वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब उनको अपनी गलती समझ में आजावेगी।"

इतना कह वह युवक अपना कार्ड द्विवेदी के हाथ में देकर चला गया। द्विवेदी लक्ष्यहीन सा होकर कलकत्ते की सड़कों पर घूमने लगा। एक बात का उसे विश्वास होगया था कि कोई भी राजनीतिक आंदोलन तब तक नहीं चल सकता जब तक युवकों में तपस्या का जीवन न पैदा किया जाय।

एक दिन वह चौरंगी से रासबिहारी एविन्यू की ओर जारहा था कि

उसको पूर्णिमा दिखाई दी। वह उसी ट्राम में स्त्रियों के लिये निश्चित सीटों में से एक सीट पर बैठी हुई थी। जब ट्राम कालीघाट पर ठहरी तो पूर्णिमा ट्राम से नीचे उतरी। वह भी उतर आया और दोनों में भेंट हो गयी। पूर्णिमा काली-दर्शन को आई थी। इस समाचार ने द्विवेदी को चकित कर दिया। वह पूछने लगा, "यह कब से ?"

पूर्णिमा ने केवल यह कहा, "जब से मुझे यह विश्वास हुआ है कि सांसारिक उन्नति से पूर्व आत्मिक उन्नति की आवश्यकता है।"

द्विवेदी ने पूर्णिमा से पूछा, "दीदी ! मैं भी आऊँ आपके साथ ?"

"जैसे इच्छा हो।"

वह उसके साथ चल पड़ा। पूछने लगा, "नरोत्तम वापिस लौटा है या नहीं ?"

"भैया कहां मिले थे आपको ?"

"लखनऊ में। वह दादा की खोज में था, परन्तु वह उन्हें पा नहीं सका। मुझे लखनऊ से आये चार दिन हुए हैं। तब तक तो दादा का कुछ पता नहीं था।"

"भैया कब तक लौटेंगे ?"

"यह तो नहीं बता सकता। मुझे अचानक वहां से चला आना पड़ा और मैं उससे मिलकर नहीं आसका। वहां से चलने के दो दिन पूर्व तक हम मिलते रहे थे, पश्चात मैं एक झमेले में फँस गया और यहां चला आया।"

इस समय वे काली के मन्दिर में पहुंच गये थे। पूर्णिमा ने फूल-बताशे खरीदे। दोनों जूता उतार मन्दिर पर चढ़ गये। पूर्णिमा फूल-बताशे चढ़ा, हाथ जोड़ बहुत देर तक आंखें मूंदे खड़ी रही। द्विवेदी उसके पीछे चुप और शान्त भाव से काली की मूर्ति को देख रहा था। कितनी विकाल मूर्ति बनी थी—रक्तवर्ण की जिह्वा बाहर लटकाये, मुण्ड-माला गले में डाले और दैत्य की छाती पर पांव रखे हुए। यह सब इतना भयानक था कि द्विवेदी के काव्यमय मन को आकर्षित नहीं

कर सका।

जब पूर्णिमा प्रदक्षिणा लेकर मन्दिर से बाहर निकली तो द्विवेदी ने पूछा, "यह आत्मिक उन्नति में कैसे सहायक हो सकती है, दीदी?"

"मैं नहीं बता सकती। जो बात मन से अनुभव करने की है उसे युक्ति से नहीं समझा सकती।"

द्विवेदी ने आंखें नीची किये हुए कहा, "ठीक है। हम प्रत्येक बात को तर्क से सिद्ध करने का यत्न करते हैं। तर्क हमारे अनुभवों का सार होता है। अनुभव तर्क से पूर्व प्राप्त होता है।"

पूर्णिमा ने केवल 'हां' में उत्तर दिया।

द्विवेदी ने फिर कहा, "परन्तु दीदी! क्या यह विस्मयजनक बात नहीं कि हम लोग, जो सर्वथा नास्तिक थे, जो प्रत्येक भारतीय विचार तथा पदार्थ को घृणा से देखते थे, इस प्रकार मूर्ति-पूजक बन जावें।"

"यह भी अनुभव का परिणाम ही है," पूर्णिमा बोली, "जब मैं क्रान्तिकारी पार्टी में थी मेरा अनुभव बहुत न्यून था। अब उससे अधिक होगया है। इसी से मेरा आचरण बदल गया है। कौन कह सकता है कि और अधिक अनुभव मुझे इस अवस्था से भी न बदल देगा। तब मैं क्या उचित समझूं और क्या अनुचित, अभी नहीं कह सकती।"

द्विवेदी बोला, "हां आप ठीक कहती हैं। मैंने पार्टी से त्याग-पत्र देने का विचार कर लिया है। मैं समझता हूं इस समय की देश की परिस्थिति में क्रान्तिकारी दल कुछ भी उपयोगी काम नहीं कर सकते।"

पूर्णिमा ने द्विवेदी के मुख पर देखा। वह आंखें नीची किये हुए चला जा रहा था। उसने अपना कथन जारी रखा, "कमल ने जो कुछ पार्टी में किया है वह मेरी आंखें खोलने वाला है। और हां! अभी एक पंजाब के क्रान्तिकारी दल के सदस्य से भेंट हो गयी थी। जो अवस्था उसने अपनी पार्टी के सदस्यों की बताई है वह हमारे कमल के कामों से कुछ कम नहीं। मैं समझता हूं यदि हमें देश के उद्धार के लिये कुछ करना है तो उसका उपाय आतंकवाद में नहीं। वह किसी और बात में

है और हमें उसे ढूंढना है।"

इसके पश्चात द्विवेदी ने कुछ संक्षेप में वह वृत्तान्त बताया जो पंजाबी युवक ने उसे बताया था। यह वृत्तान्त रोंगटे खड़े करने वाला था। पंजाब के कुछ क्रान्तिकारी दल वालों का नाम उस समय भारतवर्ष में प्रत्येक के मुख पर था। प्रत्येक उनको वीर और देश पर बलिदान होने वाला समझता था। उन्हीं के सम्बन्ध में जब ऐसी ओछी और बेहूदा बातें पूर्णिमा ने सुनी तो उसको एकाएक विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा, "यह सब वृत्तान्त रोमांचकारी है, परन्तु इसकी सत्यता में सन्देह होता है।"

"हां। परन्तु जब उस सिख नौजवान ने बातें बताईं, तो मुझे उस पर सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं हुआ था। यह हो सकता है कि उसकी बातों में कुछ अत्योक्ति हो, परन्तु सर्वथा निराधार नहीं प्रतीत होतीं। और जब मैं कमल के व्यवहार को देखता हूँ तो सन्देह करने का कोई स्थान नहीं रह जाता।"

[ ७ ]

नरोत्तम असफल लौटा तो पूर्णिमा को न तो निराशा हुई और न ही प्रसन्नता। नरोत्तम ने कहा, "दीदी, वहां जाना व्यर्थ हुआ।"

"भैया, मैंने तो पहले ही कहा था कि व्यर्थ होगा। मुझे आतंकवाद और क्रान्तिकारी दलों पर विश्वास नहीं रहा।"

"तो अब क्या किया जाय ?"

"मुझे तो सिवाय भगवत भजन के और कोई मार्ग नहीं सूझता। परमात्मा ही मार्ग बता सकता है। इस काल में, जब तक मार्ग न सूझे, मैं अपनी आत्मा को दृढ़ और उन्नत करने का यत्न करना चाहती हूँ, ताकि समय पड़ने पर कहीं यह धोखा न दे दे।"

नरोत्तम अपने बीमा कम्पनी के काम में लग गया। पूर्णिमा का काम फिल्म-कम्पनी में आरम्भ होगया था और प्रायः रात को उसे स्टूडियो में जाना होता था। दिन को वह घर पर धर्म-ग्रन्थों का, प्रायः गीता

का, पाठ करती थी और उसे समझने का यत्न करती रहती थी।

कभी कभी सेठ कुंजबिहारी का पत्र उनके नौकर के हाथ से मिला करता था और उसमें मधुसूदन के न्यूनाधिक समाचार, जो कुछ सेठ साहब को ज्ञात होते थे, मिल जाया करते थे। एक पत्र में यह समाचार था:-

"श्यामाचरण पुत्र को मिलने झांसी गया था और कल वहां से लौटा है। मधुसूदन देखने में प्रसन्न प्रतीत होता था, यद्यपि उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। वह कहता था कि उसे कुछ भी कष्ट नहीं, परन्तु श्यामाचरण को इस बात पर विश्वास नहीं आया। मेरा विचार है कि अगली बार मैं स्वयं मिलने जाऊँगा और फिर जो कुछ देखूँगा लिखूंगा।"

इसी प्रकार की सूचनायें मिला करती थीं और दिन व्यतीत होते जाते थे। धीरेन्द्र का सन्देश भी एक दिन मिला। उसमें कहा गया था, "नरोत्तम, पूर्णिमा, और द्विवेदी पार्टी से पृथक कर दिये गये हैं। इनके पीछे पुलिस लग रही है और नेता की यह आज्ञा है कि वे पार्टी के किसी सदस्य से किसी भी प्रकार का सम्पर्क न रखें। वे अपने आपको पार्टी से पृथक समझें। उनका काम पार्टी में समाप्त हो गया है। यह पार्टी के शेष सदस्यों और पार्टी के कार्य को सुरक्षित रखने के लिये किया गया है।"

पूर्णिमा को इस प्रकार पार्टी से पृथक होने में प्रसन्नता और सुख प्रतीत हुआ। वह ऐसा अनुभव करती थी कि जैसे उसके मन से भारी बोझा उतर गया है। परन्तु नरोत्तम को इसमें बहुत अस्वाभाविकता प्रतीत होती थी। उसे क्रांतिकारी आन्दोलन के अतिरिक्त और कुछ करने को नहीं सूझता था। वह ऐसा अनुभव करता था, मानों वह बिलकुल खाली है। उसे करने को कुछ काम नहीं रहा।

द्विवेदी अभी तक कलकत्ते में था। जब नरोत्तम ने उसे नेता की आज्ञा सुनाई तो उसने न तो शोक और न ही प्रसन्नता दिखाई। उसने इस सूचना को ऐसे सुना जैसे इसका उससे कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। वह अपने आपको निर्लेप समझता था।

सेठ कुंजबिहारी, जो किसी समय सरकारी अफसरों के कृपा-पात्र

समझे जाते थे, अब उनकी दृष्टि से उतर गये थे। कोई समय था जब डिप्टी कलक्टर तथा कलक्टर नगर के किसी भी सार्वजनिक तथा अर्द्ध सरकारी काम में उनके सहयोग के बिना नहीं चल सकते थे। उस समय सेठ साहब भी यह समझते थे कि वह बहुत बड़े आदमी हैं। उनके घर नित्य बड़े २ अफसरों के आने-जाने का तांता बंधा रहता था। नगर के दूसरे लोग भी उन्हें नगर का एक आवश्यक अङ्ग समझते थे। जब भी किसी को कोई आवश्यकता होती वह तुरन्त सेठ साहब के घर पहुँच जाता। सेठ साहब का दरवाजा सब के लिये खुला रहता था, और वह स्वयं प्रत्येक का यथा शक्ति काम करने के लिये तत्पर रहते थे।

परन्तु जब से उन्होंने राय साहब की पदवी का त्याग किया वह अफसरों की दृष्टि में गिर गये थे। अब वह किसी की सिफ़ारिश अफसरों के पास नहीं ले जा सकते थे। फल-स्वरूप उनके पास आने वालों की संख्या कम होने लगी। लोग मुख पर उनकी बहादुरी की प्रशंसा करते, परन्तु पीठ पर उन्हें मूर्ख बताते थे। अब मधुसूदन के पकड़े जाने के बाद उनकी उपयोगिता और भी कम होगयी। जब उन्होंने मधुसूदन के विरुद्ध मुकदमा बनाये जाने में सहायता देने से इन्कार कर दिया तो पुलिस के अफ़सर और दूसरे सरकारी कर्मचारी उनको एक भयानक जानवर समझने लगे। कोई उनसे बात करना भी पसन्द नहीं करता था। यदि कहीं किसी नगर के बड़े आदमी से भेंट भी हो जाती तो वह मुख फेर कर चला जाता।

हां, एक बात अब भी थी। वह था उनका अतुल धन। इस धन के ग्राहक उनके पास अब भी आते-जाते थे। सत्य तो यह है कि उनकी संख्या अब बढ़ गयी थी। सरकारी कामों के लिये चन्दा लेने तो उनसे आते ही थे, साथ ही अब सार्वजनिक संस्थाओं के लोग भी आने लगे। आर्य-समाज, कांग्रेस, हिन्दू-सभा इत्यादि के लोग भी चन्दे के लिये उनके पास पहुंचने लगे। सेठ साहब अपने उदार भाव के कारण सबको कुछ न कुछ देते ही रहते थे। परन्तु इस विषय में भी उनको धोखा ही

दिया जाता था और वह सचेत होते जा रहे थे।

एक दिन इलाहाबाद-क्लब का सेक्रेटरी उनके पास कलक्टर का एक नोट लेकर आया। उसमें लिखा था, "डियर सेठ साहब, मुझे आपसे कल किसी समय अपने दफ्तर में मिल कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी। तकलीफ़ के लिये आप क्षमा करेंगे। एक अत्यावश्यक बात पर आपसे विचार करना है।"

नोट देते हुए सेक्रेटरी ने कहा, "सेठ साहब, आप भले ही पदवी छोड़ दें। फिर भी आपकी सबको आवश्यकता बनी ही रहती है।"

सेठ साहब ने कुछ उत्सुकता से पूछा, "सेक्रेटरी साहब, आप जानते हैं क्या काम है?"

"हां, मगर बताने में मज़ा नहीं आवेगा। बड़े साहब के मुख से खुद सुनियेगा तो ठीक होगा।"

"अजी साहब, बता दीजिये। तनिक कम मज़ा ही ले लेना। कौन सी बात है जिसके लिये इतना लुकाव-छुपाव किया जा रहा है?"

"कल सुबह ही तो आपने साहब से मिलने जाना है। एक रात भर के लिये धैर्य करना ही ठीक रहेगा।"

सेठ साहब ने कुछ सोचकर कहा, "परन्तु यह आपने कैसे जान लिया कि मैं अवश्य ही मिलने जारहा हूँ?"

"क्यों? तो क्या नहीं जाइयेगा?"

"यह कोई आज्ञा तो है नहीं। केवल उनका निमन्त्रण है। मैं शायद न जा सकूंगा।"

सेक्रेटरी इलाहाबाद-बार के सदस्य थे। एक प्रसिद्ध वकील थे। इनका नाम था कैलाशनाथ चक। वह सेठ साहब के इस उत्तर से घबराये। बोले, "सेठ साहब, यह नोट आज्ञा ही समझनी चाहिये। बड़े आदमियों को जब आज्ञा दी जाती है तो ऐसे ही दी जाती है। यदि यह केवल निमन्त्रण होता तो कलक्टर साहब आपको दफ्तर की बजाय घर बुलाते और वहां मुलाकात करते। दफ्तर में मिलने के लिये लिखने का

मतलब आज्ञा ही समझिये।"

सेठ साहब के माथे पर त्योरी चढ़ गयी। वह बोले, "तो इसको मैं अपना वारन्ट समझूं?"

"अजी नहीं। नहीं! यह आप कैसी बातें कर रहे हैं? भला आपके वारन्ट क्यों निकलेंगे? मेरा तो मतलब था, साहब आपको मिलना चाहते हैं।"

"परन्तु मैं उनसे मिलना नहीं चाहता।"

"ओह! यह मुझे ज्ञात नहीं था। मेरी राय तो यह है कि आप मिल लें। इसमें बहुत लोगों का भला है।"

सेठ साहब ने कुछ सोचकर कहा, "अच्छी बात है। अगर आप इस रहस्य को खोलना नहीं चाहते तो मैं मिलूँगा और अवश्य मिलूँगा। और कहिये।"

"बस। अत्यन्त धन्यवाद। मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि आपने मेरी राय मान ली है।"

इतना कह सेक्रेटरी चला गया।

दूसरे दिन सेठ साहब दोपहर के बारह बजे कलक्टर के दफ्तर में जा पहुँचे। सेठ साहब जब वहां पहुंचे तो चपरासी कहीं गया हुआ था। वह प्रतीक्षा करने के कमरे में चले गये। वहां तक लोग प्रायः बिना सूचना भेजे चले जाया करते थे। सेठ साहब एक कुर्सी पर बैठ गये। कुर्सी के आगे मेज़ पर काग़ज़ों का एक पुलिंदा रखा था। सब काग़ज एक लिफ़ाफ़े में थे और लिफ़ाफ़े पर के० एन० चक छपा था। इससे सेठ साहब समझ गये कि क्लब के सेक्रेटरी साहब से मिलने गये हैं। इतना समझते ही सेठ जी को सूझ पड़ी कि मिस्टर चक भीतर साहब को उनसे कल की भेंट का वृत्तान्त सुनाने गये हैं। उनके मन में आया कि सुनना चाहिये कि क्या बातचीत हो रही है। वह धीरे से उठे और दोनों कमरों में आने-जाने वाले दरवाज़े के पास जाकर बन्द किवाड़ के साथ कान लगाकर सुनने लगे। मिस्टर चक कह रहे थे, "हज़ूर! सेठ

साहब कहने लगे, 'तो क्या यह मेरा वारन्ट है ?"

साहब हंस पड़े और पूछा, "तो आपने क्या कहा ?"

मैंने कहा, "नहीं ! नहीं। सेठ साहब, आपके भला वारन्ट कौन निकाल सकता है ? इसके पश्चात वह कुछ सोचकर मिलने आने पर राज़ी होगये।"

साहब हंसते हुए बोले, "यह महा-मूर्ख है। इसे अपने भले-बुरे का भी ज्ञान नहीं। परन्तु क्या करूं ? मेरा काम ही ऐसा है। अकलमन्दों और मूर्खों दोनों से वास्ता पड़ता है। यह चन्दे इकट्ठे करने का काम बहुत ही बेहूदा है। कैसे २ उल्लुओं से मिलना पड़ता है। भगवान रुपया भी किन लोगो को देता है।"

इसके आगे सुनने की ताब सेठ साहब में नहीं रही। वह दरवाजे से पीछे हट आये और छड़ी उठा चलने को तैयार होगये, परन्तु इसी समय चपरासी वहां आ पहुंचा और सेठ साहब को देखते ही तपाक से सलाम करके बोला, "हजूर, तशरीफ़ ले आये हैं। आइये, बैठिये। साहब आपकी बाबत पूछ ही रहे थे। लीजिये मैं अभी सूचना दिये देता हूं।" इतना कह वह बिना सेठ साहब के उत्तर की प्रतीक्षा किये दफ्तर के खास कमरे में चला गया। सेठ साहब सोचने लगे कि अब बिना मिले जाना उचित नहीं। खास तौर पर अब जब इत्तला हो चुकी है। इस कारण वह रुक गये और चपरासी के बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगे। आधे ही मिनट में चपरासी बाहर आकर बोला, "हज़ूर, साहब याद कर रहे हैं।"

सेठ साहब भीतर गये तो साहब की बग़ल में एक कुर्सी पर चक साहब को बैठे पाया। वह सलाम कर खड़े होगये। कलक्टर ने सामने रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा, "आइये सेठ साहब, तबियत कैसी है ? सब परिवार के लोग तो ठीक हैं न।"

"सब भगवान की कृपा है।"

"यह तो हम अभी चक साहब से कह रहे थे कि सेठ साहब पर

भगवान की अत्यन्त कृपा है। कैसी व्यवहारिक बुद्धि दी है। आपके बिना तो इलाहाबाद का कोई काम चल ही नहीं सकता।"

इस पर चक साहब बोल उठे, "हजूर, इनका नाम तो प्रान्त भर में रोशन हो रहा है। यह मशहूर हो रहा है कि इनके द्वार पर जाकर कोई खाली हाथ नहीं लौटता। ईश्वर ने जहां धन दिया है वहां बुद्धि और हृदय की विशालता भी दी है।"

सेठ साहब केवल 'हूँ' कहकर दत्त-चित्त हो बैठे रहे। यथार्थ बात यह थी कि सेठ साहब के मन में क्रोधानल लपटें मार रही थी। वह उसकी लपटों को बाहर निकलने से रोक रहे थे। वह चाहते थे कि साहब अपना पूरा आशय पहले बता दें तो ठीक रहेगा।

साहब ने उन्हें चुपचाप बैठे देख बात आरम्भ कर दी। वह बोले, "कमिश्नर साहब पिछले सप्ताह यहां आये थे और उन्होंने यह प्रस्ताव पास किया था कि गवर्नर साहब का कोई स्मारक इलाहाबाद में बनना चाहिये। गवर्नर बहादुर अगले वर्ष अपने ओहदे का समय समाप्त कर चले जायेंगे। हमें चाहिये कि उनके जाने से पूर्व ही उनका स्मारक बना डालें।"

सेठ साहब ने न हां, न ना कुछ भी नहीं कहा। कलक्टर साहब एक मिनट तक सेठ साहब के कहने की प्रतीक्षा कर फिर कहने लगे, "मैंने बहुत लोगों से इस विषय में बातचीत की है और अन्त में हम लोग इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इलाहाबाद में एक लेडीज़ हौसपिटल खोल दिया जाय। यह एक ऐसी वस्तु होगी जिसमें जनता के किसी भाग को भी दान देने में संकोच नहीं होगा। अभी २ मैं पंडित जी के घर से आरहा हूँ। उन्होंने भी इस काम के लिये चन्दा देना स्वीकार कर लिया है। वह सरकार के विरुद्ध हैं, परन्तु ऐसे भले कामों का विरोध नहीं कर सकते। अब इलाहाबाद में तो बिना आपकी सहायता के कोई काम नहीं हो सकता, इसी कारण आपको बुलाया है। हमने इस काम के लिये एक कमेटी भी बना दी है। इस कमेटी का नाम 'लार्ड'....'स्मारक-कमेटी

में हज़ारों मरीज़ हर रोज़ क्यों जाते ?"

"अगर नगर में एक ही कुँआ रहने दिया जाय और दूसरे सब बन्द कर दिये जावें तो सब लोग वहीं से पानी पियेंगे चाहे उस कुँए का पानी खारी हो या मीठा।"

"परन्तु हमने तो दूसरे कुंए बन्द नहीं किये। जिसकी इच्छा हो दूसरे ढंग का अस्पताल खोल सकता है।"

"बहुत अच्छी बात है। तो ऐसा करो। लाट साहब की यादगार में एक आयुर्वेदिक अस्पताल खोला जाय। उसके लिये किसी से चन्दा न किया जाय। सारा का सारा रुपया अभिप्राय यह कि दस लाख रुपया मैं अकेला देता हूँ। लो लिखो।"

"परन्तु सेठ साहब, हम तुम्हारे नौकर तो हैं नहीं कि ऐसे-वैसे कामों के लिये मग़ज़पच्ची करते रहें।"

"वाह साहब, लाट साहब की यादगार ऐसा-वैसा काम है।"

"देशी अस्पताल में लाट साहब का नाम नहीं लगता।"

"ठीक। तो हजूर, लाट साहब के नाम के लिये आप कर रहे हैं, हमारे फायदे के लिये नहीं। आख़िर आपको हम लोगों से क्या मतलब ? आपको तो अपने आका को खुश करना है और जेब हमारी कतर कर।"

अब कलक्टर को क्रोध चढ़ आया। खास कर आका वाली बात सुन कर। जो मनुष्य दिन से रात तक खुशामद करवाने का स्वभाव रखता हो उसे सत्य, और वह भी कड़ुवा, सुनाया जाय तो वह सहन नहीं कर सकता। वह झपट कर पांवों पर खड़ा होगया और बोला, "देखो सेठ ! गुस्ताख़ी अब बन्द करो। जानते हो किस से बात कर रहे हो ?"

"हां ! हां साहब। तनिक बैठ जाइये। आपे से बाहर होने से आप अपनी प्रशंसा नहीं करवा सकते। जरा बैठ जाइये। मुझे अभी आपसे कुछ और कहना है। मैं जानता हूँ कि आप इलाहाबाद के कलक्टर हैं, परन्तु मैं तो कलक्टर से मिलने नहीं आया। मुझे तो मिस्टर लतीफ़ अहमद ने बुलाया था और मैं उन्हीं से मिलने आया हूँ। यदि कलक्टर साहब

बुलाते तो अदालत के कमरे में हाज़िर होता और वहां दूसरी बात बताता। आपके साथ तो मैंने सीधी सी बात की है। आख़िर आप लाट साहब के नाम की ख़ातिर ही तो हमको चन्दा देने को कहते हैं न। बताइये गवर्नर बहादुर ने मुझ पर या मेरे इष्ट मित्रों पर कौन मेहरबानी की है कि मैं उनकी यादगार को ताज़ा रखूँ? आपकी सिफारिश पर गवर्नर बहादुर ने मधुसूदन को 'डेटिन्यू' बना लिया है क्यों? आपके पास उसके ख़िलाफ कोई सबूत नहीं फिर भी वह कैद है। इसी बूते पर मुझसे आप एक लाख रुपया मांगते हैं? आपका मैं निहायत मश्कूर हूँ कि आपने कमाल मेहरबानी कर मुझे गवर्नर बहादुर की यादगार कायम करने में याद किया है।"

"बस बस! आपसे हम रुपया नहीं लेंगे। आप जा सकते हैं।"

सेठ साहब उठ खड़े हुए और आदाबअर्ज़ कर वहां से चले आये।

चक्र सेठ साहब की मुँह-फट बात सुनकर बहुत भयभीत हुआ था। उसी दिन सायंकाल वह अपनी इच्छा से अथवा कलक्टर के संकेत से सेठ साहब से मिलने आया। बहुत लम्बा और भय से परेशान मुख किये हुए वह सेठ साहब से कहने लगा, "साहब, मैं आपके अहसान में दबा हुआ हूँ। एक बार आपने मेरी बहुत आड़े समय में रुपये से सहायता की थी। उस समय का अहसान मैं भूल नहीं सकता। इसी कारण मैं यह अपना धर्म समझता हूँ कि आपको आने वाली मुसीबत से सचेत कर दूं। आपने कलक्टर से तकरार कर भारी भूल की है। वह आपको बहुत हानि पहुँचा सकता है। ये मियां लोग जिस पर नाराज़ हो जाते हैं उसकी जड़ तक उखेड़ डालते हैं।"

"यहां तो जड़ है ही नहीं जिसे उखेड़ डालेंगे। हम पति-पत्नी हैं। न हमारी कोई सन्तान है और न ही हमारा कोई सम्बन्धी। हमारा कोई सरकारी नौकरी में भी नहीं। मुझे न तो ख़िताब की लालसा है और न किसी और रियायत की। ठेकेदारी थी वह भी अब छोड़ दी है।"

"आख़िर इस नाराज़गी का कारण क्या है?"

"कारण स्पष्ट है। एक समय था जब मैं ठेकेदार था और सब प्रकार के अधर्म करता था। जो कमाता था उसमें से अफ़सरों की जेबें भरता था। डालियां लगवाता था और दिन-रात अफ़सरों की चापलूसी में व्यतीत करता था। यह सब इसलिये कि मैं ख़िताब पा जाऊं या बेईमानी से कमाया धन पचा सकूं। उस समय ये लोग मेरा मान करते थे। परन्तु अब मैंने ठेकेदारी ही छोड़ दी है। मैं किसी को रिश्वत नहीं देता। मैं चापलूसी नहीं करता। अब मुझे मूर्ख समझा जाने लगा है। मेरी रक्षा करने के लिये मुझे न तो पुलिस की सहायता मिल सकती है और न पिस्तौल। घर में मेरे डाका डाला किसी ने और पकड़ लिया हमारे पुरोहित के लड़के को। जब उसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिला तो बिना मुकदमे के ही उसे 'डैटिन्यू' बना लिया है।"

चक ने बहुत शांति से कहा, "परन्तु साहब, यह आपकी निजी बातें हैं। इनका सार्वजनिक बातों से कोई सम्बन्ध नहीं। एक ऐसे अस्पताल के लिये जिसको पण्डित जी जैसे कांग्रेस के नेता भी सहायता देने में संकोच नहीं करते उसमें सहायता करते समय आपको अपनी निज की बातें त्याग देनी चाहियें।"

"मिस्टर चक, तुम बहुत सीधे आदमी प्रतीत होते हो। बताओ तो इलाहाबाद के कमिश्नर को ही क्यों इतनी अधिक आवश्यकता अनुभव हुई है कि लाट साहब का स्मारक बनाया जाय? प्रान्त के दूसरे कमिश्नरों को भला यह बात क्यों नहीं सूझी? इसमें भी निजी स्वार्थ छिपा है। हमारे कमिश्नर महोदय बहुत जल्दी २ और कई लोगों के अधिकारों को पद-दलित करते हुए इस पदवी पर पहुँचे हैं और यह सब गवर्नर बहादुर की कृपा से। अब यह स्मारक बनवा कर अपना अहसान उतारना चाहते हैं। बताइये सार्वजनिक बातों में निजी स्वार्थ को मैं लाया हूं या ये लोग? अब हमारे कलक्टर साहब की बात लें। एक मामूली तहसीलदार से दो वर्ष में प्रान्त के एक प्रमुख नगर की सब से बड़ी पदवी पर पहुंच गये हैं। केवल इस कारण कि वह मुसलमान हैं और हमारे गवर्नर बहादुर

को मुसलमानों की हिमायत ज्यादा पसन्द है। जब वह पंजाब में गवर्नर थे तब वहां भी उन्होंने हिन्दुओं को कुचल कर मुसलमानों को ऊंची २ पदवियों पर पहुंचाया था। उसमें कारण यह नहीं है कि मुसलमान हिन्दुओं से अधिक योग्य थे अथवा हैं। प्रत्युत अयोग्य आदमियों को ऊँची पदवी देने से उन पर अहसान होता है और वे सरकार के भक्त बन जाते हैं। यही कारण है कि आपके साहब लाट साहब के स्मारक बनाने के लिये बेचैन हो रहे हैं। क्या यह निज के लाभ से प्रेरित होकर काम करना नहीं?"

चक इन सब बातों को सत्य मान कर भी समझता था कि चन्दा देना ही चाहिये। वह कहने लगा, "चाहे कुछ हो। यह मानता हूं कि अफ़सर लोग स्वार्थ से प्रेरित होकर सब कुछ कर रहे हैं, तो भी देखने की बात यह है कि इस बात से जन-साधारण को लाभ होगा या नहीं।"

"नहीं साहब, लाभ नहीं होगा। एक तो डाक्टरी अस्पताल खोलने से लाखों रुपये वार्षिक की दवाइयां और सामान विदेश से आवेगा। दूसरा बड़े डाक्टर विलायत से आयेंगे और भारी वेतन लेंगे और सब से बड़ी बात तो यह है कि हमारी देशी चिकित्सा-विधि को, जो भारतवासियों के लिये उपयोगी है, प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।"

"तो क्या आपका अभिप्राय यह है कि बड़े २ सिविल सर्जन और लाखों रुपये कमाने वाले डाक्टर आपके रामप्रकाश वैद्य से कम योग्य हैं?"

"मिस्टर चक, यदि इसी प्रकार तुम वकालत करते हो तो तुम्हारे मुव्वकिलों के भगवान ही रक्षक हैं। क्या यहां व्यक्तियों का मुकाबिला हो रहा है? तुम्हारे सिविल सर्जन बड़े योग्य डाक्टर हो सकते हैं और कई डाक्टर लाखों पैदा भी कर सकते हैं, परन्तु इससे उनकी चिकित्सा-विधि उत्तम तथा भारतवर्ष के लिये उपयुक्त सिद्ध नहीं हो जाती। सट्टेबाज, जुआरी, चोर, दगाबाज क्या लाखों नहीं कमा लेते? तो क्या इससे उनका काम वांछनीय हो जाता है? देशी ढङ्ग से चिकित्सा करने वालों में भी कम योग्य व्यक्ति नहीं हैं। केवल प्रोत्साहन की कमी है।"

"सेठ जी, ऐसे तो हमने कहीं नहीं देखे।"

"तुम कैसे देख सकते हो? तुम्हारी आंखों पर पाश्चात्य सभ्यता का चश्मा चढ़ा है। तुम्हें तो देशी पोशाक, देशी खाना, देशी रहन-सहन, देशी बोली, देशी कला अभिप्राय यह कि कोई भी देशी वस्तु पसन्द नहीं। भला बतलाओ तो यह नकटाई क्यों पहिनते हो?"

"मेरी बात छोड़िये। क्या पण्डित जी भी आप से कम अनुभव रखते हैं?"

"भाई, पडित जी भी तो उसी मिट्टी के बने हुए हैं जिससे तुम बने हो। उनमें तुमसे एक अधिक अवगुण है। वह एक ओर तो लोगों के नेता हैं और दूसरी ओर बड़े २ सरकारी अफ़सरों को दावतें वगैरह खिला-पिलाकर उनका भी मजा लेते रहते हैं।"

"यह तो केवल शिष्टाचार है।"

सेठ साहब ने घृणा का भाव दिखाते हुए कहा, "यदि अफ़सरों से मित्रता रखनी शिष्टाचार है तो जिस काम के लिये वे नियुक्त हैं उस काम में सहायता देना उनका कर्तव्य क्यों नहीं?"

"तो क्या ये अफ़सर अपने कर्तव्य की अवहेलना करते हैं?"

"इसमें सन्देह ही क्या है? प्रत्युत यह कहना चाहिये कि ये विश्वास-घातक भी हैं। ये लोग देश का धन हज़म कर देश के लूटने में सहायक होते हैं। ये अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हैं जो इङ्गलैंड के हित के लिये स्थापित है।"

"परन्तु ऐसा करने से ही तो सरकारी नौकर अपने काम को पूरा करते हैं। वे इसी काम के लिये नौकर रखे जाते हैं और यदि वे अपने अफ़सरों को प्रसन्न न करें तो फिर वे कृतघ्न न हो जायेंगे?"

"निःसन्देह हो जायेंगे, परन्तु ऐसे आदमी की नौकरी ही क्यों करनी? जो मेरे प्रियजनों और भाइयों को लूटने आया है उसकी नौकरी करनी कैसे उचित हो सकती है?"

"तो आप महात्मा गांधी का असहयोग अच्छा समझते हैं। परन्तु

अब तो महात्मा गांधी ने भी इसको बन्द कर दिया है।"

सेठ साहब हंस पड़े और बोले, "क्या अपने विरोधियों से असहयोग करने के लिये महात्मा गांधी की आज्ञा की जरूरत है? महात्मा गांधी का असहयोग केवल नीति थी। मेरे लिये अपने विरोधियों से असहयोग धर्म है, नीति नहीं है। नीति बदल सकती है, धर्म नहीं बदलता। यह असहयोग सहयोग में बदल सकता है यदि विरोधी का विरोध भी प्रेम में बदल जाय।"

चक ऐसी बातों को समझने में अशक्त था। यथार्थ में उसने आज तक प्रत्येक मामले को अपनी स्वार्थ-पूर्ति के दृष्टि-कोण से देखा था। देश, जाति, अथवा धर्म के लाभ-हानि का दृष्टि-कोण उसके कभी विचार में भी नहीं आता था। वह एक सफल वकील था और धन कमाना उसका ध्येय था। वह न तो कभी किसी सभा-सोसायटी में गया था, न किसी मन्दिर-मेले पर। हां क्लब में वह अवश्य पहुंच जाता था और वह भी इस कारण कि वहां नगर के बड़े २ लोगों से उसकी भेंट हो जाती थी। अफ़सरों की खुशामद इस कारण करता था कि उनसे उसे लाभ होता था। न तो वह सरकार का भक्त था न विरोधी। यथार्थ में सरकार के विषय में उसने कभी सोचा ही नहीं था।

ऐसे व्यक्ति के लिये सेठ साहब के दिमाग़ में कुछ खराबी समझ लेना अचम्भे की बात नहीं थी। इस कारण वह सिर हिलाता हुआ चुपचाप वहां से चला गया।

[ ८ ]

जब सेठ साहब को यह अनुभव हुआ कि उनके पास लोग केवल चन्दा मांगने ही आते हैं तो उन्हें अपने आप पर लज्जा आने लगी। कलक्टर एक लाख रुपया चन्दा मांगता था और साथ ही उन्हें मूर्ख भी समझता था। सेठ साहब के चन्दा न देने पर अब उन्हें महा मूर्ख समझा जाने लगा था। यही अनुभव उनको सार्वजनिक संस्थाओं के विषय में भी हुआ था।

उक्त घटना के कुछ ही दिन पश्चात कांग्रेस के मुख्य कार्यकर्ता पं० पशुपतिनाथ, मौलाना करीमबख्श और कुछ अन्य छोटे-बड़े आदमी सेठ साहब के घर पधारे। इधर उधर की बातों के पश्चात पंडित जी कहने लगे, "सेठ साहब, महात्मा जी का सन्देश आया है कि कांग्रेस से खद्दर के काम को पृथक कर दिया जाय और इस कारण एक भारी रकम, सब भारतवर्ष में खद्दर को व्यापारिक रूप से चलाने के लिये, आवश्यक है। महात्मा जी का विचार है कि कम से कम पचास लाख रुपया इस काम के लिये एकत्रित कर देना चाहिये। पश्चात खद्दर की संस्था को 'रजिस्टर्ड' करा दिया जायगा। इसका सब मुनाफा इस विभाग के कार्यकर्ताओं को मिलेगा। प्रत्येक प्रांत में इस काम के लिये चन्दा एकत्रित किया जा रहा है। हमारे प्रांत में आप जैसा दानी दूसरा नहीं। इस कारण आपको इस शुभ कार्य में सर्वोपरि रखना चाहते हैं।"

सेठ साहब सुन चुके थे कि यही पंडित जी गवर्नर बहादुर के स्मारक के लिए एक भारी रकम देने का वचन दे चुके हैं। इस कारण उन्होंने पूछा, "पंडित जी, आप इसमें क्या दे रहे हैं?"

"मेरी बात छोड़िये। मुझे तो 'प्रेक्टिस' छोड़े दस वर्ष हो चुके हैं। दिन-रात तो कांग्रेस के काम में संलग्न रहता हूँ। आजकल हाथ तंग है। फिर भी कुछ न कुछ संकेत-मात्र दूंगा। परन्तु आप जैसे श्रीमान से मेरा मुकाबिला कुछ भी नहीं। आपसे तो हम बहुत भारी आशा बांध कर आये हैं।"

"सो तो ठीक है। मैं आपसे मुकाबिला करने के लिये नहीं पूछ रहा। न तो मैं आपका मुकाबिला कर सकता हूँ और न करने की इच्छा है। मैंने तो आप में ही जो दो प्रकार के व्यक्तित्व हैं उनमें मुकाबिला करना चाहा था।"

उपस्थित लोगों में से कोई भी सेठ साहब के कथन का आशय नहीं समझ सका। पंडित जी ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "मैं आपके कहने का अर्थ नहीं समझ सका।"

"मैंने कोई पेचीदा बात तो नहीं कही। आप में ही दो प्रकार की प्रवृत्तियां हैं। आपने गवर्नर के स्मारक के लिये क्या चन्दा लिखाया है?"

अब पण्डित जी मुस्करा कर बोले, "ओह! आप इस बात का उल्लेख कर रहे हैं। बात यूं हुई कि राजा साहब.....से मैंने पचास हजार रुपया लेना है। पिछले वर्ष उनकी 'इलेक्शन पैटीशन' लड़ी थी न। उस समय का रुपया उनकी तरफ़ था। वह राजा साहब इस स्मारक-समिति के प्रधान हैं। उन्होंने उस पचास हजार में से तीस हज़ार उस काम के लिये लिखा लिया है।"

"अच्छी बात, और अब इस काम के लिये आपने क्या देने का निश्चय किया है?"

अब तो पण्डित जी के साथी उनकी कठिनाई देख घबराने लगे। मौलाना साहब ने कुछ दिल कड़ा कर कहा, "सेठ जी, इस काम में भी पण्डित जी दे रहे हैं। यदि राजा साहब बकाया रुपया इनको दे दें तो शायद आप वह सब इस काम के लिये दे देंगे।"

"राजा साहब तो दे देंगे। यह काम आप मुझ पर छोड़िये। मैं आपको वसूल कर दूंगा। परन्तु मेरी समझ में यह बात नहीं आरही कि गवर्नर के स्मारक के लिये तीस हजार और खद्दर के कार्य के लिये बीस हजार।"

"पण्डित जी इस विषय पर बात होने की आशा नहीं रखते थे। वह बोले, "यथार्थ में गवर्नर का स्मारक हमारे नगर की भलाई के लिये होगा। उसमें तो हमारे नगर के लोगों को ही दस लाख रुपया एकत्रित करना है। यहां पांच लाख सब प्रांत भर में से एकत्रित करना है।"

"आपका फरमाना सर्वथा सत्य है। परन्तु मैं तो दोनों कामों की महत्ता का मुकाबिला कर रहा था। एक ओर गवर्नर साहब की यादगार और विदेशी चिकित्सा-प्रणाली का प्रचार और दूसरी ओर महात्मा जी का जीवन-कार्य है।"

इस पर पण्डित जी कुछ खीझ गये और बोले, "इस विषय पर मैं आपसे फिर किसी समय बातचीत करूंगा। अब तो केवल खद्दर की

लिया कि वह यह रुपया अदा नहीं करेंगे ?"

"पण्डित जी, मैं आपका बहुत मान करता हूँ। आपकी कुर्बानियों और देश-सेवाओं की भी बहुत प्रतिष्ठा करता हूँ, परन्तु मैं आपसे सब बातों में सहमत नहीं हो सकता। आप ही बतायें कि आपके पास क्या गारन्टी है कि वह यह रुपया दे ही देंगे ? परन्तु यह तो बात का एक अंग ही है। इस विषय का एक और अंग भी है। देशोन्नति में खद्दर का कोई स्थान नहीं। जब तक तो कांग्रेस भावों को उभार २ कर लोगों को खद्दर पहिनाती रहेगी तब तक कुछ जुलाहों को दो आना रोज की मज़दूरी मिलती रहेगी। परन्तु ज्योंही भावुकता की सहायता से खद्दर वंचित हुआ उसे कोई नहीं पूछेगा और ये जुलाहे जिनको आप लोग उन्नत होने से रोक रहे हैं भूखे मर जायेंगे।"

उपस्थित जनों में से एक साहब बोले, "परन्तु खद्दर चल नहीं सकेगा यह मैं मानने के लिये तैयार नहीं। यह सब कपड़ों से सस्ता है और शीघ्र ही साफ हो जाता है।"

"क्या बच्चों की सी बातें करते हो। जब मौलाना साहब खद्दर नहीं पहिनते थे तब तो वह कपड़े की दुकान वालों के सात हज़ार के देनदार नहीं थे। अब जब से खद्दर पहिनने लगे हैं इनका कपड़े का खर्चा इतना बढ़ गया है कि चार-पांच साल में इन पर सात हज़ार कर्जा चढ़ गया है। यदि खद्दर सस्ता होता तो होना यह चाहिये था कि वह अपने कपड़े के खर्चे में से बहुत कुछ बचा लिये होते। जो वस्तु महंगी है वह बाजार में नहीं चल सकती। आपको यह काम छोड़ कर किसानों के लाभ का कोई और काम करना चाहिये। अपनी शक्ति और लोगों के रुपये का अपव्यय ठीक नहीं।"

अब पण्डित जी ने दूसरा मार्ग पकड़ा। वह कहने लगे, "सेठ साहब, महात्मा जी हमारे नेता हैं। उनकी इज्ज़त के लिये ही कुछ कर दो। यह समय और यह विषय वाद-विवाद करने का नहीं।"

सेठ साहब ने कुछ उद्विग्न होकर कहा, "महात्मा गांधी कहां के

व्यापारी आदमी हैं। उन्होंने देश की आर्थिक दशा की बाबत कहां और क्या अध्ययन किया है? कैसे जानें कि उनकी सम्मति, कि खद्दर से लोगों की और देश की उन्नति होगी, सत्य है? वह तो बिना डाक्टरी पढ़े डाक्टर, बिना अर्थशास्त्र पढ़े देश को आर्थिक व्यवस्था देने वाले, बिना इतिहास पढ़े इतिहास लिखने वाले और बिना संस्कृत पढ़े गीता का अनुवाद करते हैं। वह महात्मा अवश्य हैं, परन्तु ऐसे मनुष्य की सम्मति कहां तक माननीय हो सकती है यह एक विचार करने का विषय है। एक अर्थशास्त्री अपना सारा जीवन देश की आर्थिक उन्नति के उपायों को समझने में व्यय कर देता है। इस पर भी वह इस विषय पर इतने दावे से बात नहीं करता जितना कि महात्मा जी बिना उस विषय को पढ़े और अनेकों अन्य कामों में व्यस्त रहते हुए करते हैं।"

चन्दा मांगने वालों में से एक साहब बोले, "माना महात्मा जी व्यापार की बातों को नहीं समझते। आप तो समझते हैं। क्या आप इतना भी नहीं समझ सकते कि मिलों से आमदनी तो कारखाने के मालिकों को होती है? मज़दूर तो बेचारे भूखों मरते हैं।"

"और खद्दर बनाने से उनकी भूख मिट जाती है? एक जुलाहे का तमाम परिवार यदि दिन भर काम करे तो पांच-छः गज कपड़े से अधिक दिन की औसत नहीं पड़ती। और इतने कपड़े बुनने की मजदूरी तीन-चार आने से अधिक नहीं होती। वही जुलाहा यदि किसी मिल में काम करे तो अकेला, बिना अपने परिवार के दूसरे लोगों की सहायता के, पच्चीस से पचास रुपये मासिक तक वेतन पा सकता है।"

"परन्तु कितने लोग हैं जो ऐसा काम पा सकते हैं? मिल में काम करने से एक आदमी डेढ़ सौ से दो सौ गज तक कपड़ा नित्य बुन सकता है। क्या इसका अर्थ यह नहीं कि एक आदमी तीस-चालीस आदमियों का काम कर उनको भूखा मार रहा है?"

"तो समस्या यह है कि जो आदमी मिलों के बनने से खाली होगये हैं उनको काम कैसे दिया जाय? क्या उनको काम देने का यह तरीका है

कि देश के माल का अपव्यय करके दो पैसे रोज की कमाई उनके लिये पैदा की जाय और वह भी इतने प्रचार और वादविवाद के साथ ?"

"देश के माल का अपव्यय कैसे हुआ ?"

"यह भी क्या बताने की बात है ? यदि एक सेर रुई में चालीस गज बढ़िया मारकीन बन सकती है तो उसी एक सेर रुई से पांच गज की एक धोती तैयार करना माल का अपव्यय नहीं तो क्या है ?"

"मगर रुई तो हमारे यहां बहुत मात्रा में पैदा होती है और उसकी पैदावार को बढ़ाया भी जा सकता है।"

"आखिर अपव्यय तो है ही। जो रुई देश में बच रहेगी उसको विदेश में बेचा जा सकता है अथवा दूसरे कामों में प्रयोग किया जा सकता है।"

इस पर एक दूसरे साहब बोल उठे, "परन्तु मिलों में एक भारी दोष तो यह है कि मिलों के मालिक अनायास ही भारी रकमें हज़म कर जाते हैं। वे मजदूरों की कमाई का भाग स्वयं अपने भोग-विलास में व्यय करते हैं।"

"तो भाई, इसका इलाज तो यह है कि ऐसी मिलें खोली जावें जिनमें मजदूर ही मालिक हों।"

"परन्तु बेकारी की समस्या तो और भी बढ़ जायगी।"

"बेकारी को दूर करने का उपाय यह नहीं कि वह आदमी जो एक रुपया दिन में पैदा कर सकता है उसको कहा जाय कि तुम दो पैसे रोज पैदा करो।"

"परन्तु यदि दो पैसे नित्य का भी काम उसे न मिलता हो तो उसे दो पैसे देना पाप है क्या ?"

"पाप तो नहीं, परन्तु इतना देने के लिये भी तो बहुत कहने-सुनने और लोगों को एक आने की वस्तु को चार आने में खरीदने के लिये तैयार करने की आवश्यकता है। खरीदने वाले को तो एक धोती पर जो एक रुपये में मिल सकती है तीन रुपये व्यय करने को कहा जाता है,

और बुनने वाले को तो फिर भी पेट भर नहीं मिलता। इन बेकारों का इलाज यह नहीं है। इसके लिये दूसरे उपाय करने चाहियें। नये २ काम जिनके लिये हम विदेशियों के आश्रित हैं यहां खोलने चाहियें।"

"शायद आप यह नहीं जानते कि यदि मशीनों से सब काम किये जावें तो दुनिया में चन्द ही लोग संसार के सब लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर देंगे और शेष लोग बेकार और निर्धन रहेंगे।"

"यह बात आपने फिर बच्चों की सी की है। काम और दाम का बँटवारा सब में समान होना चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि प्रत्येक को अवकाश भी भरसक मिलेगा और उसमें वह आत्मोन्नति भी कर सकेगा।"

पण्डित जी ने अब फिर वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "परन्तु यह करेगा कौन? ये बातें तो तब हो सकती हैं जब स्वराज्य हो जायगा।"

"वैसे तो सब के सब जातीय निर्माण के काम ठीक तौर पर स्वराज्य के पश्चात ही हो सकते हैं, फिर भी जो कुछ आप खद्दर के सम्बन्ध में इस समय कर सकते हैं उतना, प्रत्युत उससे अधिक, आप देश की दस्तकारी को उन्नत कर उसे साम्यवादी तरीके पर लाने में भी कर सकते हैं। मैं तो समझता हूँ कि यह देश की शक्ति का, देश के धन का और देश के माल का अपव्यय हो रहा है और मैं इसमें हाथ नहीं बँटाना चाहता।"

जब तक तो सेठ साहब सरकारी और सार्वजनिक संस्थाओं में चन्दा देते रहे उनकी उदारता, दयालुता और योग्यता की नगर भर में धूम रही। परन्तु जब उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि वह कहीं ऐसे स्थान पर दान नहीं देंगे जिनके साथ उनका मतभेद होगा तब से वह कंजूस, बकवासी, निकम्मे और मूर्ख समझे जाने लगे। उनके इस मानसिक परिवर्तन में सरकार की कठोर नीति और मधुसूदन कारण थे। नैतिक दृष्टि से उनका व्यवहार सर्वथा सत्य था, परन्तु व्यवहारिक रूप में लोग उनको अब चली हुई गोली समझते थे। धीरे २ लोगों ने उनको जलसों,

पार्टियों और सभाओं में भी बुलाना बन्द कर दिया।

सेठ साहब इस बात की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। उनका कोई लड़का-बाला नहीं था जिसको वह किसी काम में, नौकरी में अथवा समाज में, उन्नत अवस्था तक पहुंचाना चाहते हों। उनके पास इतना धन था कि अपने जीवन भर के निर्वाह की उन्हें कभी चिन्ता ही नहीं हुई। उनका परिवार भी छोटा-सा था। आप स्वयं थे, उनकी एक पत्नी थी और एक विधवा बहिन। दोनों स्त्रियों के लिये उन्होंने पृथक २ प्रबन्ध कर रखा था। अतएव अब उन्हें और धन पैदा करने की लालसा नहीं थी।

जब अपने आपको इतना तिरस्कार किया जाते देखा तो उन्होंने नगर छोड़ने का विचार कर लिया। उनका विचार कलकत्ते जाने का ही हुआ।

[ ६ ]

पूर्णिमा का फिल्म-कम्पनी में काम चल रहा था। प्रायः रात में स्टूडियो में काम करना होता था और दिन में आराम। 'आउटडोर शूटिंग' कभी २ होता था। इससे अपनी परिस्थिति पर विचार करने का उसे बहुत अवसर मिलता था। अब उसके लिये विचार का विषय गांधी-वाद था। नरोत्तम से बहुत कम भेंट होती थी। कारण यह था कि नरोत्तम प्रायः कलकत्ते से बाहर रहता था। बीमा कम्पनी में उसका काम इसी ढंग का था।

एक दिन पूर्णिमा 'आउटडोर शूटिंग' से लौटी थी और अभी चाय पी रही थी कि सेठ साहब नरोत्तम के साथ वहां पहुँच गये। पूर्णिमा को उन्हें देख अत्यन्त प्रसन्नता हुई और तुरन्त मां से और चाय बनाने के लिये कह उनके स्वागत में लग गई। नरोत्तम ने इस आकस्मिक मिलाप का कारण बताते हुए कहा, "जब मैं पटना में गाड़ी पर सवार होने लगा तो एक बर्थ पर सेठ साहब को लेटा देख बहुत हैरान हुआ। आप मुझे नहीं पहिचानते थे, परन्तु मैं आपको कई बार पहले देख चुका था। मैं उस समय तो चुप रहा, परन्तु कलकत्ते पहुंचने पर मैंने सेठ साहब के स्टेशन से निकलने के पहले ही उनके लिये गाड़ी का प्रबन्ध कर दिया

और कुलियों से असबाब उसमें रखवाना आरम्भ कर दिया। यह देख आप घबराये हुए आकर बोले, "जनाब, यह मेरा असबाब है।"

मैंने उत्तर दिया, "हां, जानता हूं।"

"परन्तु इसे कहां लिये जा रहे हैं?"

"जहां आपने जाना है।"

"आपको क्या मालूम है कि मैंने कहां जाना है?"

"मालूम क्यों नहीं? आप नं० ४३ चित्तरंजन स्क्वेयर में जा रहे हैं।"

नरोत्तम ने हंसते हुए कहा, "घर का पता सुन आप बहुत अचम्भे में मेरा मुख देखने लगे। फिर अकस्मात आपको मेरे मुख पर कुछ तुम्हारे मुख के लक्षण दिखाई दिये और आप भी हंस पड़े और बोले, 'तुम शायद नरोत्तम हो। परन्तु तुमने गाड़ी में क्यों नहीं बताया?"

मैंने गाड़ी में बैठते हुए कहा, "बताया तो अब भी नहीं। अब आप पहिचान जावें तो मेरा क्या दोष?"

इस प्रकार नरोत्तम का सेठ साहब से परिचय का वृत्तान्त सुन पूर्णिमा और सेठ साहब खूब हंसने लगे।

इस समय सेठ साहब ने अपनी कथा बताई। कहने लगे, "मेरा चित्त इलाहाबाद से उचाट हो गया है और मैंने वह नगर छोड़ देने का पक्का विचार कर लिया है। कलकत्ते में 'शेयरज़' का काम करने के विचार से आया हूँ। जब घर का प्रबन्ध कर लूंगा तो घर के लोगों को भी यहां ले आऊँगा। हां इधर आने से पूर्व मैं झांसी गया था और मधुसूदन से मिलकर आरहा हूँ। उसका स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है। यथार्थ में इलाहाबाद में इन्सपैक्टर ज्योतिप्रसाद ने उसे बहुत कष्ट दिया था। एक बार तो उसे इतना कष्ट दिया गया कि उसके जीवन की आशा छूट गयी थी। यह सब इस कारण किया गया कि वह यह बता दे कि वह किन लोगों से मिलने बनारस गया था। उसके यह न बताने के कारण ही उसे बन्दी बनाया गया है। उसने बताया कि इन्सपैक्टर ज्योतिप्रसाद वहां भी उसके पास गया था और आप लोगों का नाम-धाम

पूछता था, परन्तु उसने कुछ नहीं बताया। वह आप सब को अपनी नमस्ते कहता था।"

यह वृत्तान्त सुन पूर्णिमा के नेत्र अश्रुओं से भर आये। यह देख सेठ साहब ने कहा, "यदि मधुसूदन का अनुमान ठीक है कि उसे केवल खोज-भाल करने के लिये ही रोका हुआ है तो आशा है कि जब सरकार जान जायगी कि इन तिलों में तेल नहीं तो वह उसे छोड़ देगी और इसमें देरी नहीं लगेगी।"

परन्तु पूर्णिमा सरकार के विषय में भिन्न सम्मति रखती थी। उसे एक आशा की झलक प्रतीत होती थी और वह थी महात्मा गांधी का आन्दोलन। अपने काम में व्यस्त होने के कारण वह महात्मा गांधी के आन्दोलन और उसकी सफलता की आशा पर विचार नहीं कर सकी थी। तो भी महात्मा जी की ख्याति और उनके आन्दोलन की व्यापकता उसके मन में आशा का अंकुर जमाये हुए थी। वह समझती थी कि सरकार साइमन कमीशन की सिफारिशों के अनुकूल प्रान्तीय स्वराज्य दे देगी। और तब कांग्रेस बहु संख्या में प्रान्तीय सरकारें बनायेगी और अधिक नहीं तो बिना मुकद्मों के बन्दी छोड़ दिये जायेंगे।

इसी आशा पर वह अपने काम में मन लगा सकी थी। अब उसका फिल्म-कम्पनी में काम समाप्त होने के समीप आता जाता था और उसे अधिक और अधिक अवकाश मिलता जाता था। इसके साथ ही साथ वह महात्मा गांधी के आन्दोलन को अधिक ध्यान से देखने लगी थी। उसने सेठ साहब से अपने विचार प्रकट किये, और अपने मन में छिपी आशा का भास भी कराया। सेठ साहब के मन में यह बात लग गयी। पूर्णिमा ने कहा, "मैं सोचती हूँ कि हमें कांग्रेस को मजबूत करने के लिये अपना पूरा जोर लगा देना चाहिये। यही एक संस्था है जिसके शक्तिशाली होने से उनके छूटने की आशा हो सकती है। यदि शक्ति नर्म दल वालों के हाथ में आई या दूसरे सरकार-भक्तों के हाथ में आई तो उनसे बन्दियों को छुड़ाने की आशा बबूल से आम की आशा के

समान है। कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है जो इन लोगों से सहानुभूति रखती है और इनके बन्दी बनाये जाने को अन्याय समझती है।"

सेठ साहब ने कहा, "परन्तु महात्मा जी का जाति-निर्माण का काम, विशेष रूप में खद्दर का काम, इतना बेहूदा है कि उसमें सहयोग देना भी नहीं चाहता।"

"आपका कहना ठीक हो सकता है, फिर भी आप यह समझ लें कि सार्वजनिक आन्दोलन में कुछ व्यर्थ की बातें भी करनी पड़ती हैं। उदाहरण के रूप में जब फौज लड़ाई पर जाती है तो साथ बाजा बजाना सिवाय जोश दिलाने के और कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। यह कहा जा सकता है कि जितने सिपाही बाजा बजाते हैं उनको बाजे के स्थान पर बन्दूकें दे दी जायें तो फौज की शक्ति बढ़ नहीं जायगी क्या? इसी प्रकार कुछ काम लोगों में उत्साह बढ़ाने के लिये और उनके निश्चयों को दृढ़ करने के लिये होते हैं। मैं तो खद्दर को केवल इसी रूप में समझता हूं। यह तो केवल इस बात का चिन्ह है कि स्वराज्य-प्राप्ति पर किसानों और मजदूरों को शक्ति मिलेगी।"

सेठ साहब को यह युक्ति कुछ अधिक जँची नहीं, परन्तु यह बात उनके मन में लग गयी कि कांग्रेस को शक्तिशाली करने से ही मधुसूदन के छूटने की आशा हो सकती है। नरम दल के विचार इतने ढीले हैं कि उनसे किसी साहस के काम की आशा व्यर्थ है।

सेठ साहब ने कहा, "ठीक है। अब मुझे मार्ग दिखाई देता है। परन्तु कभी २ संशय होता है कि ये लोग इतने आदर्शवादी हैं कि समय आने पर रूठ ही न बैठें और मूर्ख तथा स्वार्थी लोग चौधरी बन बैठें।"

"पहले वह समय तो आने दें कि जब यथार्थ शक्ति का कुछ अंशमात्र भी लोगों के आधीन होजाय। उस समय उसे स्वीकार करने अथवा न करने पर सोचा जायगा।"

"समय तो है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट निकल चुकी है, परन्तु महात्मा जी ने उसे अस्वीकार कर दिया है।"

"यह अस्वीकार करने के योग्य तो है ही।"

"क्या इसमें पहले से अधिक अधिकार लोगों को मिल नहीं रहे?"

"हां, कुछ तो हैं। परन्तु बहुत कम हैं।"

"जो कुछ भी हैं, उन्हें स्वीकार कर फिर अधिक के लिये झगड़ा करने को कौन मना करता है?"

"आखिर देश के बड़े २ नेता भी तो इस विषय पर सोच रहे हैं। हमें उन पर विश्वास करना चाहिये।"

सेठ साहब एक दिन तो वहां पर ही रहे। दूसरे दिन उन्होंने कलकत्ते में एक बड़ी सी कोठी भाड़े पर ले ली और वहां पर जाकर रहने लगे। अब उन्होंने स्त्रियों को भी वहीं पर बुला लिया था। इस प्रकार इलाहाबाद से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया।

[ १० ]

दूसरी जनवरी को प्रातःकाल ही भारतवर्ष भर में धूम मच गयी। जहां २ दैनिक पत्र पहुंचते थे, लोग उनको पढ़ते और विस्मय में चर्चा करते थे। प्रत्येक के मुख पर ये शब्द थे, 'गज़ब होगया।' कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, मेरठ, दिल्ली, अमृतसर, लाहौर, पेशावर, बम्बई, पूना, मद्रास, नागपुर और ढाका से समाचार आचुके थे कि इन स्थानों के बड़े २ सरकारी अफसरों को वर्ष के नये दिन अर्थात पहली जनवरी को एक ही प्रकार के पार्सल मिले थे। पार्सलों में टाइप किये हुए पत्र थे। उन पत्रों में नये साल की भेंट और ऐसी ही बातें लिखी थीं। परन्तु पत्रों के नीचे घास में दबा हुआ एक २ बम था। ये बम स्वयमेव बिना ठोकर खाये दिन के बारह बजे फट गये। ये सब बम डाक द्वारा भेजे गये थे। कई स्थानों पर तो ये एक दिन पूर्व ही पहुंच गये। [illegible] लोगों ने लंच से पूर्व इन पार्सलों को खोला था। कई स्थानों पर तो ये खोलते ही फट गये। कई अन्य स्थानों पर लोग खोल कर इन्हें देख रहे थे कि ये फटे। इन बमों का बाहर का खोल एक सुन्दर पीतल के [illegible] की आकृति में था। इन्हें पाने वाले समझते थे कि किसी ने

उनके बच्चों को खिलौने भेजे हैं। कई स्थानों पर तो [illegible] रहे थे जब ये फटे। कलकत्ते में एक जगह तो [illegible] में ही फट गया। बेचारा बुरी तरह पागल हुआ था। इन बमों के फटने से बहुत जानों की हानि हुई।

अंग्रेज अफसर इस हत्याकांड का वृत्तांत पढ़ [illegible] गये थे। प्रायः सब के सब पार्सल अंग्रेज अफसरों को भेजे गये थे। [illegible] पर भी कई हिन्दुस्तानियों की जानों की हानि हुई। कई स्थानों पर तो सारा परिवार पार्सल खुलते समय उपस्थित था और बम फटने से मृत्यु के घाट उतार गया। कई चपरासी और बैरा लोग भी मारे गये थे।

ये सब समाचार घबराहट और हलचल मचाने के लिये बहुत काफ़ी थे। नरोत्तम उस दिन चाय पीने के समय पत्र पढ़ते २ फड़क कर खड़ा होगया। अकस्मात उसके मुख से निकल गया, "वेल डन दादा! वेल डन।" वह अपने जोश को काबू में न रख कर पूर्णिमा को यह समाचार सुनाने उसके कमरे में चला गया।

पूर्णिमा रात देर तक जागते रहने के कारण अभी सो रही थी। नरोत्तम के बार २ पुकारने पर उठी। आंखें मलते हुए पूछने लगी, "भैया! क्या है?"

नरोत्तम ने समाचार-पत्र सम्मुख रख कर कहा, "इसे पढ़ो। 'थ्री चीयरज़ फौर' दादा।"

पूर्णिमा पढ़ने लगी। पढ़ते २ उसका मुख पीला पड़ गया। कुछ और पढ़ने पर उसके नयन भीग गये। पूर्ण समाचार नहीं पढ़ सकी। समाचार-पत्र उसने नरोत्तम के हाथ वापिस देकर कहा, "यह आपने कैसे जाना कि यह दादा का काम है? क्या दादा इतने निर्दयी हैं?"

"इतना सर्वव्यापक 'एक्शन' इतनी सफलता से करने के लिये दादा की सी प्रतिभा और दूरदर्शिता वाला आदमी चाहिये। और निर्दयता का तो इसमें प्रश्न ही नहीं उठता।"

"निर्दयता क्यों नहीं? मरने-मारने का प्रश्न नहीं, यहां तो न्याय

और अन्याय का प्रश्न है। दोषियों के साथ निर्दोष भी मर गये हैं। मैं समझती हूँ कि शायद निर्दोष दोषियों से अधिक मरे हैं।"

"यह तो सब समय और स्थान पर होता है। न्याय का चक्र इस छोटे से भेद-भाव के लिये रुक नहीं सकता और फिर दोषी और निर्दोष में भेद करना अत्यन्त कठिन है।"

इस समय पूर्णिमा खाट से उठ खड़ी हुई थी। वह नरोत्तम के सम्मुख खड़ी होकर कहने लगी, "न भैया! मेरा मन कहता है कि यह उपाय मिथ्या है। आतंक उत्पन्न करने से हम अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकते। देखो, यह मिस्टर हिवैट (समाचार-पत्र की ओर संकेत कर बोली) और उनकी धर्म-पत्नी एक दिन हमारे स्टूडियो में आये थे। इनके तीन बच्चे भी साथ थे। कितने सुन्दर प्रतीत होते थे। वे बच्चे और उनकी मां पार्सल खोलते हुए मर गये। भला उनका क्या दोष था?"

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए कहा, "तो इससे क्या? जब युद्ध होता है तो दोषी और निर्दोष में भेद-भाव करना कठिन हो जाता है। यदि वह भली स्त्री थी तो उसका एक ऐसे पुरुष से विवाह करना, जो सात हजार मील से चल कर अन्याय का राज्य करने आया है, कैसे उचित हो सकता है? अन्यायी के साथी, मित्र, सहायक कैसे निर्दोष हो सकते हैं?"

पूर्णिमा ने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं, यह ठीक नहीं। जब आतंकवादी दोषी और निर्दोष में भेद-भाव रखना नहीं चाहते तो दमनकारी को हम कैसे दोष दे सकते हैं? और तो जो हुआ सो हुआ यह मिस्टर फ्रेज़र के तीन बच्चे पार्सल खोलते हुए जो मारे गये हैं, इन बेचारों का क्या दोष था? इनकी हत्या को तुम कैसे उचित सिद्ध कर सकते हो? मिसेज़ हिवैट ने तो अपनी इच्छा से एक सिविलियन से विवाह किया था, परन्तु ये बच्चे तो अपनी इच्छा से फ्रेज़र के घर उत्पन्न नहीं हुए।"

नरोत्तम ने वैसे ही भाव में कहा, "मैं इस हत्या को ऐसे ही उचित समझता हूं जैसे कुछ राजाओं के अपराध से आज हम तेतीस करोड़

दण्ड भोग रहे हैं। भारत की स्वतन्त्रता को बेचने वाले मुट्ठी भर राजपूत, मरहटे और सिख थे। उन्होंने अपने निजी स्वार्थ के लिये अंग्रेजों की जीत करवा दी। परिणाम में मैं, तुम और भारत के सब नर-नारी, जो उनके देश-द्रोह से दो सौ वर्ष पीछे उत्पन्न हुए हैं, दुःख, क्लेश और दासता भोग रहे हैं। बताओ तो भारत को दासता में डालने में हमारा क्या दोष है ? यदि नहीं है तो फिर हम क्यों दास बने हैं ?"

इन युक्तियों से पूर्णिमा की सांत्वना नहीं हुई। उसने कहा, "कुछ भी हो, यह अन्याय है। जो स्वयं अन्याय से पीड़ित हो उसे तो दूसरों पर अन्याय नहीं करना चाहिये।"

"दीदी, तुम स्त्री हो। तुम्हारा हृदय कोमल है। तुमने अभी संसार की कठोरता का अनुभव नहीं किया। यह संसार कितना अन्यायपूर्ण है यह तुम घर की चहारदीवारी के भीतर रहकर नहीं समझ सकीं।"

इस पर पूर्णिमा हंस पड़ी, "भैया, तुम भी विचित्र बात करते हो। मैं किसी पुरुष से किस प्रकार कम हूं। तुम पुरुषों को यही मान है न कि तुम कमा कर लाते हो। यदि धन कमाना ही संसार के अनुभव को प्राप्त करने का चिन्ह है तो मुझे तुमसे अधिक अनुभव होना चाहिये।"

नरोत्तम भी हंसने लगा।

इस नये दिन की घटना के पश्चात पूर्णिमा के विचार सर्वथा पलट गये। वह अहिंसावाद की पूर्ण हृदय से उपासिका होगयी। वह कांग्रेस की सदस्य बन गयी। कांग्रेस की सभाओं और जलसों में जाने लगी। उसने एक दिन फिल्म-कम्पनी से इस्तीफा दे दिया। मैनेजर ने झुंझला कर पूछा, "आखिर यह क्यों ?"

"मुझे इस काम में रुचि नहीं रही। आपकी यह पिक्चर समाप्त होगयी है। अगली पिक्चर आरम्भ होने से पूर्व ही मैंने आपको सूचना दे दी है।"

"परन्तु हमारा 'कान्ट्रैक्ट' (ठेका) ?"

"उसके विषय में जो भी हानि आप मुझसे लेना चाहें ले सकते हैं।"

"हानि ! वह तो आप किसी भांति भी पूरी नहीं कर सकतीं। लाखों

रुपयों की बात है। आपको तो एक वर्ष पूरा करना ही होगा।"

"अरुचि से किये गये काम में आपको और भी हानि होगी। मेरी रुचि अब इस काम में नहीं है।"

"तो आप किसी और कम्पनी में जा रही हैं?"

"मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही। यदि किसी अन्य फिल्म-कम्पनी में काम करना होता तो आप ही के यहां क्यों न करती? मुझे सिनेमा 'स्टार' बनना नहीं सुहाता। मैं अब यह काम नहीं करूंगी।"

"गज़ब है मिस पूर्णिमा! सोचो तो। हम आपके अनुकूल कहानी बना चुके हैं। सैट्स बन रहे हैं। अब इस प्रकार छोड़ देने से काम नहीं चल सकता।"

"कहानी अवश्य बन गयी है, परन्तु सैट्स की बाबत तो अभी कुछ नहीं हुआ। कुछ भी हो, मैं कल से यहां नहीं आऊँगी। आप अपना प्रबन्ध कर लें। आप हानि का दावा कर सकते हैं, मेरी जान नहीं ले सकते।"

इतना कह पूर्णिमा दफ्तर से चली आई और दूसरे ही दिन मैनेजर के पास रजिस्टर्ड नोटिस पहुँच गया। मैनेजर भागा २ आया। पूर्णिमा की मां और नरोत्तम के सम्मुख मिन्नत और खुशामद करने लगा। नरोत्तम ने कहा, "मैनेजर साहब, मुझे कहने से आपका काम नहीं चलेगा। अभी तक आपने चार हजार रुपया उसे वेतन का दिया है। यदि 'कन्ट्रैक्ट' तोड़ने के लिये आप उससे हानि मांगेंगे तो जो अदालत निर्णय करेगी हम दे देंगे। जबरदस्ती आप किसी से काम नहीं करवा सकते। आपको पूर्णिमा का धन्यवाद करना चाहिये कि उसने आपकी नई फिल्म का काम आरम्भ होने से पूर्व ही आपको सूचना दे दी है।"

इस प्रकार उत्तर पाकर मैनेजर अपना सा मुख लेकर चला गया। कम्पनी के मालिक बहुत छटपटाये, परन्तु अपनी मर्य्यादा स्थिर रखने के लिये वे अदालत में नहीं गये।

पूर्णिमा इस प्रकार छुट्टी पाकर तन और मन से अहिंसावाद के

प्रचार में लग गयी।

[ ११ ]

इसी समय महात्मा गांधी का वह विख्यात पत्र छपा था जो उन्होंने भारत के वाइसराय के नाम लिखा था। वह पत्र उन्होंने एक अंग्रेज दूत के हाथ भेजा था। यह एक प्रकार की ब्रिटिश सरकार को चुनौती थी कि वह भारतवर्ष को स्वराज्य दे दे। स्वराज्य वह इस कारण चाहते थे कि अंग्रेज शासक यहां भारी २ कर लगा कर बड़े २ वेतन प्राप्त करते हैं और फिर देश का हित-अहित न समझ कर यहां का शासन करते हैं। महात्मा जी ने इस पत्र में यह भी लिखा था कि संकेत-मात्र वाइसराय महोदय अपना वेतन कम कर दें। यदि वह ऐसा नहीं करेंगे तो सरकारी कर देने के विरोध में आंदोलन किया जायगा।

इसके पश्चात उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र क्रांतिकारी लोगों के नाम भी छपवाया। इस पत्र का आशय यह था कि आतंकवादी और हिंसात्मक उपायों में विश्वास रखने वाले अपना काम बन्द कर दें। उनका निवेदन था कि अहिंसात्मक उपाय श्रेष्ट हैं और वह उन उपायों से देश को स्वतन्त्र करने जा रहे हैं। परन्तु अहिंसात्मक उपायों की सफलता के लिये देश का वायु-मण्डल भी शांत और अहिंसात्मक होना चाहिये। महात्मा जी चाहते थे कि आतंकवादी उनको अपने उपायों के प्रयोग करने के लिये उचित वातावरण उत्पन्न करने में सहायता दें। वे अपने कामों को कुछ काल के लिये बन्द कर दें।

पूर्णिमा अपने मकान की सीढ़ियों पर चढ़ ही रही थी कि नरोत्तम के जोर २ से हंसने की आवाज़ आई। पूर्णिमा बहुत विस्मित थी कि किससे इतनी हंसी-मज़ाक की बातें हो रही हैं। देखा तो नरोत्तम अखबार सामने रखे हंस रहा था और समीप कोई भी नहीं था। पूर्णिमा ने विस्मय से पूछा, "क्या हुआ है, भैया?"

"देखो तुम्हारे महात्मा जी क्या लिखते हैं!"

"क्या लिखते हैं?"

"लिखते हैं कि 'देश इस समय एक अपूर्व समय में से गुजर रहा है। मैं समझता हूं इस समय हमें कोई भूल नहीं करनी चाहिये। इस समय की भूल हमें कई वर्ष पीछे ले जायगी। मैं अहिंसात्मक उपायों में विश्वास रखता हूं। मेरी पक्की धारणा है कि यही उपाय मनुष्य की मनुष्यता के अनुकूल हैं। हम पशु नहीं हैं। पशुओं के हिंसात्मक उपाय हमारे योग्य नहीं हैं। मेरा हिंसात्मक उपायों में विश्वास रखने वाले भाइयों से निवेदन है कि वे मेरे उपायों के प्रयोग में लाये जाने योग्य वातावरण बनाने में मेरी सहायता करें। अहिंसा का उपाय एक बहुत ही प्रबल शस्त्र है। इस पर भी इसका प्रयोग एक अच्छे वातावरण में ही हो सकता है। जैसे निर्मल दूध को बिगाड़ने के लिये एक बूंद खटाई पर्याप्त होती है वैसे ही निर्मल, स्वच्छ अहिंसा के प्रयोग को बिगाड़ने के लिये देश में एक भी हिंसा की घटना पर्याप्त होगी। यदि मेरे अहिंसा के प्रयोग को पूर्ण अवसर मिले तो अगले दो अथवा तीन वर्ष भारत के इतिहास में सुनहरी अक्षरों में लिखने के योग्य हो सकेंगे। मैं ईश्वर पर भरोसा रखते हुए यह प्रार्थना करता हूं कि लोग हिंसा को छोड़ मेरे उपायों को प्रयोग में लावें।'"

पूर्णिमा ने प्रसन्न मुख से कहा, "तो इसमें हंसने की कौन बात है, भैया?"

"मुझे हंसी इस बात पर आ रही है कि महात्मा जी यह समझते हैं कि सिवाय उनके और सब संसार भूल कर रहा है। यह तो माना कि देश इस समय अपूर्व परिस्थिति में से गुजर रहा है और इस समय की भूल हमें कई वर्ष पीछे ले जायगी, परन्तु यदि वह स्वयं भूल कर रहे हों तो।"

"यदि वह अकेले होते तब तुम यह कह सकते थे, परन्तु इस समय देश के सब चोटी के नेता उनके साथ हैं। ऐसी अवस्था में उनकी बात गलत नहीं हो सकती।"

"भारतवर्ष के चन्द शोर मचाने वाले नेता अवश्य उनके साथ हैं, परन्तु संसार भर के समझदार लेखक, वक्ता, दार्शनिक और राजनीतिज्ञ तो उनकी बात की पुष्टि नहीं करते। आदि काल से लेकर आज तक

सब देशों के लोग शक्ति का विरोध शक्ति से ही करना मानते रहे हैं।"

"यदि आपकी बात सत्य होती तो इस समय भारतवर्ष का कोना २ महात्मा जी के नाम से न गूंज रहा होता। क्या ये सब लोग मूर्ख हैं?"

"देखो पूर्णिमा, मैं किसी को मूर्ख और बुद्धिमान नहीं कहता। मैं तो केवल यह कहता हूँ कि जो बात परीक्षा से प्राचीन भारतवर्ष में और अनुभव से इस समय संसार भर में उचित मानी गयी है वह केवल भारतवर्ष के लिये अनुचित कैसे हो सकती है? नेपोलियन को दबाने के लिये अंग्रेजों ने और यूरोप के अन्य देशों ने हथियार उठाये थे। रावण को परास्त करने के लिये राम ने सत्याग्रह नहीं किया था। कंस और जरासंध का दमन लाठियां खाने से नहीं हुआ था। कौरव भी पांडुवों से केवल लड़कर ही शांत हुए थे। धार्मिक ग्रन्थों के किस्से-कहानी छोड़ो। आज तक संसार में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जहां दुष्टों के दमन के लिये कोरी बातों से काम चल गया हो। जो बातों से मान जाय वह दुष्ट नहीं कहाता और उससे झगड़ा करने की आवश्यकता भी नहीं होती। शस्त्र उठाने का प्रश्न तो तब ही उठता है जब एक ओर अथवा दोनों ओर दुष्टता विराजमान हो।"

"परन्तु महात्मा जी का कहना है कि प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है जो सच्चाई, न्याय और दया की ओर जाना चाहती है। सांसारिक मोह-माया के कारण कभी २ आत्मा के ऊपर पाप का आवरण छा जाता है। यह आवरण मिट सकता है और इसके मिटाने का उपाय सत्य, न्याय और दया ही है। हिंसा का मार्ग इस आवरण को और भी गहरा कर देगा।"

"यह सब वागाडम्बर है। इसमें न तो कोई युक्ति है और न कोई उदाहरण। मनुष्य में आत्मा है और वह आत्मा न्याय, दया और सच्चाई की ओर जाती है यह बात सत्य हो सकती है; परन्तु यह दूसरी बात, कि पाप के आवरण को दूर करने के लिये कष्ट और दुख सहन करना कोई उपाय है, समझ में नहीं आती। सत्याग्रह अपने शाब्दिक अर्थों में सत्य और अनिवार्य है, परन्तु अहिंसा-युक्त सत्याग्रह का केवल एक अर्थ है,

और वह है मार खानी, जेल में जाना, भूख-हड़ताल कर मर जाना। ये दुष्ट की दुष्टता को कैसे दूर कर सकते हैं? इससे तो दुष्ट अधिक और अधिक क्रूर हो जाता है। महात्मा जी का यह कहना कि इससे दुर्जन की आत्मा जाग उठेगी मनुष्य-प्रकृति को न समझना है। प्रायः ये लोग जब दूसरे को कष्ट उठाते देखते हैं तो उनकी आत्मा नहीं जागती, प्रत्युत उनमें भय जागता है। वे यह समझते हैं कि सत्याग्रही दुख और कष्ट उठा २ कर अन्य लोगों को भड़का रहा है और कहीं दूसरे लोग बहुत भारी संख्या में भड़क उठे तो उनको मार डालेंगे। यह मरने का तथा धन-दौलत खो देने का भय है जो उन्हें न्याय करने पर बाध्य कर देता है। परन्तु जब किसी दुष्ट व्यक्ति को यह प्रतीत हो जाय कि सारी की सारी जाति ही अहिंसावादियों की है और उसमें एक भी नहीं जो भड़क कर हिंसा से प्रतिकार लेने की शक्ति अथवा इच्छा रखता है, तो वह दुष्टता करने के लिये निर्भय होजाता है। यथार्थ में इसको आत्मा का जगाना नहीं कहते, प्रत्युत प्रतिकार से भय मानना कहना चाहिये।"

पूर्णिमा आज अपना पथ निश्चित कर लेना चाहती थी। वह समझती थी कि महात्मा जी का यह पत्र इस बात की सूचना है कि एक महान आंदोलन उठने वाला है। वह स्वयं उसमें आगे बढ़ कर भाग लेने का निश्चय करना चाहती थी। यही कारण था कि वह नरोत्तम की इतनी लम्बी बात सुन कर भी नहीं उकताई। वह चाहती थी कि नरोत्तम आज उसे अपने पक्ष की सब युक्तियां बता दे ताकि उसे पीछे अपने किये पर पश्चाताप न करना पड़े। नरोत्तम जब कथन समाप्त कर चुका तो उसने पूछा, "आपके कहने में उदाहरण हैं क्या?"

"हां। संसार का इतिहास इस कथन का साक्षी है। दूर की बात छोड़ो, अपने घर की ही बात लो। पंजाब में सिक्खों के नवम गुरु, गुरु तेगबहादुर हुए हैं। जब उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं पर अत्याचार करते देखा, तो वह स्वयं मुग़ल बादशाह के पास पहुँच गये और बोले कि दूसरों को कष्ट देने के स्थान पर उन्हें क्यों नहीं पकड़ लिया जाता?

वह हिन्दुओं के गुरु हैं। मुग़ल बादशाह ने गुरु तेग़बहादुर का सर कटवा दिया। इसका परिणाम यह नहीं हुआ कि मुग़ल-सम्राट की आत्मा जाग उठी हो, प्रत्युत इसके फल-स्वरूप लोगों में क्रोध उत्पन्न होगया। लोगों ने जब देखा कि उनके गुरु को अकारण मृत्यु के घाट उतार दिया है तो उनके क्रोध की सीमा नहीं रही और उसी दिन से सिक्खों की जाति एक धार्मिक संस्था से एक राजनीतिक जाति बन गयी। उन्होंने शस्त्र सम्हाले और एक सौ वर्ष के युद्ध के पश्चात पंजाब से मुसलमानों का राज्य दूर कर दिया। गुरु तेग़बहादुर के सत्याग्रह का फल मुग़ल-सम्राट की आत्मा को पवित्र करना नहीं हुआ, प्रत्युत हिन्दू जाति में, जो उस समय भीरु हो चुकी थी, वीर रस उत्पन्न करना हुआ। इसी प्रकार यदि महात्मा गांधी के सत्याग्रह का आशय यह है कि लोगों को हिंसात्मक बनने में प्रोत्साहन दिया जाय तब तो ठीक है, परन्तु यदि सत्याग्रह ही लक्ष्य है तो यह व्यर्थ ही शक्ति, समय और धन का अपव्यय है।"

"क्या जाने ईश्वर को क्या मंजूर है?"

"इसमें ईश्वर को घसीट लाना ठीक नहीं। परन्तु महात्मा जी का बार २ लोगों को यह कहना कि हिंसा पाप है, हिंसा से आत्मा पतित हो जाती है और इससे भारतवर्ष में स्वराज्य नहीं हो सकता लोगों में ज़ुल्म और अन्याय सहने का स्वभाव पैदा करना है। लोगों में यह धारणा उत्पन्न करनी कि अन्यायी का अन्याय सहन करने से अन्यायी न्यायशील हो जायगा यह भ्रम है। हां इससे यह तो होगा कि अन्याय का प्रतिकार लेने की न तो इच्छा हम में रहेगी और न ही शक्ति।"

"तो क्या प्रतिकार ध्येय है?"

"नहीं। ध्येय तो उन्नति, सुख और शान्ति है, परन्तु जो इनमें बाधा डालते हैं उनको बाधा डालने के अयोग्य बना देना ही प्रतिकार है।"

"उनकी मनोवृत्ति बदलने से ही तो यह होगा। उनको मार डालने से कैसे होगा?"

"जिनकी मनोवृत्ति न बदली जा सकती हो उनको संसार से बाहर

कर देना ही एक उपाय है। स्वार्थी स्वार्थ का त्याग तब ही कर सकता है जब वह ऐसा करने पर बाध्य हो जाता है।"

"एक बार तो महात्मा जी को अपने उपायों की परीक्षा का अवसर देना ही चाहिये।"

नरोत्तम खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, "दीदी, तुम पढ़-लिख कर भी ऐसी बातें करती हो। भारतवर्ष में मोहनदास कर्मचन्द गांधी पहले महात्मा नहीं हैं। महात्मा बुद्ध से लेकर अनेकों महात्मा आये और चले गये और प्रत्येक अपने जाने के पीछे देश को कुछ पतित अवस्था में ही करके गये हैं। इन महात्माओं ने देश के लोगों को अपाहिज, अंधविश्वासी और विचारशीलता से दूर ही किया है। हमारे में ईश्वर पर झूठा भरोसा और विश्वास उत्पन्न कर हमको अपनी बुद्धि के प्रयोग का स्वभाव छुड़ा दिया है। अब यह तुम्हारे महात्मा अन्तिम महात्मा थोड़े ही हैं। आज इनको अवसर देना है तो कल दूसरे को देना होगा। आखिर यह खेल कब तक चलता रहेगा?"

पूर्णिमा ने भी अब कुछ जोश में आकर कहा, "आप नास्तिकों की मण्डली में रहते २ ऐसा समझने लगे हैं। आपका कथन सर्वथा अयुक्ति-संगत है। यथार्थ बात तो यह है कि मनुष्य में दैवी गुणों और आसुरी गुणों का संघर्ष होता रहता है। महात्मा लोग दैवी गुणों का प्रोत्साहन करते हैं, परन्तु जन-साधारण में आसुरी गुण इतने प्रबल हो चुके हैं कि महात्माओं के प्रयत्न विफल जाते रहे हैं। इसमें महात्माओं का क्या दोष है? भारतवासी बहुत पतित हो चुके हैं। इनका उद्धार करने के लिये वृहत प्रयत्न की आवश्यकता है। हिंसा का मार्ग आदि काल से प्रयोग में किया जाता रहा है और हज़ारों वर्षों के प्रयोग से भी संसार में सुख-शान्ति उत्पन्न नहीं हो सकी। अब उस मार्ग का फिर प्रयोग करना जो अभी तक सफल नहीं हुआ कैसे युक्ति-युक्त हो सकता है?"

"अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग भी तो किया जा चुका है और जितनी भी सफलता हिंसात्मक उपायों को हुई है वह अहिंसात्मक उपायों से तो

बहुत अधिक है। मैंने अभी बताया है कि अहिंसात्मक सत्याग्रह लोगों को प्रभावशाली हिंसा करने के लिये भड़काने का काम करता है। स्वयं यह कुछ भी नहीं कर सकता। महात्मा गांधी का सत्याग्रह भी सन इक्कीस में निष्फल रह चुका है। इससे जो कुछ लाभ होना था वह महात्मा जी ने स्वयं मिटा दिया था। लोग हिंसा करने पर उतारू हो चुके थे। अंग्रेज़ भयभीत थे। परन्तु सत्यता के देवता ने उस समय सत्याग्रह को बन्द कर दिया और सारा का सारा आंदोलन निष्फल होगया। निष्फल आंदोलन जितना बड़ा होगा उससे उतनी ही अधिक हानि होती है। मैं तुम्हें एक और उदाहरण देकर समझाता हूँ। यदि मुसीबत में फंसे व्यक्ति को कोई यह कहे कि तुम ईश्वर पर भरोसा रखो। वह दयालु है। जब तुम्हारी मुसीबत अधिक हो जायगी, दयानिधि तुम पर दया कर सहायता करेंगे। यदि वह मनुष्य ईश्वर की सहायता पर भरोसा रख दुख तथा कष्ट सहता है और सहायता नहीं होती तो कितनी निराशा होती है। जितनी अधिक आशा होगी, असफलता पर उतनी ही अधिक निराशा भी होगी। और निराशा का परिणाम चरित्र-भ्रष्टता है। महात्मा गांधी ने लोगों को आशा दिलाई थी कि यदि वे सरकार से असहयोग करेंगे तो स्वराज्य एक वर्ष के भीतर प्राप्त हो जायगा। ऐसा न हो सका। देश भर में असहयोग आंदोलन चलाया गया। हज़ारों की संख्या में लोगों ने कारोबार छोड़ दिया, परन्तु आंदोलन असफल रहा और लोगों में इतना पतन आया कि सरकार के सम्मुख गिड़गिड़ाने लगे। हिन्दू और मुसलमान परस्पर लड़ने लगे और सरकार की खुशामद करने में एक दूसरे से बाजी लेने लगे।

"तुम कहोगी कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों में और महात्मा जी के असहयोग आंदोलन में सम्बन्ध नहीं है, परन्तु विचारशील लोगों के विचार में उनमें सम्बन्ध है। हिन्दू-मुस्लिम तनाव पहले अवश्य था, परन्तु देश-व्यापी दंगे कोहाट से चिटगांव तक और काश्मीर से मालावार तक तो असहयोग आंदोलन के असफल होने से ही हुए हैं।"

पूर्णिमा इन बातों से निरुत्तर नहीं हुई। उसने फिर कहा, "तुम्हारा

यह अनुमान ठीक हो सकता है। इतिहास में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि जब कोई वृहत प्रयत्न विफल होता है तो आत्मा दुर्बल पड़ जाती है। परन्तु क्यों न ऐसा यत्न किया जाय कि इस बार यह आंदोलन निष्फल ही न हो? यदि एक बार सफलता होगयी तो न केवल भारतवर्ष का सस्ते में उद्धार होगा, प्रत्युत मनुष्य जाति पशुपन से ऊपर उठ आयगी।"

नरोत्तम भी निरुत्तर नहीं हुआ था। इस पर भी वह केवल यह कह कर चुप रह गया, "अच्छी बात है। एक बार देख लिया जाय। मेरे अकेले के कहने से तो यह आन्दोलन रुक नहीं सकता। यह देश का दुर्भाग्य है कि देश का नेतृत्व इस समय जैन मतावलम्बियों के हाथ में है। इससे तो देश और पतन की ओर ही जा सकता है।" इसके पश्चात उसने वार्तालाप की प्रगति को बदलते हुए कहा, "तुम आज-कल क्या कर रही हो?"

"मैं आज-कल कांग्रेस का प्रचार करती हूँ। हम खद्दर बेचते हैं, और लोगों को महात्मा जी का सन्देश देते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता रखो, अछूतोद्धार करो तथा मन, वचन और कर्म से हिंसा को निकाल दो।"

"बहुत खूब! बहुत खूब, दीदी! तुम अब ठीक २ नेता बन रही हो। अब तो तुम्हारा नाम कलकत्ते भर में गूंज रहा होगा।"

"नहीं, अभी नहीं। मैं तो अपने आपको तब सफल मानूँगी जब तुम और दादा हिंसा का पथ छोड़ कर सत्य, न्याय और अहिंसा मार्ग पर आ डटोगे।"

नरोत्तम हंसता हुआ मां के पास चला गया।

[ १२ ]

टाइम-बमों की घटना से सरकारी-क्षेत्र में भारी हलचल मच गयी थी। वे इस देश-व्यापी षड़यंत्र के पता न पा सकने से घबरा गये थे। प्रांत के गवर्नरों की गवर्नर-जनरल से भेंट हुई। गुप्त पुलिस के 'महकमे में हलचल मच गयी, परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला। भारत-सरकार ने इस षड़यन्त्र को जड़ से उखाड़ डालने के लिये इङ्गलैंड से भेदिया-

पुलिस के लोग मंगवाये। उनके आने से भारत-पुलिस के गुप्त पुलिस-विभाग में कई नई बातों का समावेश किया गया, परन्तु इस षड़यन्त्र के दो स्तम्भ दादा धीरेन्द्र और हारानदास नहीं छुए जा सके। अनेकों ही युवक बङ्गाल, बिहार और यू० पी० में पकड़े गये और कोई प्रमाण न होने के कारण बिना मुकदमे के बन्दी बना लिये गये।

इस घटना को दो मास होगये थे। अंग्रेज भेदिया-पुलिस वाले लम्बी-चौड़ी स्कीमें बना कर इङ्गलैंड वापिस चले गये। यह वह काल था जब वाइसराय ने भारतवर्ष के नेताओं को नई दिल्ली में बुला कर गोलमेज-परिषद् का सन्देश दिया था।

एक दिन मथुरा बाबू अपने एक सम्बन्धी की दुकान पर कलकत्ते में बैठे थे कि एक कबाड़ी लकड़ी की एक सन्दूकची बेचने आया। सन्दूक को देखते ही मथुरा बाबू ने पहचान लिया। यह उन सन्दूकों में से था जिनमें वे मशीनें, जिनको हारान बाबू ने निटिंग मशीनें बताया था, बन्द थीं। मथुरा बाबू ने कई बार यत्न किया था कि उन मशीनों की बाबत ज्ञान प्राप्त करें, परन्तु असफल रहे थे। अब इस सन्दूक को देखते ही उनके दिमाग़ में एक विचार उठा। उन्होंने समझा कि अब उस मशीन को देखना सम्भव हो सकता है। इसलिये कबाड़ी से पूछा, "यह सन्दूक कहां से लाये हो?"

"एक साहब की कोठी से खरीदा है।"

"कौन साहब हैं, देशी या विलायती?"

"देसी साहब हैं, हजूर। उत्तरपाड़ा में रहते हैं। तीन आने को खरीदा है, चार आने में बेच दूंगा।"

"मैं तुम्हें इसका एक रुपया दूंगा, परन्तु तुमको मेरे साथ चल कर उस साहब का मकान बताना होगा।"

इस बात से कबाड़ी चकराया। उसे सन्देह होने लगा कि कहीं यह चोरी का माल न हो। उसने साहब के बैरा से खरीदा था। मथुरा बाबू कबाड़ी की घबराहट देख इसका कुछ २ कारण समझ गये थे। उन्होंने

कहा, "ओह, तुम डरते हो। मैं पुलिस का अफसर नहीं हूं और न ही यह चोरी की वस्तु प्रतीत होती है। तुम घबराओ नहीं।"

इस आश्वासन से और रुपये के लालच से वह मथुरा बाबू के साथ जाने के लिये राजी होगया। मथुरा बाबू उसे मोटर में बैठाकर उत्तरपाड़ा में ले गये। कबाड़ी ने बैरा को बुला कर सम्मुख कर दिया। बैरा की घबराहट तो कबाड़ी से भी अधिक थी। उसने यह सन्दूक सत्य ही अपने मालिक से चोरी बेचा था। उसका मालिक खुफिया-पुलिस में इन्सपैक्टर था और 'न्यू इयर्स डे' के टाइम-बम के मामले में तहकीकात कर रहा था। इस खोज में उसके पास तीन सन्दूक पहुँच चुके थे जिनमें वे बम लोगों को डाक द्वारा मिले थे। इन तीन सन्दूकों में कोई विशेष भेद न देख उसने एक सन्दूक तो पुलिस के दफ्तर में रख दिया था। दूसरा अपने पास अपने दफ्तर की मेज पर रखा हुआ था और तीसरा अपने मकान के गोदाम में रख दिया था। यह गोदाम वाला सन्दूक बैरा ने अनावश्यक वस्तु समझ बेच दिया था, और तीन आने की बीड़ी पीने के लिये खरीद ली थीं। मथुरा बाबू ने एक पंजाबी मुसलमान को सम्मुख देख पूछा, "क्या यह सन्दूक तुमने इसके पास बेचा है?"

बैरा घबरा गया। फिर भी एक पुलिस-अफसर का नौकर होने से डट कर बोला, "हां। आपको इससे क्या मतलब है?"

मथुरा बाबू ने नरमी से कहा, "भाई, घबराने की बात नहीं। मैं तो तुम्हारे मालिक से मिलकर जानना चाहता हूँ कि क्या वह इस सन्दूक में आई मशीन को मुझे दिखा सकते हैं या नहीं?"

बैरा बात को मालिक तक नहीं जाने देना चाहता था। इस कारण उसने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं, वह नहीं बतायेंगे। वह क्यों बतायेंगे?"

परन्तु मथुरा बाबू इतनी सी डांट से टलने वाले नहीं थे। उनकी उन मशीनों को देखने की इच्छा आज पूरी होती प्रतीत हो रही थी। इस कारण वह बिना बैरा को कुछ उत्तर दिये मकान के अगले भाग की तरफ चले गये और वहां बरामदे में एक सर्वथा काले रङ्ग के बङ्गाली बाबू

को बैठा देख उसके पास जा पहुंचे। वह आराम कुर्सी पर बैठा चुरट पी रहा था। मथुरा बाबू ने पास पहुंच, 'गुड इवनिंग' कह कर पूछा: "क्या मैं इस मकान के मालिक से बात कर रहा हूँ?"

उस आदमी ने जो चुरट पी रहा था बैठे २ ही कहा, "मेरा विचार है कि आप ठीक समझ रहे हैं। मैं इस मकान में रहता हूँ। आप क्या चाहते हैं?"

मथुरा बाबू ने खड़े २ कहा, "एक बहुत मामूली बात है। उम्मीद है आप क्षमा करेंगे। क्या आप वह निटिंग मशीन दिखा सकते हैं जो इस सन्दूक में आपके पास आई थी?" इतना कह कर उसने कबाड़ी को बुलाया जो सन्दूक लिये दूर खड़ा था।

कबाड़ी के हाथ में सन्दूक को देख वह बङ्गाली बाबू चौंक कर एका-एक कुर्सी से उठ खड़े हुए और अचम्भे में मथुरा बाबू के मुख को देखने लगे। कई सैकण्ड तक इसी प्रकार देखते रहे। मथुरा बाबू भी हैरान थे कि उनको हो क्या गया है। क्यों वह ऐसे घूर २ कर देख रहे हैं? जब उनका घूर कर देखना बन्द नहीं हुआ तो उन्होंने पूछा, "क्या बात है? आप ऐसे क्यों देख रहे हैं?"

अब उस बंगाली महाशय को चेतना हुई। उन्होंने मथुरा बाबू को पास रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत कर कहा, "आप पधारें।"

मथुरा बाबू कुर्सी पर बैठ गये और उत्सुकता से उनके मुख की ओर देखने लगे। बंगाली महाशय भी कुर्सी पर बैठ गये और बोले, "आपको यह सन्दूक कहां से मिला है?"

"यह आदमी कबाड़ी है। इसने यह सन्दूक आपके बैरा से खरीदा है। मुझे यह बाजार में बेचता हुआ मिला था। मैंने इस किस्म के सन्दूकों में एक प्रकार की निटिंग मशीनें बन्द देखी थीं। मुझे वैसी मशीन देखने की आवश्यकता है। इस कारण आपको कष्ट दिया है।"

वह बंगाली महाशय, खुफिया-पुलिस के अफसर, कई समस्याओं में फंस गये। कुछ देर तक चुरट के कश लगाते हुए सोचते रहे। पश्चात

पूछने लगे, "आपने इस प्रकार के सन्दूकों में निटिंग मशीनें देखी थीं ? कहां ? और तब ही आपने इन्हें क्यों नहीं देख लिया था ?"

मथुरा बाबू अपनी सफाई देते हुए बोले, "मशीनों के कारखाने में। वह हमारे पड़ौस में है। हमारा उन लोगों से मुकाबिला चल रहा है। इस कारण मशीनों का निरीक्षण भली-भांति वहां नहीं कर सका। हमारे पड़ौस के कारखाने में वे मशीनें भारी संख्या में बनती हैं और हमारी उत्कट इच्छा है कि हम इन मशीनों का पूरा २ परिचय प्राप्त करें।"

"आपको उन मशीनों को देखने का अवसर अभी तक नहीं मिला, तो आपको यह कैसे पता मिला कि वे निटिंग मशीनें थीं ?"

अब मथुरा बाबू को सन्देह हुआ कि कहीं हारान ने उनकी हंसी तो नहीं की और यथार्थ में इन संदूकों में कुछ और ही वस्तु हो। उन्होंने बात स्पष्ट कर दी और कहा, "एक दिन मैं उस कारखाने में बैठा था। मेरे बैठे २ कई लोग ऐसे संदूक खरीद कर ले गये थे। मैंने कारखाने के मालिक से पूछा तो उन्होंने कहा था कि इनमें एक विशेष प्रकार की निटिंग मशीनें हैं जो वह बनाते हैं।"

"और एक पार्सल का क्या दाम लेते थे ?"

"दाम लेते तो मैंने नहीं देखा।"

यह सुन बङ्गाली बाबू कुछ मुस्कराये। फिर कुछ सोच कर बोले, "यह कब की बात है ?"

"लगभग बीस-बाईस दिसम्बर की बात होगी।"

"इसके पश्चात फिर कभी आपने इन सन्दूकों के दर्शन किये हैं ?"

"उसके पश्चात भी मैंने ऐसे सन्दूक उनके कारखाने से जाते देखे हैं। परन्तु यह उसी महीने की बात है। आज-कल तो नहीं देखे।"

इस पर बङ्गाली बाबू फिर कुछ सोचने लगे। इस सब प्रश्नोत्तर से मथुरा बाबू को सन्देह होगया कि दाल में कुछ काला है। उन्होंने वहां से अब चला जाना ही उचित समझा। कहा, "क्षमा करें। मैंने आपको कष्ट दिया है। यदि इसके दिखाने में कठिनाई हो तो आप कष्ट न करें।

में इसके देखने का कोई दूसरा प्रबन्ध कर लूंगा।"

इस पर वह बङ्गाली बाबू चौंक कर बोले, "कष्ट ? नहीं ! कष्ट कुछ नहीं। बात यह है कि मेरी स्त्री घर पर नहीं है। वह कलकत्ते से बाहर गयी हुई हैं, और मशीन उन्होंने ही रखी हुई है। जब आपने इसके देखने के लिये इतना कष्ट किया है तो आपको मैं उसे दिखाना अपना कर्तव्य समझता हूं। आप अपने कारखाने का पता दें। मैं मशीन कल आपके निरीक्षण के लिये वहां भिजवा दूंगा।"

"मैं तो मैमनसिंह में रहता हूँ। आज रात की गाड़ी से चला जाऊंगा।"

बंगाली बाबू ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "मैमनसिंह ? वहां तो मैं स्वयं जाने वाला हूँ। मैं जरूर आपको दिखाने के लिये मशीन लेता आऊंगा। शायद कल ही पहुँचूंगा। मुझे आपसे वहां मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी।"

मथुरा बाबू ने अपना कार्ड निकाल कर उस बङ्गाली महाशय को दे दिया। उन्होंने उत्तर में कहा, "मेरा नाम पी० के० चौधरी है। मैं सरकारी अफसर हूं। मैं आपको मैमनसिंह में कल या परसों मिलूंगा।"

मथुरा बाबू ने 'गुडनाइट' की और वहां से विदा होगये। कबाड़ी ने वह लकड़ी का सन्दूक मथुरा बाबू की मोटर में रख दिया और एक रुपया लेकर प्रसन्न वदन अपने घर की ओर चला गया।

[ १३ ]

नरोत्तम अपनी बीमा कम्पनी के काम से जमालपुर जा रहा था। उसने अपने लिये एक सैकण्ड क्लास बर्थ रिज़र्व करवाया हुआ था। गाड़ी सियाल्दा स्टेशन से रात के दस बजे चल पड़ी। गाड़ी के चलने से कुछ ही पूर्व एक और मुसाफिर नरोत्तम वाले डिब्बे में आया। यह मथुरा बाबू थे। नरोत्तम ने मथुरा बाबू का असबाब देखा तो मुस्कराने लगा। अचम्भे की बात यह थी की उनके साथ केवल एक लकड़ी का टूटा हुआ डिब्बा था। यह डिब्बा खाली था। यह वही था जो कबाड़ी से मथुरा बाबू ने एक रुपये में खरीदा था। जल्दी २ में जब कुली बिस्तर लिये

रेल के डिब्बे में घुसा तो वह लकड़ी की सन्दूकची लुढ़क कर नरोत्तम के ऊपर गिरी। नरोत्तम अपने बर्थ पर लेटा हुआ था। सन्दूकची के गिरने से चौंक कर उठ खड़ा हुआ और उस टूटी लकड़ी की पेटी को देख कर क्रोध से भर गया। कुछ आवेश में बोला, "क्यों साहब, यह सैकण्ड क्लास के मुसाफिरों का डिब्बा है या 'लगेज़ वैन ?' यह क्या कूड़ा-करकट यहां ले आये हैं ?"

मथुरा बाबू ने घूम कर देखा कि एक मुसाफिर उस लकड़ी की पेटी को रेल के डिब्बे से बाहर फेंकने ही वाला है। उसने बात समझ कर कहा, "क्षमा करिये। आपको चोट तो नहीं आई। माफ करें। यह कुली गधा मालूम होता है। दो बार पहले भी यह फेंक चुका है।"

नरोत्तम ने मुस्कराते हुए पूछा, "परन्तु यह है क्या ? इसे किस लिये साथ २ उठाये घूम रहे हैं ?"

मथुरा बाबू नरोत्तम के इस उचित प्रश्न पर हंस पड़े और बोले, "आपका क्रोधित होना ठीक है। मैं खुद नहीं जानता कि मैं इसे क्यों लिये २ घूम रहा हूं ?" इतना कह उन्होंने वह पेटी नरोत्तम के हाथ से ले ली और बहुत सावधानी से ऊपर की सीट पर, जो खाली पड़ी थी, रख दी। और घूम कर पूछने लगे, "आप कहां तक जा रहे हैं ?"

"मैं ? मैं तो जमालपुर जा रहा हूँ।"

मथुरा बाबू ने केवल कुछ कहने के विचार से कह दिया, "मैं मैमनसिंह जा रहा हूँ।"

जब दो हिन्दुस्तानी कहीं एक ही तांगे, इक्के अथवा रेल के डिब्बे में सफर करते हैं तो इसी प्रकार परस्पर परिचय कर लेते हैं। अंग्रेजों की भांति बिना परिचय के बात न करनी हिन्दुस्तानियों का स्वभाव नहीं है। वहां तो दो मनुष्यों के भीतर अजित दीवार होती है और भारतवर्ष में केवल एक मेंढ़ जो सहज ही पार हो सकती है।

यह स्वभाव अच्छा है या बुरा, निर्णय करना कठिन है। गुण-दोष प्रायः सब बातों में होते हैं। जो कुछ भी हो यह हिन्दुस्तानी स्वभाव है

और ऐसा काश्मीर से रासकुमारी तक और कराची से कटक तक होता है। ऐसा ही मथुरा बाबू और नरोत्तम में हुआ। एक साधारण सी घटना से परिचय होगया और घर-बाहर की बातें होने लगीं।

नरोत्तम ने पूछा, "मैमनसिंह में आप क्या कारोबार करते हैं?"

मथुरा बाबू को अपना रोना रोने का अवसर मिल गया। बताने लगे, "मशीनें बनाने का कारखाना है। एक पड़ोसी बाबू हारान दास की सफलता देख खोला था, परन्तु घाटा इतना हो रहा है कि अब उसे और अधिक चलाना असम्भव प्रतीत हो रहा है। हां, यदि उन निटिंग मशीनों का, जो हारान बाबू बनाते हैं, पता चल जाय तो कुछ आशा हो सकती है।"

हारान का नाम सुन नरोत्तम चौकन्ना होगया। वह ध्यान देकर मथुरा बाबू की बातें सुनने लगा। वह जानता था कि हारान के कारखाने में कोई खास निटिंग मशीनें नहीं बनतीं। इस कारण उसने पूछा, "ये कैसी मशीनें हैं?"

"यह तो ठीक नहीं बता सकता। हां वे मशीनें उनकी बिकती खूब हैं। मैं एक दिन अकस्मात उनके यहां चला गया था। देखते २ उन्होंने एक घण्टे में दस-बारह मशीनें बेच डालीं।"

नरोत्तम ने हैरानी से पूछा, "दस-बारह! कब की बात है?"

मथुरा बाबू ने उत्तर दिया, "मैं तो उनके यहां पिछले दिसम्बर मास में गया था। परन्तु उसके पश्चात भी मैंने लोगों को वैसी मशीनें वहां से ले जाते देखा है। वे मशीनें ऐसे ही सन्दूकों में बन्द करके बेची जाती हैं।"

इतना कह कर उसने ऊपर की सीट पर रखे सन्दूक की ओर संकेत कर दिया।

नरोत्तम ने उस सन्दूक की ओर देख मुस्कराते हुए कहा, "ठीक। अब समझा हूं कि आप क्यों इसको उठाये २ फिर रहे हैं।-भला मशीनें तो आपने देखी नहीं और यह सन्दूक कैसे पा गये? इसमें की मशीन

कहां गयी ?"

मथुरा बाबू ने बहुत गम्भीर भाव धारण कर कहा, "आप शायद मज़ाक समझते हैं। परन्तु मैं सत्य कहता हूँ कि यह सन्दूक उन्हीं मशीनों का है। यह सन्दूक मुझे आज अत्यन्त ही अद्भुत घटना से मिला है। मैं आज दोपहर में धर्मतल्ला में एक दुकान पर बैठा था कि एक कबाड़ी इसे बेचने आया। मैंने इस सन्दूक को पहिचान लिया। मुझे विश्वास सा होगया कि यह निटिंग मशीनों वाला सन्दूक है; और मेरा अनुमान ठीक निकला। मैंने कबाड़ी को एक रुपया देने का वचन दिया और उसे लेकर वहां पहुंचा जहां से उसने यह सन्दूक खरीदा था। मुझे अपनी पहिचानने की शक्ति पर गर्व है। जब मैंने उस आदमी से पूछा, जिसके यहां से यह सन्दूक खरीदा गया था, तो उसने बताया कि हां इसमें निटिंग मशीन थी। जब मैंने देखने की इच्छा प्रकट की तो वह बोला कि मशीन तो उसकी स्त्री ने कहीं रखी है और वह मुझे किसी दूसरे दिन दिखा सकता है। वह कहता था कि वह कल मैमनसिंह आरहा है। वहां वह मशीन लेता आवेगा और दिखा देगा।"

नरोत्तम यह कथा सुन कुछ संशय में पड़ गया। उसने सब बात और स्पष्ट रूप से जानने के अभिप्राय से फिर पूछा, "वह कौन साहब हैं और कहां रहते हैं ? बहुत भले आदमी प्रतीत होते हैं जो मशीन को मैमनसिंह तक उठा लाने को उद्यत हो गये हैं। यदि आप चाहें तो मैं उनसे पूछ कर आपको लिख सकता हूं।"

मथुरा बाबू ने उत्तर में पी० के० चौधरी का नाम-पता बता दिया और कहा, "आपको तकलीफ होगी और मैं जब तक स्वयं मशीन देख न लूं मैं लाभ नहीं उठा सकता।"

नरोत्तम नाम और पता सुन चौंक उठा और यह जानकर कि वह अगले दिन मैमनसिंह जा रहा है चिन्ता में डूब गया। उसे परेशान देख मथुरा बाबू ने कह दिया, "आप चिन्ता न करें। पहले तो वह साहब स्वयं ही मैमनसिंह आने वाले हैं और यदि वह न भी आयें तो मैं स्वयं

नम्बर तीन नरोत्तम का संकेत-नाम था। अगले स्टेशन पर यह तार एक्सप्रेस और लेट फी के साथ दे डाली।

दिन निकलने से पहले ही जमालपुर आगया था और नरोत्तम मथुरा बाबू को खुर्राटे भरते छोड़ गाड़ी से उतर गया।

[ १४ ]

रात के बारह बजे तार हारान को मिल गयी थी। इसका अभिप्राय समझने में उसे देरी नहीं लगी, परन्तु वह पहले ही सब स्टॉक निकाल चुका था। इस पर भी उसने कारखाने के नौकरों को जगा दिया और कारखाने के कोने २ की देख भाल कर ली। दफ्तर में सब कागज़ात को देख कर व्यर्थ के कागज़ों को आग में झोंक दिया। इस प्रकार निश्चिंत हो वह दो बजे सो गया।

प्रातःकाल छः बजे कारखाने पर पुलिस पहुंच चुकी थी। हारान यद्यपि सचेत था तो भी पुलिस के वहां तक पहुंच जाने पर चकित हो रहा था और नरोत्तम के उसे सचेत कर देने पर और भी विस्मय कर रहा था।

पुलिस के कई अफसर और कई कानस्टेबल कारखाने के प्रत्येक दरवाजे और खिड़की की रक्षा कर रहे थे। तलाशी का वारन्ट दिखा कुछ लोग भीतर चले आये। हारान ने उन लोगों की तलाशी ली और फाटक पर अपने दो चपरासियों को खड़ा कर कह दिया कि भीतर किसी को मत आने दें। तलाशी आरम्भ हो गयी।

हारान के कारखाने के बाहर लोगों की भीड़ लग गयी थी। मथुरा बाबू जब स्टेशन से घर आये तो यह भीड़ देखकर चकित रह गये। वह अपने कारखाने के अगले मकान में रहते थे। उन्होंने बिस्तर भीतर भेज दिया और भीड़ का कारण जानने के लिये हारान के कारखाने के सम्मुख चले आये। वहां पहुंच ज्यों ही उन्होंने कारखाने के भीतर झांककर देखा तो पी० के० चौधरी को भीतर डटकर खड़ा देख सन्न रह गये। वह मन में सोचते थे कि यह क्या होगया है। कैसे यह काल-कलूटा वहां उनसे भी पूर्व पहुँच गया है। आखिर यहां यह कर क्या रहा है। एक पुलिस

कानस्टेबल से जो दरवाजे पर देख-भाल कर रहा था मथुरा बाबू ने पूछा, "यहां क्या हो रहा है ?"

पुलिस कानस्टेबल ने केवल इतना कहा, "यहां बम बनते हैं।" शायद वह इससे अधिक जानता भी नहीं था। मथुरा बाबू बमों का नाम सुन गम्भीर विचार में डूब गये। उन्हें अब समझने में देरी नहीं लगी। वे निटिंग मशीनें नहीं थीं, बम रहे होंगे। इतना समझते ही विद्युत की भांति उनके सम्मुख 'न्यू इयर्स डे' का हत्याकाण्ड चक्कर काटने लगा। मैमनसिंह का भी एक अफसर उस समय मारा गया था। अब उसे पी० के० चौधरी का विस्मय और उसका पेटी देखते ही घबरा जाना, सब भारी अर्थों से भरा प्रतीत होने लगा।

इतना विचार आते ही मथुरा बाबू को अपनी करनी पर शोक होने लगा। यद्यपि वह चाहते थे कि उनके कारखाने की उन्नति हो, परन्तु वह हारान को इस तरह फंसा कर उन्नति करने के पक्ष में नहीं थे। 'उसने हारान पर मुसीबत लाने में हाथ बंटाया है', इस विचार ने उन्हें बहुत ही उतावला कर दिया। वह दुकानदार थे। व्यापारी थे। इस पर भी वह एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी थे। उनके मन में भी, एक दूर कोने में, देश-प्रेम छिपा हुआ था। वह भले ही आतङ्कवाद और हत्याओं को पसन्द न करते हों, परन्तु हारान को, उसके बम बनाने पर भी, बुरा नहीं समझते थे। वह स्वयं बम बनाने से डर सकते थे, परन्तु जो अपनी जान को खतरे में डालकर ऐसा करते थे उन्हें वह निन्दा-योग्य नहीं समझते थे।

इन विचारों में वह मूर्तिवत् कारखाने के पास खड़े रह गये। मिस्टर चौधरी तलाशी को आरम्भ करवा कारखाने के फाटक पर आये तो मथुरा बाबू को वहां विचार-मग्न देखकर पुकारने लगे, "हैलो मथुरा बाबू! आप आगये! आइये भीतर आजाइये।" इस प्रकार मथुरा बाबू को उन्होंने भीतर कर लिया। चपरासी ने तलाशी लेकर उन्हें भीतर आने दिया। मि० चौधरी कहने लगे, "यहां के तो चपरासी भी बहुत चतुर प्रतीत होते हैं।"

मथुरा बाबू ने सूखे हुए कण्ठ से कहा, "हां।"

मि० चौधरी ने मथुरा बाबू को हारान के दफ्तर में ले जाकर कहा, "मैंने कहा न था कि मैमनसिंह आ रहा हूँ।"

मथुरा बाबू के माथे पर पसीने की बूंदे झलकने लगी थीं। उन्होंने बहुत कष्ट से कहा, "मैं नहीं जानता था।"

"हां, आप नहीं जानते थे कि मैं खुफिया-पुलिस का अफसर हूँ और जो कुछ आपने कल बताया था वह सरकार के बहुत लाभ की बात थी।"

"वह निटिंग मशीन······।"

"निटिंग मशीन नहीं, टाइम-बम जो 'न्यू इयर्स डे' को फटे थे।"

मथुरा बाबू के मुख से केवल 'ओह' का शब्द ही निकला। इसके पश्चात वह वापिस जाने लगे तो चौधरी बाबू ने कहा, "कुछ काल तक आपको यहां पर ही ठहरना होगा। आपकी गवाही की आवश्यकता होगी।"

मथुरा बाबू स्तब्ध वहां खड़े रह गये। समीप ही एक कुर्सी पर बैठ कर वह गम्भीर विचार में डूब गये।

तलाशी कई घण्टे तक होती रही। जिस वस्तु की खोज में पुलिस आई थी वह नहीं मिली। वहां कोई भी सन्देहोत्पादक वस्तु नहीं थी। इस समय मिस्टर पी० के० चौधरी कुछ चिन्ता-पूर्ण भाव से मथुरा बाबू के पास आकर कहने लगे, "मथुरा बाबू, यहां तो आपकी पेटियों का अथवा उनमें आने योग्य मशीनों का नामोनिशान भी नहीं है। कहीं आपने भूल तो नहीं की।"

मथुरा बाबू यह सुन मन में प्रसन्नता अनुभव करने लगे। बोले, "हो सकता है, मिस्टर चौधरी।"

"आपको हमें बयान देना होगा।"

"क्या?"

"जो कुछ आपने मुझे कल बताया था।"

"परन्तु आप ही तो कह रहे हैं कि मेरी भूल हो सकती है।"

"हां, परन्तु वह भूल तो पेटी के पहिचानने में हो सकती है, निटिंग

मशीनों के किस्से में तो नहीं।"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा। मैं नहीं जानता यह क्या हुआ है। मैं कुछ नहीं जानता और मैं कुछ बयान नहीं दूंगा।"

इस समय हारान तलाशी लेने वाले लोगों को साथ लेकर दफ्तर में चला आया। मथुरा बाबू के अन्तिम शब्द उसके कान में पड़ गये थे। वह चकित हो पूछने लगा, "क्यों साहब, क्या बयान नहीं दोगे?"

"मैं नहीं जानता," मथुरा बाबू ने दृढ़ता से कहा।

इस पर मिस्टर चौधरी बोले, "कुछ नहीं जानते? और कल जो तुमने बतलाया था, क्या वह झूठ था?"

"मैंने जो कल बतलाया था वह सर्वथा सत्य था। परन्तु उस बात के अभिप्राय को आप न समझ सकें तो मेरा क्या दोष है?"

मिस्टर चौधरी ने सुप्रिन्टेंडेंट-पुलिस से जो तलाशी लेने आया था कहा, "सब कागज़ात पर हस्ताक्षर करवा लो और मथुरा बाबू के बयान लिख डालो।"

"क्या अभी और यहां?"

"हां, पश्चात हम देखेंगे कि क्या किया जाय।"

तलाशी का मामला तो स्पष्ट था। पुलिस को कुछ भी काम की वस्तु नहीं मिली यह लिख कर उपस्थित लोगों में से एक दो के हस्ताक्षर करवा लिये गये और पश्चात सुप्रिन्टेंडेंट-पुलिस एक कागज निकाल मेज के पास कुर्सी पर बैठ लिखने लगा। मथुरा बाबू का नाम, पिता का नाम और पता लिख कर मि० चौधरी के मुख की ओर देखने लगा। मिस्टर चौधरी बहुत परेशानी की अवस्था में थे और हाथ से शिकार निकलता जान क्रुद्ध थे। उन्होंने मथुरा बाबू को डांट कर कहा, "देखो बाबू साहब, यह मामला बहुत गम्भीर है। बीसियों के खून की बात है। कहीं ऐसा न हो कि वास्तविक दोषी के स्थान पर आपके गले में फांसी पड़ जाय। इस कारण जो बताना हो सत्य सत्य बता दो। हां, तो बताओ वह सन्दूक जो कल तुम मेरे पास लाये थे कहां है?"

मथुरा बाबू इस समय तक शांत-चित्त हो चुके थे। वह समझने लगे थे कि इस मामले में कोई भी बात हारान के सम्बन्ध की नहीं करनी चाहिये। साथ ही वह यह भी समझते थे कि अपने आपको भी सुरक्षित रखने का यत्न करना चाहिये। उन्होने उत्तर दिया, "सन्दूक तो मैं रेल के डिब्बे में छोड़ आया हूँ।"

"अपने साथ क्यों नहीं लाये? उस पर तुमने एक रुपया खर्च किया था।"

"वह था तीन आने के दाम का। एक टूटा संदूक उठाते हुए मुझे लज्जा प्रतीत हुई, मैंने उसे छोड़ दिया।"

"वह संदूक तुमको कहां से मिला था?"

"बाजार में एक कबाड़ी के पास से।"

"तुमने उसका क्या दाम दिया था?"

"एक रुपया।"

"इतना अधिक दाम क्यों दिया? वह तो तीन आने दाम की वस्तु थी।"

"हां, परन्तु मैं समझता था कि वह मेरे काम की होगी।"

"किस काम की होगी?"

"मेरा विचार था कि सन्दूकची वैसी ही है जैसी मैंने एक मशीन के साथ देखी थी।"

"कौन मशीन?"

"एक निटिंग मशीन। परन्तु अब मैं समझता हूं यह मेरा भ्रम था। उसमें क्या था मैं नहीं बता सकता?"

"उसमें एक बम भी बन्द हो सकता है?"

"मैंने बम कभी नहीं देखा। सो यह मैं कैसे बता सकता हूं?"

"बम एक छोटी सी गोल वस्तु होती है। वह उस डिब्बे में आसकती है।"

"मैं नहीं जानता। यह तो आप अपने बयान में बता सकते हैं।"

"वैसा सन्दूक एक निटिंग मशीन के साथ आपने कहां देखा था?"

"मेरा विचार था कि हारान बाबू के कारखाने का वह सन्दूक है।

परन्तु मैं निश्चय से नहीं कह सकता। मेरा केवल अनुमान-मात्र था।"

"तो कल तुमने मुझे यह क्यों कहा था कि तुम्हें विश्वास है?"

"जिस बात को मैं कल निश्चित समझता था वह आज अनिश्चित प्रतीत होती है। मनुष्य की बुद्धि ही तो है।"

इसके पश्चात हारान बाबू के बयान लिखे गये। मिस्टर चौधरी पूछने लगे, "दिसम्बर मास में एक दिन मथुरा बाबू तुम्हारे कारखाने में आये थे क्या?"

"हां।"

"किस कारण से आये थे?"

"कमिश्नर साहब की मोटर का बेयरिंग टूट गया था और वह शीघ्र बनवाना था। मथुरा बाबू के कारखाने में वह इतना शीघ्र नहीं बन सकता था। इस कारण वह हमसे बनवाने को लाये थे। हमारे पास वैसा बना हुआ तैयार था।"

"उस समय कोई पार्सल मथुरा बाबू ने बिकते अथवा लोगों को दिये जाते देखे थे क्या?"

"हो सकता है।"

"मथुरा बाबू ने पूछा था कि उनमें क्या था?"

"मुझे स्मरण नहीं। हो सकता है कि पूछा हो।"

"तुमने क्या उत्तर दिया था? क्या तुमको स्मरण है?"

"यदि उन्होंने पूछा होगा तो अवश्य मैंने उत्तर दिया होगा। मैंने निश्चय वही वस्तु बताई होगी जो उस पार्सल में रही होगी।"

"मथुरा बाबू कहते हैं कि पार्सल में एक विशेष प्रकार की निटिंग मशीन थी। तुमने ऐसा ही बताया था?"

मुझे तो कुछ स्मरण नहीं। निटिंग मशीनें न हमने बनाई हैं, न बेची हैं। हां, मशीनों के नट अवश्य बेचे हैं। बेचे भी सन्दूकों में बन्द करके हैं।"

इस पर मि० चौधरी चकराये और उन्होंने फिर पूछा, "निटिंग

मशीनें अथवा मशीन-नट्स ?"

"मशीन-नट्स हम बनाते हैं और बेचते हैं। निटिंग मशीनों की बाबत मैं कुछ नहीं जानता।"

इसके पश्चात मिस्टर चौधरी और पुलिस के सब लोग वहां से विदा हो गये। कारखाने से बाहर निकलते समय मिस्टर चौधरी ने मथुरा बाबू से कहा, "तुमने हमें बहुत धोका दिया है, और तुम अपने किये पर पछताओगे।"

मथुरा बाबू ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही उदास चित्त हो रहे थे और अपने घर चले गये।

इस घटना के लगभग एक सप्ताह पश्चात हारान बाबू और मथुरा बाबू दोनों पकड़ कर 'डैटिन्यूज़' बना लिये गये। इनके काग़ज़ात पर खुफ़िया रिपोर्ट यह थी कि ये अत्यन्त भयङ्कर षड़यन्त्रकारी हैं। यद्यपि इनके विपरीत दोष सिद्ध नहीं किया जा सकता तो भी सरकार को विश्वास हो गया है कि इनको खुला छोड़ देना सर्व-साधारण के लिये महान भय का कारण है।

हारान के पकड़े जाने के पश्चात उसका कारखाना बन्द कर दिया गया। सब सामान नीलाम कर दिया गया और उसमें काम करने वाले कारीगर मैमनसिंह से कहीं बाहर चले गये।

मोहन बाबू मथुरा बाबू के कारखाने के मालिक बन गये। उन्होंने बहुत यत्न किया कि हारान के कारखाने के कारीगर उनके यहां काम करने लगें, परन्तु उनमें से एक ने भी यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।



## आठवां भाग

# अहिंसा-मार्ग

पूर्णिमा ने फिल्म-कम्पनी का काम छोड़ कर अपनी पूरी शक्ति और समय कांग्रेस के काम में व्यय करना आरम्भ कर दिया।

सेट कुँजविहारी भी कलकत्ते में रहते थे और पूर्णिमा का यह कथन, कि मधुसूदन को छुड़ाने का केवल एक उपाय है और वह है कांग्रेस-आंदोलन को सफल बनाना, उन्हें जंच गया था। इस कारण उन्होंने भी इस आंदोलन में एड़ी से चोटी तक का जोर लगा दिया।

नरोत्तम पूर्णिमा का यह नया जीवन देख हंसा करता था। वह कहा करता था कि आखिर हिन्दू स्त्री है। पूजा, पाठ, ध्यान, उपासना, महात्माओं की सेवा, इनसे छूट नहीं सकती। उसका विचार था कि स्त्री भावुकता का पुंज है। संसार भर की स्त्रियों से अधिक भारतवर्ष की हिन्दू स्त्रियां भावुकता के पीछे अपना सर्वस्व दे सकती हैं।

पूर्णिमा अब नरोत्तम के इस उपहास का कुछ उत्तर नहीं देती थी। वह अपने काम में इतनी संलग्न थी कि उसके पास वाद-विवाद के लिये समय नहीं था। घर पर चर्खा कातना, खद्दर की फेरी करना, कांग्रेस-कमेटी की बैठकों में और सर्व-साधारण के लिये जलसों में सम्मिलित होना, व्याख्यान देना, भजन-मण्डलियों को तैयार करना, स्त्री स्वयं-सेविकाओं की परेडों में भाग लेना—अभिप्राय यह कि चौबीस घण्टे में सोलह-सत्रह घण्टे वह सार्वजनिक कामों में व्यस्त रहती थी।

कुछ ही दिनों में पूर्णिमा एक अच्छी खासी नेता बन गई। अब कोई भी जलसा अथवा जलूस होता तो वहां उसे अवश्य आमन्त्रित किया जाता था। अब कांग्रेस-क्षेत्र में उसका एक स्थान बन गया था। उसकी श्लाघा करने वाले, उसके नेतृत्व में चलने वाले, उसकी राय पर बलिहारी जाने वालों की संख्या बहुत हो गयी थी।

डेपुटेशनों में उसकी आवश्यकता होती थी। जलूसों में, जलसों में वह एक बृहत आकर्षण थी। अभिप्राय यह कि वह सागर की एक महान धारा में पड़ गयी। वह उस धारा में बिना इच्छा के और बिना प्रयत्न के बहती जाती थी। वह स्वयं उसमें आनन्द अनुभव करती थी। जब किसी सभा में उसके एक २ वाक्य पर सहस्त्रों की करतल-ध्वनि होती थी तो वह मस्ती से झूम जाती थी। उसे एक प्रकार का नशा सा चढ़ गया

था और उसमें वह अपनी सुध-बुध भूल बैठी थी।

सेठ साहब पूर्णिमा के साथ २ परछाईं की भांति रहते थे। वह समझते थे कि मधुसूदन के लिये यह सब कुछ हो रहा है। इस कारण उनकी दृष्टि में पूर्णिमा एक हिन्दू सती की भांति अपना सुख-आराम जलती चिता में भस्म कर रही थी। एक दो बार उनकी नरोत्तम से भेंट हुई तो नरोत्तम ने उलाहना देते हुए कहा, "आपने पूर्णिमा को एक अति विकट मार्ग पर डाल दिया है।"

सेठ साहब ने उत्तर में कहा, "भैया, यह मैं नहीं, प्रत्युत यह वह है जिसने मुझे इस मार्ग पर घसीट लिया है।"

"क्या आप इसमें सफलता की आशा करते हैं?"

"मैं दार्शनिक नहीं हूँ। मैं तो एक बात जानता हूँ और वह यह है कि कांग्रेस की महानता को अधिक करने से ही मेरे मन की बात हो सकती है। मैं मधुसूदन को छुड़वाना चाहता हूं। मुझे देश में एक भी ऐसी पार्टी नहीं दीखती जो इन कैदियों से सहानुभूति रखती हो। कांग्रेस वालों के विचार अधिक विशाल, उदार और स्वतन्त्र हैं। दूसरे लोग अपनी संकुचित रूढ़ियों में फंसे हुए हैं। उनसे मुझे किंचितमात्र भी आशा नहीं। तुम्हारी बहिन इस बात को समझती है और वह इसके लिये प्रयत्न कर रही है। मुझे भी ऐसा ही ठीक प्रतीत होता है। इस कारण मैं भी यही कर रहा हूँ।"

कांग्रेस में केवल देवता ही सम्मिलित हों, ऐसा नहीं था। कुछ ऊंचे मस्तिष्क ( high brows ) पूर्णिमा को एक तुच्छ नर्तकी 'सिनेमा-एक्ट्रेस' और सेठ साहब की प्रेमिका समझते थे। वे लोग उससे बातचीत करना भी अपना अपमान समझते थे। महात्मा गांधी के आंदोलन में ऐसे लोग भी सम्मिलित थे जो चरित्र की महिमा बहुत ऊंचे स्वर से गाते थे। परन्तु नेता लोग जब यह देखते थे कि पूर्णिमा का नाम विज्ञापन में देने से अधिक लोग इकट्ठे होते हैं, उसे जलूस में ले जाने से रौनक बढ़ जाती है और डैपुटेशनों में रखने से चन्दा अधिक मिलता है तो वे

उसको निमन्त्रण देने पर बाध्य हो जाते थे। उसे एक साधारण स्त्री मानते हुए भी वे उसे मंच पर सहन कर लेते थे।

कुछ लोग ऐसे भी थे जो पूर्णिमा के इस उत्साह-पूर्ण अनथक प्रयत्न में कोई प्रेम-कथा छिपी पाते थे। ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं थी जो पूर्णिमा के चंचल नेत्रों के प्रकाश में अपने आपको कृत-कृत्य करना चाहते थे अथवा उसके चन्द्र-तुल्य मुख की मुस्कराहट देखने के लिये लालायित रहते थे। अतएव उच्च मस्तिष्कों की घृणा कांग्रेस-क्षेत्र में पूर्णिमा की उन्नति को रोक नहीं सकी।

इन्हीं दिनों आलोक-फिल्म-कम्पनी का 'काली चित्र' प्रदर्शन के लिये रखा गया। इस पिक्चर ने जहां पूर्णिमा की ख्याति को चार चांद लगा दिये, वहां फिल्म-कम्पनी की आय को भी कई गुणा बढ़ा दिया। संसार की गति ऐसी ही है। असम्बन्धित बातें भी परस्पर एक दूसरे की सहायक हो जाती हैं।

[ २ ]

अचानक एक दिन यह समाचार मिला कि महात्मा गांधी, वाइसराय के उत्तर से असंतुष्ट हो, साबरमती के आश्रम के साठ सत्याग्रहियों को लेकर नमक-कर के विरोध में सत्याग्रह करने के लिये डण्डी को चल पड़े हैं। देश भर के लोग अवाक् मुख इस नये ढंग के सत्याग्रह के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे। अभी देश भर के लोगों को महात्मा जी का यही आदेश था कि वे प्रतीक्षा करें। उनके पकड़े जाने के पश्चात देश-व्यापी सत्याग्रह आरम्भ किया जाय।

नमक-सत्याग्रह एक सांकेतिक आंदोलन था। इसका अभिप्राय यह था कि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों पर कर लगाने का अधिकार नहीं है। इस कारण कोई सब से सर्व-व्यापक कर देना बन्द करने का निर्णय हुआ। महात्मा गांधी ने नमक-कर का विरोध सब से अधिक उपयुक्त समझा। डण्डी गुजरात प्रांत में सागर-तट पर एक स्थान है। वहां समुद्र के जल से नमक निकाला जाता है। महात्मा गांधी अहमदाबाद से पैदल

वहां पहुंचे। उनके साथ साबरमती आश्रम के साठ सत्याग्रही थे। उन्होंने वहां नमक, बिना कर दिये, तैयार करने का यत्न किया और सरकार ने उन्हें इस अपराध में पकड़ लिया। उन पर मुकदमा चलाया गया और जेल भेज दिया गया।

विद्युत की भांति देश भर में यह समाचार फैल गया और स्थान २ पर नमक-सत्याग्रह आरम्भ हो गया। जहां कहीं भी नमक वाले जल का पता मिला लोग वहां पहुंचे और नमक बनाने का यत्न करने लगे। ये सत्याग्रही नमक बना कर सरकार को कर नहीं देना चाहते थे। इस कर का न देना ही सत्याग्रह था और सरकार इसे पसन्द नहीं करती थी। दो मास के भीतर सत्तर हजार से ऊपर लोग कारावास में भेज दिये गये। इस पर भी सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ।

कलकत्ते में भी नमक-सत्याग्रह आरम्भ किया गया। बारी २ से, छोटे २ झुँडों में लोग नमक बनाने के लिये श्रद्धानन्द-पार्क में एकत्रित होते थे और हजारों की भीड़ में बन्दी बना लिये जाते थे। जब ये सत्याग्रही बन्दी बना अदालत में उपस्थित किये जाते तो ये लोग मुकदमे की पैरवी नहीं करते थे और इनको केवल पुलिस के बयान पर दण्ड दे दिया जाता था।

ऐसा प्रतीत होता था कि इस अभिनय से सरकार कुछ थक गई है। इस कारण उसने धारा १४४ के अनुसार जलसे-जलूस बन्द कर दिये और लोगों को एक स्थान पर एकत्रित होने से रोक दिया। इस आज्ञा के लागू होते ही जो पहला जलसा हुआ वह लाठियां मार २ कर तितर-बितर कर दिया गया। अब नमक बनाने के लिये केवल वही लोग आते थे जो लाठियों की मार खाने को तैयार रहते थे।

एक दिन पूर्णिमा की बारी भी आई। कांग्रेस-कमेटी के प्रायः सब बड़े २ सदस्य पकड़े जा चुके थे। कुछ छोटे-मोटे लोग और नये बनने वाले सदस्य सत्याग्रह के लिये आ रहे थे। इस पर भी सत्याग्रहियों का तांता बंधा हुआ था। ये लोग सिर फुड़वाने के लिये तैयार होकर आते

थे। पूर्णिमा की इच्छा थी कि केवल सत्याग्रही-स्त्रियां ही उसके साथ हों। अतएव उसने स्त्रियों का एक जत्था तैयार किया। यह जत्था एक सौ एक स्त्रियों का था। इतना बड़ा जत्था अभी तक पुरुषों का भी नहीं निकला था। यह पूर्णिमा की सर्व-प्रियता के कारण था।

कलकत्ते भर में धूम थी कि पूर्णिमा एक सौ सत्याग्रही-स्त्रियों के साथ जलूस बनाकर निकलेगी। पुलिस वाले भी इस बात को जान गये थे, परन्तु वे निर्णय नहीं कर सके कि वे इनके साथ पुरुषों का सा व्यवहार करें अथवा न। अफसर स्त्रियों पर लाठियों के प्रयोग के विरोधी थे, परन्तु उनको पकड़ ले जाना भी सहज नहीं था। वे जानते थे कि स्त्रियां सड़क पर लेट जायेंगी। उनको उठाने के लिये यदि हाथ लगाया गया तो सम्भव है दर्शकों में जोश फैल जाय और बलवा हो जाय। परिस्थिति बहुत विकट थी।

पुलिस अपने पूरे दल-बल के साथ ग्रे स्ट्रीट के कोने पर खड़ी थी। जलूस आया। सब से आगे पूर्णिमा थी। पीछे पांच-पांच की पंक्तियों में अन्य सत्याग्रही-स्त्रियां थीं। जलूस के दोनों ओर हजारों की संख्या में लोग थे। नवयुवकों ने हाथ पकड़ कर स्त्रियों के चारों ओर घेरा डाला हुआ था ताकि भीड़ में वे कुचल न जावें।

जलूस के चलते २ पूर्णिमा और उसकी कुछ साथिनों ने गाना आरम्भ किया :—

हम कौम के भाग जगा देंगे।
सिर धड़ की बाजी लगा करके॥
इन लाठियों, बरछों, भालों से न डरा हमको हम डरते नहीं।
सच्चाई की बीन बजा करके हम झूठ का दुर्ग उड़ा देंगे॥
अब और जुल्म नहीं सह सकते मत छेड़ो कौमी दीवानों को।
रख जान हथेली में निकले हैं यह पाप की नगरी मिटा देंगे॥

गाना धीरे २ अधिक और अधिक जोर पकड़ता गया। जलूस की सब स्त्रियां गाने लगीं। इस गाने में और उस समय की परिस्थिति में

कुछ जादू भरा था। जो युवक घेरा बनाये थे वे और घेरे के बाहर के लोग भूल गये कि वे जलूस का अंग नहीं हैं। वे भी गाने लगे। लाखों नर-कण्ठों की ध्वनि-प्रतिध्वनि से आकाश गूंज उठा।

यह बृहत जन-समूह समुद्र के ज्वार-भाटे की भांति गरजता हुआ उमड़ा चला आता था। एक बार तो पुलिस के लोगों के मन भी दहल गये। लगभग दो सौ पुलिस-कानस्टेबल लाठियां हाथों में लिये हुए कुछ पुलिस-अफसरों और दो मजिस्ट्रेटों के आधीन इस बहती हुई बाढ़ के सम्मुख चट्टान की भांति खड़े थे। एक बार तो पुलिस-अफसरों के मन में अपनी शक्ति पर सन्देह हुआ। वे कुछ डर गये। वे सोचते थे कि कहीं इस तूफान में वे एक घास-फूस के झोंपड़े की भांति बह न जायें। इस भय में एक बात थी जो उनके हृदय को सांत्वना देती थी। वह थी महात्मा गांधी का सत्याग्रहियों को अहिंसात्मक रहने का आदेश। वे समझते थे कि जब तक ये लोग अहिंसा-पथ पर आरूढ़ हैं तब तक वे भेड़-बकरियों से अधिक नहीं। वे उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

जलूस पुलिस के सम्मुख पहुँच कर खड़ा होगया। लोग आस-पास के मकानों के छज्जों, खिड़कियों और छतों पर लदे हुए थे। सड़क के बीच एक सौ एक स्त्रियां केसरी साड़ियां पहने हुए पंक्ति-बद्ध खड़ी थीं। सब के आगे पूर्णिमा थी। स्त्रियों के आस-पास घेरा बांधे हुए कुछ युवक थे। घेरे के बाहर असंख्य जन-समूह था। एक मजिस्ट्रेट किसी ऊंचे स्थान पर खड़ा हो गया और जोर से चिल्ला कर कहने लगा, "यह जलूस धारा १४४ के अनुसार वर्जित है। तितर-बितर हो जाओ, अन्यथा लाठी-चार्ज किया जायगा।"

जलूस की स्त्रियां वहीं सड़क पर बैठ गयीं। कोई वहां पर एक स्टूल ले आया। पूर्णिमा ने उस पर खड़े होकर हाथ ऊंचा कर लोगों को चुप हो जाने को कहा। जैसे जादू के डण्डे से किसी को सम्मोहित कर लिया जाता है वैसे ही यह अतुल जन-समूह पूर्णिमा का हाथ उठते ही एकदम चुप होगया। ऐसी शांति जैसी निर्जन वन में होती है। पुलिस के अफसर

इस जादू भरे व्यक्तित्व से घबरा गये। वे यह जानते थे कि जो लोगों पर इतना प्रभाव रखती है वह उनसे कुछ भी करवा सकती है। मुट्ठी भर पुलिस वालों की इतने लोगों के सम्मुख क्या गणना थी। यदि कुछ आशा थी तो यह कि पूर्णिमा और अन्य सत्याग्रहियों ने अहिंसा का व्रत लिया हुआ था। वे भली भांति समझते थे कि पूर्णिमा यदि कुछ बोलेगी तो हिंसा के विरोध में बोलेगी और इस प्रकार पुलिस के काम में सहायता देगी। इस कारण इस चुप में वे भी सम्मिलित थे।

पूर्णिमा ने कहा, "आप जानते हैं कि हम सत्याग्रह क्यों कर रहे हैं? हम ऐसी सरकार को कर नहीं देना चाहते जो हमारे दिये गये कर से बड़े २ वेतन लेने के अतिरिक्त हमारा कुछ भी भला नहीं करती। सब करों से अधिक अन्यायपूर्ण, अधिक व्यापक और गरीबों के जीवन पर प्रभाव डालने वाला नमक-कर है। हमने निश्चय किया है कि हम यह कर नहीं देंगे। सरकार यह कर लाठियों के बल से प्राप्त करना चाहती है। हमने व्रत लिया है कि लाठी का उत्तर लाठी से नहीं देंगे। हम तो अपना काम करेंगे अर्थात् नमक जो हमारे देश में उत्पन्न होता है एकत्रित करेंगे। यह बात हम करेंगे। चाहे लाठियां चलें, चाहे बन्दूकें। हमारे नेता का कहना है कि किसी अत्याचारी के हाथों को रोकने का सब से बढ़िया उपाय उसके अत्याचार को सहन कर भी अपने काम में संलग्न रहना है।

"अभी लाठियां चलेंगी, सिर फूटेंगे, हाथ-पांव टूटेंगे। अनेकों की जानें जायेंगी। यह कोई ऐसी बात नहीं जिससे हम घबरा जायें। हम तो यह सब जानते हुए निकले हैं। हां एक बात है। इन लाठियों को खाते हुए भी हमें किसी पर प्रहार नहीं करना चाहिये। हम और ये पुलिस वाले भी जानते हैं कि यदि यह सब जन-समूह प्रहार करने लगा तो वह इनको कच्चा चबा जायगा। परन्तु यह हमारा काम नहीं है। हमने तो कर देने की अवहेलना करनी है। हिंसा का उत्तर नहीं देना।

"यदि आप में से कोई यह समझता है कि वह लाठियों और अस्त्र-

शस्त्रों का प्रहार नहीं सह सकता तो वह यहां से चला जाय। आज की लड़ाई तो ऐसी ही होगी।

इन लाठियों बरछों भालों से, न डरा हमको हम डरते नहीं।
सच्चाई की बीन बजा करके, हम झूठ का दुर्ग उड़ा देंगे।
सिर-धड़ की बाजी लगा करके, हम देश के भाग जगा देंगे।

जब सब लोग यह गीत गा रहे थे, पूर्णिमा की दृष्टि समीप ही घेरा बांधने वाले युवकों में से एक पर पड़ी। वह कमल था। लोग गा रहे थे, परन्तु उसकी आंखों में एक विशेष चमक थी। वह एकटक पुलिस-इन्सपैक्टर की ओर देख रहा था। पूर्णिमा इसका अभिप्राय समझ गयी। उसने समझा कि कोई हत्याकांड होने वाला है। 'एक्शन' के पूर्व कमल की आंखों में ऐसी चमक वह पहले भी देख चुकी थी। इस विचार के मन में उठते ही उसका मुख पीला पड़ गया। उसने विद्युत की तरह अपने कार्य का निर्णय कर लिया। तुरन्त उसका मुख जोर से भिच गया, मानों उसने कोई विकट निश्चय कर लिया हो।

पूर्णिमा की इस छोटी सी वक्तृता के पश्चात फिर घोर नाद आरम्भ हो गया। तुमुल शोर में कोई किसी की सुन नहीं सकता था। पुलिस इन्सपैक्टर ने यत्न किया कि भीड़ को वहां से हटा दे। पुलिस वालों ने स्त्रियों के गिर्द घेरा बनाने का यत्न किया, परन्तु जो घेरा पहले बना हुआ था वह टूटा नहीं। इसमें कुछ खैंचातानी होने लगी। एक ओर तो पुलिस और भीड़ में धक्केबाजी भी आरम्भ हो गयी। पुलिस सत्याग्रहियों को घेरे में ले लेना चाहती थी। लोग यह नहीं चाहते थे। धक्केबाजी का यही कारण था। इसी बीच में किसी ने एक पुलिस-कानस्टेबल की पगड़ी उछाल दी। वह लोगों के सिरों के ऊपर गेंद की भांति उछलने लगी।

पुलिस-इन्सपैक्टर और दूसरे अफसरों ने बात को सीमा के बाहर होता देख पुलिस के सिपाहियों को एक पंक्ति में खड़ा होने की आज्ञा दे दी।

पुलिस वालों ने लाठियां तान लीं। लोग अभी कानस्टेबल की पगड़ी से खेल ही रहे थे कि लाठी-चार्ज का हुक्म दे दिया गया। लाठियां लोगों

पर बरसाई जा रही थीं। सत्याग्रहियों पर नहीं। सत्याग्रही-स्त्रियां भूमि पर बैठी थीं।

पूर्णिमा यह कुछ नहीं देख रही थी। उसका ध्यान कमल पर था। कमल अभी भी पुलिस-इन्सपैक्टर की ओर देख रहा था। एक हाथ उसका जेब में था। पूर्णिमा समझती थी कि इस जेब वाले हाथ में रिवाल्वर है।

लाठी-चार्ज से लोगों की भीड़ तितर-बितर हो रही थी। युवकों का घेरा टूट गया था। यह ठीक था कि बीसियों लाठियों से घायल सड़क पर लोट-पोट हो रहे थे, परन्तु प्रायः लोग भाग खड़े हुए थे। इसी समय इन्सपैक्टर-पुलिस लपक कर पूर्णिमा के पास पहुंचा। पूर्णिमा का ध्यान उसकी ओर नहीं था। वह देख रही थी कि कमल का हाथ जेब से बाहर निकल रहा है और उसमें कुछ काली वस्तु पकड़ी हुई है।

बात करने का समय नहीं था। इन्सपैक्टर पूर्णिमा को क्या कहने अथवा करने आया था, जानने का समय नहीं था। कमल निशाना बांध रहा था। पूर्णिमा ने इन्सपैक्टर को बड़े जोर से धक्का दे दिया। वह पीठ के बल गिर पड़ा और पूर्णिमा उसके सम्मुख खड़ी हो गई। इसी समय गोली चलने का शब्द हुआ और पूर्णिमा की चीख निकल गयी। उसके कन्धे से रक्त की धारा बहने लगी और वह बेहोश होगयी।

लोगों ने, जो मकानों पर खड़े देख रहे थे, समझा कि इन्सपैक्टर ने पूर्णिमा को हाथ से पकड़ कर खैंचा है और पांव फिसलने से वह गिर पड़ा है। इससे पुलिस ने गोली चला दी है। इधर लोगों ने, गोली की आवाज सुन और लाठियां के धक २ चलने का शब्द सुन, ईंट और पत्थरों की बौछार आरम्भ कर दी। पुलिस ने भी पूरे जोर से लाठियां चलाईं।

पांच मिनट के भीतर वह विशाल जन-समूह शून्य में विलीन होगया। केवल कई सौ जख्मी सड़क पर इधर उधर पड़े थे। स्त्री-सत्याग्रहियों में भी बीसियों के चोटें आई थीं। पुलिस के भी तीन-चार लोग पत्थरों से घायल हुए थे। इन्सपैक्टर-पुलिस [illegible]ए बाल बाल बच गया। उसने

उठते ही गोली चलाने वाले की तलाश आरम्भ कर दी, परन्तु वहां इतनी घमसान मची हुई थी कि गोली चलाने वाले का पता नहीं चला।

सब सड़क पर दूर दूर तक हाय हाय और कराहने के अतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई नहीं देता था। पुलिस ने पूर्णिमा को एम्बुलेंस-कार में लाद कर अस्पताल भेज दिया। दूसरे घायलो को दूसरी गाड़ियो में लाद कर कांग्रेस के लोग ले गये।

पूर्णिमा की अवस्था शोचनीय थी। गोली उसकी पीठ में कंधे की हड्डी पर लगी थी। हड्डी टूट गयी थी, परन्तु गोली वही पर अटक गयी थी। जब वह अस्पताल में पहुँची तो वह बेहोश थी और कंधे से रक्त-स्राव हो रहा था।

डाक्टर ने 'ऑपरेशन' कर गोली निकाल डाली और घाव को सी डाला।

[ ३ ]

इन्सपेक्टर-पुलिस जब थाने में पहुंचा तो रिपोर्ट तैयार होने लगी। सीनियर सुप्रिन्टेडेन्ट ऑफ पुलिस वहां पर उपस्थित था। उसने इन्सपैक्टर से घटना का सब वर्णन सुना और पूछा, "तो गोली तुम लोगो ने नहीं चलाई ?"

"हजूर, नहीं। गोली किसी ने भीड़ में से चलाई थी। जब मै पूर्णिमा देवी के पास पहुचा तो वह भीड में किसी को देख रही थी। मेरे और पास पहुंचने पर अकस्मात उसने मुझे धक्का दे दिया। मेरा पाव किसी वस्तु से अटक गया और मैं गिर गया। वह मेरे ऊपर होगयी। इसी समय गोली चली।"

"तो तुमने उसे नहीं धकेला ?"

"नहीं। मैंने तो उसे हाथ भी नहीं लगाया। उसने धक्का इतना अकस्मात दिया था कि मैं सम्भल नहीं सका। मेरी समझ में तो यही आता है कि मुझे गोली से बचाने के लिये वह मेरे आगे खड़ी हो गयी थी।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट यह बयान सुन कर चकित रह गया। कहने लगा, "ये शैतान सत्याग्रही गजब कर रहे हैं। अपनी जान तक को हथेली में लिये

घूम रहे हैं। अच्छा, क्या इन औरतों में से कोई भागी?"

एक भी नहीं। सब की सब सड़क पर बैठ गयी थीं। जब लाठियां पड़ने लगीं तो उनके मुख से 'हरिनाम सिमर, हरिनाम सिमर' के अतिरिक्त कुछ नहीं निकला। उन्होंने सिर नीचे कर पीठ पर लाठियां ऐसे खाईं मानो कोई उन्हें प्यार दे रहा हो। एक और बात देखी। एक दस-ग्यारह वर्ष का लड़का हाथ में पत्थर ले मारने को तैयार था। एक सत्याग्रही-स्त्री ने उसे देख लिया। उसने उसका हाथ पकड़ लिया। इतने में एक कानस्टेबल वहां पहुंच लड़के पर प्रहार करने लगा। उस स्त्री ने उस लड़के को गोदी में ले लिया और आप उसके ऊपर हो गयी। कानस्टेबल की लाठी रुकी नहीं। धकधक उस स्त्री की पीठ पर पड़ती गयी। वह बेहोश हो गयी। मुझसे नहीं रहा गया। मैंने उस कानस्टेबल को रोक दिया।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट एक लम्बी आह खैंच कर चुप हो गया। उसकी आंखें कुछ भीग आई थीं। जेब से रूमाल निकाल अपना चशमा पूंछते हुए कहने लगा, "मैं अस्पताल में जा रहा हूं। तुम रिपोर्ट तैयार करवा दो।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट अपनी कार में अस्पताल पहुंचा तो उसने देखा कि वहां कांग्रेस के मुख्य लोग एकत्रित हैं। उसके पांव तले से मिट्टी खिसक गयी। उसे पूर्णिमा की मृत्यु की आशंका होगयी थी। परन्तु वहां लोगों से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि पूर्णिमा की माता और भाई वहां हैं और उनको पूर्णिमा के पास जाने की इजाज़त नहीं मिल रही। इस कारण भीड़ एकत्रित हो रही है।

पूर्णिमा की गोली निकाल दी गयी थी और घाव पर पट्टी कर दी गयी थी। परन्तु वह अभी क्लोरोफ़ार्म के प्रभाव से अचेत थी। डाक्टर का विचार था कि ज़ख्म बहुत गहरा है, परन्तु किसी मर्म स्थान को चोट नहीं आई। वह बच जायगी।

सेठ कुंजबिहारी ने सुप्रिन्टेंडेन्ट-पुलिस से पूछा, "क्यों साहब, पूर्णिमा बन्दी है या मुक्त?"

सुप्रिन्टेंडेन्ट इस प्रश्न से चकराया। वह इस प्रश्न के उत्तर के

लिये तैयार नहीं था। बोला, "मुझे कुछ मालूम नहीं। आपका इससे मतलब ?"

"मतलब तो बहुत सीधा है। यदि वह बंदी है तो हम उसके आराम के लिये प्रेज़ीडैन्सी मैजिस्ट्रेट से मिलें और यदि मुक्त है तो अस्पताल के लोगों से कह उसे जरनल वार्ड से निकाल प्राइवेट वार्ड में ले जाने के लिये प्रबन्ध करें। जरनल वार्ड में उसकी सेवा-सुश्रूषा शायद ठीक नहीं हो सकेगी।"

सुप्रिन्टैंडेन्ट ने कुछ सोचकर कहा, "उसके वन्दी होने या मुक्त होने के विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। इस पर भी उसके प्राइवेट वार्ड में ले जाने और उसके सम्बन्धियों के पास ठहरने का प्रबन्ध मैं किये देता हूँ।"

इतना कह कर उसने अस्पताल के अधिकारियों से मिलकर सब प्रबन्ध करवा दिया।

एसोशियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि के पूछने पर उसने कहा, "गोली पुलिस ने नहीं चलाई। यह गोली इन्सपैक्टर पुलिस पर चलाई गयी थी। केवल इत्तफ़ाक से पूर्णिमा को लग गयी है। गोली चलाने वाले की तलाश की जा रही है।"

इस घटना के कई दिन बाद की बात है। पूर्णिमा अभी अस्पताल में थी। हड्डी का एक टुकड़ा अभी भीतर रह गया था। इस कारण दुबारा ऑपरेशन की आवश्यकता हुई थी। अब उसे हल्का ज्वर भी रहने लगा था। नरोत्तम और उसकी मां की चिन्ता बढ़ रही थी। दिन प्रति दिन पूर्णिमा दुर्बल होती जाती थी।

पुलिस ने पूर्णिमा पर मुकदमा चलाने का विचार छोड़ दिया था। इसमें सीनियर सुप्रिन्टैंडेन्ट-पुलिस का बहुत हाथ था। वह पुर्णिमा पर गोली चलाने वाले का नाम बताने से इन्कार करने के कारण बहुत प्रभावित हुआ था।

वह एक दिन पूर्णिमा का बयान लेने के लिये सब-इन्सपैक्टर-पुलिस

को लेकर अस्पताल में पहुंचा। उसने पूछा, "तो तुमने गोली चलाने वाले को देखा था?"

"हां।"

"तुम उसको पहचानती हो?"

"हां।"

"तुम उसका नाम और परिचय भी जानती हो?"

"हां।"

"हां तो वह कौन था?"

"मैं नहीं बताऊंगी।"

"क्यों?"

"मैं लोगों को फंसाने अथवा उनको फांसी दिलाने के लिये नहीं हूँ।"

"परन्तु उसने तो पुलिस-इन्सपैक्टर को मार डालने की कोशिश की थी। तुम्हें तो लगभग मार ही डाला था। ऐसे व्यक्ति पर दया करना तो हिंसावाद को प्रोत्साहन देना है।"

"उसने भूल की थी और वह भूल कर रहा है। ऐसी ही भूल जैसी कि पुलिस के लोग निहत्थों पर लाठियां मार २ कर करते हैं। यदि मैंने एक पुलिस के अफसर की, जो गोली चलाने वाले से कम हिंसा करने वाला नहीं, जान बचाने के लिये अपनी जान दे दी थी, तो मैं गोली चलाने वाले को बचाने के लिये भी अपने पर कष्ट सहन कर सकती हूँ। पुलिस के अफसर की जान बचानी यदि बहादुरी और अच्छा काम है तो गोली मारने वाले की जान बचाना अच्छा काम क्यों नहीं? मेरी दृष्टि में दोनों भूल कर रहे थे। दोनों एक समान दोषी हैं। दोनों की भूल सुधारने का मेरे पास एक ही उपाय है और वह है अपने पर कष्ट सहना। उन पर कष्ट न आने देना।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने फिर कहा, "परन्तु दोनों में बड़ा अन्तर है। एक तो कानून से निर्मित सरकार का दूत है और दूसरा स्वेच्छाचारी। एक तो केवल दूसरे के हाथ में हथियार है और दूसरा विचार कर, हानि-लाभ

जानकर, खूनी।"

"जिसको तुम कानून कहते हो उसे हम अन्याय कहते हैं। ऐसे कानून से निर्मित सरकार अन्याय के आधार पर बनी है। उसके एजेन्ट अन्याय की पुष्टि तथा समर्थन करने वाले हैं। इस पर भी जब ऐसे अन्याय करने वाले को भी कोई मारना चांहता है तो मैं उसकी जान बचाना अपना धर्म समझती हूं। इसी प्रकार गोली चलाने वाले को आततायी समझते हुए भी मैं उसकी जान बचाऊंगी, चाहे मुझ पर कितना ही कष्ट क्यों न आवे।"

इन सीधे-सादे शब्दों ने सुप्रिन्टेंडेन्ट-पुलिस के दिमाग़ में हलचल मचा दी थी। एक सत्याग्रही के मन का चित्र उसके सम्मुख आज नग्न होकर आया था। उसने बयान वाले काग़ज़ को बन्द कर एक बार ध्यान से पूर्णिमा के मुख की ओर देखा और यह कहते हुए उठा खड़ा हुआ, "मिस पूर्णिमा, क्षमा करना। मैंने आपको व्यर्थ कष्ट दिया है। यथार्थ में मुझे आपसे गोली चलाने वाले का नाम-धाम पूछने का यत्न ही नहीं करना चाहिये था। यदि आप शत्रु की, जो आप पर लाठियों से प्रहार कर रहा हो, जान बचाने के लिये अपनी जान दे सकती हैं, तो आपसे यह आशा नहीं करनी चाहिये थी कि आप किसी और को, चाहे वह कितना ही दोषी क्यों न हो, फंसाने में भाग लेंगी। अच्छी बात, अब मैं जाता हूँ और अब आपके बयान लेने नहीं आऊंगा।"

सीनियर सुप्रिन्टेंडेन्ट-पुलिस एक पंजाबी अधेड़ उम्र के हिन्दू थे। इनका नाम रामचन्द्र टंडन था। मिस्टर टंडन बहुत साहस और बुद्धि रखते थे। इन्होंने कई षड़यंत्र के मुकदमों की खोज में भाग लिया था। एक बम केस में इन्होंने बहुत ही महनत और चतुराई से मुकदमे के रहस्य को सुलझाया था। यही कारण था कि एक हिन्दुस्तानी होते हुए भी महकमा-पुलिस के इतने बड़े ओहदे पर पहुंच सके थे। परन्तु उन तमाम बमबाज़ों और षड़यंत्रकारियों ने इतनी सुलभ और प्रभावशाली युक्ति नहीं दी थी। पूर्णिमा के उक्त कथन के पश्चात इन्होंने यह

निश्चय कर लिया था कि वह इस मामले में पूर्णिमा को नहीं घसीटेंगे। उसे अपनी आत्मा की आवाज के अनुकूल काम करने दिया जाय यही उनका अन्तिम निर्णय था।

उन्होंने न जाने क्या रिपोर्ट लिखी थी कि परिणाम में सरकार ने पूर्णिमा को छोड़ दिया।

एक दिन नरोत्तम ने पूर्णिमा को बहुत प्रसन्न पाया। देखा तो ज्वर नहीं था। यद्यपि कंधे पर अभी पीड़ा थी, परन्तु डाक्टर की सम्मति में अब उसका ठीक हो जाना केवल कुछ दिनों की बात थी। नरोत्तम बहिन को आज प्रसन्न देख बोला, "बहिन, यह देख कि तुम आज प्रसन्न हो मुझे अति हर्ष हो रहा है। डाक्टर से मैं अभी मिल कर आ रहा हूं। वह भी कहता है कि तुम शीघ्र ही यहां से जा सकोगी।"

पूर्णिमा ने कहा, "हां, परन्तु मेरी प्रसन्नता का कारण कुछ और ही है।"

"और! वह क्या?"

"गोली चलाने वाला अब नहीं पकड़ा जायगा।"

"कौन? जिसने तुम्हें गोली मारी थी?"

"हां।"

"तो तुम इससे प्रसन्न हो?"

"हां।"

"यह क्यों?"

"इस कारण कि यह सत्याग्रह और अहिंसावाद की जीत है।"

"क्या कह रही हो तुम? वह कौन था जिसने गोली चलाई थी?"

"वह था कमल। मैंने उसे गोली चलाते समय देख लिया था। और इसी कारण मैं उस इन्सपैक्टर की जान बचाने में सफल हो सकी थी। सुप्रिन्टेंडेन्ट मिस्टर टंडन ने मुझसे बहुत बार उसका नाम पूछा था, परन्तु मैंने केवल यही कहा था, कि मैं जानती हूं परन्तु बताऊंगी नहीं। मैंने उन्हें इसका प्रयोजन भी बताया था। वह तब मेरी बात को

ठीक समझ मान गये थे। आज वह कमल को लेकर मेरे पास आये थे। कहने लगे, 'यह लो हम इसको आपकी सहायता के बिना भी पकड़ सके हैं।'

मैंने कहा, "इससे मेरा सम्बन्ध नहीं है। आप जानें आपका काम जाने।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने कहा, "परन्तु बिना आपकी गवाही के हम इस पर दोष सिद्ध नहीं कर सकते।"

इस पर मैंने कहा था, "पूर्व इसके कि आप मुझे गवाही के लिये बुलायें मैं इस संसार में नहीं रहूँगी। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण किसी को फांसी मिले।"

"तो आप मजिस्ट्रेट के सम्मुख झूठ बोल देना कि गोली मारने वाला यह नहीं था।"

मैंने पूछा, "क्या आपका काम मेरी गवाही के बिना नहीं चल सकता?"

"नहीं। यदि इसके पास पिस्तौल मिल जाता और गोली पिस्तौल में ठीक आजाती तो आपकी गवाही छोड़ी जा सकती थी। परन्तु ऐसा नहीं हो सका।"

"तो आपको विश्वास कैसे हुआ कि यह वही आदमी है?"

"इस बात का निश्चय होगया है। कुछ और लोगों ने इसे पहचान लिया है। पहचान तो आपने भी लिया है, परन्तु मैं देखना चाहता था कि आप झूठ बोलेंगी अथवा नहीं।"

"मैं झूठ नहीं बोलूंगी। परन्तु यदि मेरी ही गवाही से इसे फांसी मिलती है तो मैं उस गवाही देने से पहले ही इस शरीर को त्याग दूंगी। यदि मैं यह समझती कि दोषी को दोष का दण्ड मिलने में बाधा नहीं डालनी चाहिये तो मैं पुलिस-इन्सपेक्टर को गोली का निशाना बन जाने देती। मुझे उसके आगे खड़े होकर गोली का निशाना बनने की क्या आवश्यकता थी? मैं समझती हूं कि इसको दण्ड देने के स्थान पर छोड़ देना अधिक उपयुक्त है। इसको इस हत्या के पथ से हटाकर किसी उपयोगी काम में लगाने की आवश्यकता है। यह तो केवल क्षमा करने

से ही हो सकता है। इसने मुझे गोली मारी है, मैं इसे क्षमा करती हूं।"

"परन्तु कानून इसे क्षमा नहीं करता। कानून सूर्य-चन्द्र की भांति अटल है। वह किसी की इच्छा-अनिच्छा का विचार नहीं करता।"

"वह कानून आपका है। आप जानें। मैं तो आपके कानून को अन्यायपूर्ण समझती हूं। क्या यह सत्य नहीं कि कितने ही गोरों को, हत्या करने पर, साधारण सा दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है? यदि आपका कानून न्याय का कानून होता तो वह अंग्रेज़ अपराधियों के विषय में ढीला न हो जाता। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैंने इस युवक को क्षमा कर दिया है। मेरी कानून को सहायता देने के विषय में बात स्पष्ट है कि मैं इस कानून को कानून नहीं देख रही। इस कारण उसकी सहायता नहीं करूंगी। मैं झूठ भी नहीं बोल सकती। इस कारण मैं अपने प्राणों की आहुति दे दूंगी।"

"मेरा इतना कहना सुन और मेरे शब्दों से मेरा दृढ़ निश्चय जान वह कांप उठा। अन्त में उसने कमल की ओर देख कर कहा, 'मिस्टर कमल, तुम बिना घर गये कलकत्ते से बाहर निकल जाओ। जब यह देवी तुम्हें क्षमा कर रही है तो मैं इसमें बाधा नहीं डाल सकता, परन्तु तुम्हारा यहां रहना भय-रहित नहीं है। यदि मैंने तुम्हें यहां देखा तो गोली मारकर मार डालूंगा। चले जाओ यहां से। और देखो, अगर इन्सान के बच्चे हो तो फिर ऐसा काम न करना।'

"कमल रो रहा था। उसने मेरे पांवों को छूकर कहा, 'देवी, मैंने बहुत अपराध किये हैं, परन्तु आपने माता की भांति अपने बालक को क्षमा कर दिया है। मैं आपकी स्मृति अपनी माता के साथ अपने हृदय पर सदा रखूँगा।' इतना कह वह मेरे चरणों पर मस्तक नवा चला गया।

"सुप्रिन्टेंडेन्ट कुछ देर ठहरकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, 'मिस पूर्णिमा, मैंने बीस वर्ष तक पुलिस की नौकरी की है, परन्तु ऐसी परिस्थिति में मैं कभी नहीं फंसा। बम-केसों में बड़े २ भद्र पुरुषों के लड़कों को अपनी जान बचाने के लिये झूठ बोलते देखा है। कितने ही

क्रांतिकारी मेरे सम्मुख आ चुके हैं, परन्तु सब के सब पूरे सबूत मिल जाने पर भी अन्त तक कहते ही गये हैं कि वे झूठ-मूठ पकड़ लिये गये हैं। उनमें इतना साहस कभी नहीं हुआ कि वे भरी अदालत में यह कह दें कि 'हां, हमने यह किया है और अन्याय को मिटाने के लिये किया है।' वे वकील के व्यर्थ के कानूनी पेचों की आढ़ में बच जाना चाहते हैं। परन्तु आज आपने मुझे भारी शिक्षा दी है। मेरी धारणा थी कि हिन्दुस्तानी राजनीतिक कार्यकर्ता भीरु, झूठे और अपने कामों पर विश्वास न रखने वाले होते हैं, परन्तु वह आपको देख और सुनकर मिट गयी है।' इतना कह वह विदा हो गया।

"भैया, क्या यह कम प्रसन्नता की बात है?"

नरोत्तम यह सब बात सुनकर क्रोध से लाल-पीला हो उठा था। पूछने लगा, "तो गोली चलाने वाला कमल था?"

"हां।"

"तुमने पहले क्यों नहीं बताया?"

"बताती तो तुम उसका हुलिया इत्यादि सब पुलिस को बता देते।"

"पूर्णिमा, तुमने बहुत बुरा किया है। क्या तुम भूल गयी हो कि उस हां के कारण मधुसूदन इस समय बन्दी बना हुआ है?"

पूर्णिमा ने आंखें मूंद लीं। उसकी रक्त-विहीन गालों पर श्वेत मोती झलकने लगे। बहुत धीमे स्वर में बोली, "भैया, सब कुछ याद है। परन्तु मेरा अहिंसा-व्रत बदला लेने की आज्ञा नहीं देता।"

नरोत्तम ने क्रोध से कहा, "अहिंसा! धिक्कार है तुम्हारी अहिंसा को। तुमने आज फंसे शत्रु को हाथ से निकल जाने दिया है।"

पूर्णिमा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने मुख पर चादर ओढ़ ली और रोती रही।

दूसरे दिन नरोत्तम जब अस्पताल पहुंचा तो पूर्णिमा ने दैनिक पत्र में एक समाचार पर उंगली रख उसे पढ़ने को कहा। लिखा था, "मिस्टर आर० सी० टन्डन का नौकरी से इस्तीफा।" इस शीर्षक के नीचे लिखा

था, "मिस्टर टण्डन कलकत्ता पुलिस में एक मशहूर तथा पुराने अफसर थे। यह कहा जाता है कि जब से सत्याग्रहियों पर लाठी-चार्ज होने लगा है मिस्टर टण्डन अपने अफसरों से इस मामले में सहमत नहीं थे। इसी के परिणाम-स्वरूप उन्होंने पुलिस की नौकरी छोड़ दी है।

"उन्होंने कई डाकुओं को पकड़ कर तमगे प्राप्त किये हैं। एक बम-केस की तहकीकात में उन्होंने विशेष भाग लिया था। यह भी कहा जाता है कि अब उन्हें राय साहब की पदवी मिलने वाली थी।"



# नौवां भाग

## बन्दी-जीवन

जब मधुसूदन झांसी डेटिन्यूज़-कैम्प में पहुंचाया गया तो उसका स्वप्न भङ्ग हुआ। उसका इलाहाबाद से बनारस जाना और वहां पर पूर्णिमा की खोज में गायघाट जाने पर पकड़ा जाना, इलाहाबाद में कठोर यन्त्रणा पाना और वहां से बिना मुकदमे के बन्दी बनाकर झांसी भेजा जाना—ये सब बातें इतनी जल्दी २ घटीं और इतनी विचित्रता से कि उसे यह सब स्वप्न ही प्रतीत होता था। जब उसे झांसी के किले में ले जाकर उसकी कोठरी दिखाई गयी तब उसे चेतना हुई। अब उसने अपने जीवन में इस परिवर्तन का अनुमान लगाया।

उसकी सब आशायें, भविष्य के मनसूबे, देश तथा जाति के उत्थान के स्वप्न और सब से मीठा विचार पूर्णिमा के साथ जीवन-यात्रा को समाप्त करना—सब स्वप्न हो गये। और कठोर सत्य कि वह बन्दी है, किले की काली २ ऊंची दीवारें उसको सब संसार से, अपनी आशाओं, आकांक्षाओं और प्रियजनों से पृथक कर रही हैं, उसके सम्मुख पिशाच की भांति नाचने लगा। एक बार उसके मुख से निकला 'दैव! यह क्या?'

मधुसूदन की बगल में कपड़ों की एक गठरी थी। सिपाही उसे एक कोठरी के सामने खड़ा कर और कह कर कि यह उसकी कोठरी है चला

गया। मधुसूदन उस कोठरी के सम्मुख खड़ा विस्मय में सोच रहा था कि क्या करे। कोठरी का फर्श सीमेंट का बना था। उसकी एक दीवार के साथ छः फुट लम्बा और चार फुट चौड़ा एक चबूतरा फर्श से दो फुट ऊंचा बना था। कोठरी लगभग आठ फुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी भी थी। बहुत सी कोठरियों की एक पंक्ति थी। उसमें यह भी एक थी। कोठरी में प्रकाश अथवा हवा आने को दरवाजे के सिवाय और कोई मार्ग नहीं था।

कोठरी बहुत मैली थी। जब से बनी थी तभी से उसकी सफाई नहीं हुई थी। फर्श पर बहुत गर्दा पड़ा हुआ था। बाहर बरामदा कोठरी से कुछ साफ था। उसे वहां पहुंचाने वाला जब चला गया तो मधुसूदन को विचार आया कि उससे झाड़ू की बाबत पूछ लेता।

मधुसूदन ने दूसरी कोठरियों की ओर दृष्टि दौड़ाई। उसकी कोठरी से बाईं ओर की सब खुली और वैसे ही गन्दी थीं जैसी उसकी कोठरी। मधुसूदन जब वहां पहुंचा था तो प्रातःकाल के चार बजे थे। चांद के प्रकाश में ही वह यह सब कुछ देख सका था। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। उसकी कोठरी के दाहिनी ओर भी कुछ और कोठरियां थीं और उनमें कुछ लोग थे। परन्तु अभी वे लोग सो रहे थे। मधुसूदन बरामदे में इन कोठरियों के सम्मुख से गुजर गया। सब कोठरियां जिनमें लोग थे ग्यारह थीं। उसकी अपनी कोठरी बारहवीं थी।

उसके पांव की आहट से एक आदमी जाग उठा। प्रायः सब कोठरियों के दरवाजे खुले थे। वह जागने वाला उठकर कोठरी के बाहर निकल आया। अंधेरे में वह मधुसूदन को और मधुसूदन उसे भली भांति देख नहीं सका। उसने पूछा, "आप कौन हैं?"

"एक नया बन्दी।"

"कब आये?"

"अभी यहां लाया गया हूं। अंधेरा इतना था कि भली-भांति अपनी कोठरी के भीतर देख नहीं सका। इस कारण बरामदे में घूम कर समय

व्यतीत कर रहा हूं।"

"तो आप नम्बर बारह हैं?"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"मेरा मतलब यह है कि बारह नम्बर की कोठरी में आप आये हैं। कल जमादार कह रहा था कि एक बन्दी और आने वाला है।"

"हां।"

"क्या मैं आपका नाम जान सकता हूं?"

"मधुसूदन उपाध्याय।"

"अभी तो अंधेरा है। कोठरी में न जाने कोई बिच्छू छिपा हो। प्रकाश हो जाने पर सफाई कर लेना। हां तो बाहर सहन में आजाइये। वहां कुछ ठण्डा मालूम होता है।"

मधुसूदन उसके पीछे बरामदे से बाहर खुले मैदान में चला आया। उस आदमी ने अपना परिचय देते हुए कहा, "मैं मिदनापुर जिले का रहने वाला हूं। मेरा नाम हरिहर चक्रवर्ती है। मुझे इस स्थान पर लाये गये आज तीन वर्ष हो चुके हैं। आप कहां के रहने वाले हैं?"

"मैं इलाहाबाद का रहने वाला हूं।"

इसके पश्चात चक्रवर्ती ने यहां की बातों से उसे परिचित करना उचित जानकर कहा, "यहां हम ग्यारह बन्दी पहले हैं। आप बारहवें साथी हैं। यहां सब इक्कीस कोठरियां बनाई गई हैं। उनमें से अभी तक दस खाली थीं। आज एक में आप आगये हैं। यहां हमारे एक नेता हैं। उनका नाम विभूतिनन्दन है। हैं तो वह बड़े उदण्ड, परन्तु मन के साफ और दबंग हैं। उनसे जेल के जमादार इत्यादि सब घबराते हैं। हम लोग भी उनकी मानते हैं। और सब से बड़ी बात तो यह है कि यहां अफसरों से बातचीत करने में उन जैसा निर्भीक आदमी कोई नहीं है। पुलिस के अफसर तो, आप समझते हैं, प्रायः गंवार होते हैं। उनके साथ पढ़े-लिखे सभ्यों का सा व्यवहार सफल नहीं होता।"

इस समय कुछ २ रोशनी होने लगी थी। इस प्रकाश में मधुसूदन

उस स्थान को देख रहा था जहां अब उसने, न जाने कितने वर्ष, भविष्य जीवन के व्यतीत करने थे। एक खुला अहाता था, कोई साठ फुट चौड़ा और अस्सी फुट लम्बा जिसके एक तरफ रहने के लिये कोठरियां थीं। ये कोठरियां अठारह फुट ऊंची थीं और इनके आगे बरामदा बारह फुट ऊंचा था। कोठरियां अहाते के दक्षिण की ओर थीं। अहाते के पूर्व और उत्तर की ओर किले की बाहरी दीवारें थीं जो भीतर से जमीन से लगभग पैंतीस फुट ऊंची थीं। इससे यह प्रतीत होता था कि यह अहाता किले के एक कोने में बनाया गया है। अहाते के पश्चिम की तरफ तिमंजिले मकान थे। अहाते में तो मकानों का पिछवाड़ा लगता था। इन मकानों का मुख कहीं बाहर की ओर था। अहाते में इन मकानों में से आने जाने का कोई मार्ग नहीं था। केवल तीसरी मंजिल पर दो खिड़कियां इस ओर खुलती थीं। वे भी अब नई बनाई गयी थीं। इस अहाते में आने के लिये पश्चिम-दक्षिण के कोने में मकानों के नीचे से एक मार्ग आता था। यह मार्ग बहुत तंग था और लोहे के फाटक से सुरक्षित किया गया था।

अहाते के बीचो-बीच एक पानी के लिये नल लगा था। यह चौबीस घण्टे पानी देता था। अहाते के पूर्व-उत्तर कोने में टट्टीखाने बने थे और वे बाहर से ही साफ हो सकते थे। सफाई के विचार से इसे दूसरे जेल-खानों से अधिक उत्तम समझा जाता था।

इस समय बन्दियों में से कुछ और लोग भी जाग गये थे। वे सब मधुसूदन के पास आकर खड़े हो रहे थे। चक्रवर्ती ने उनसे मधुसूदन का परिचय कराया। वह कहने लगा, "यह हमारे नये साथी हैं जिनकी बाबत कल जमादार कह रहा था।"

सब ने मधुसूदन की, हाथ मिलाकर, आवभगत की। अब काफी प्रकाश हो चुका था। मधुसूदन ने पूछा, "आपके नेता साहब नहीं जागे क्या?"

"नहीं। वह अभी नहीं जागे। पूरे पाश्चात्य सभ्यता की उपज हैं।

जब तक सूर्य भगवान अपनी किरणों से उनके मुख का चुम्बन नहीं कर लेते तब तक आप खाट पर पड़े रूठे रहते हैं।"

मधुसूदन अब अपनी कोठरी के पास पहुंचा। प्रातःकाल अंधेरे में उसने उसके गन्दे होने का अनुमान लगाया था। अब वास्तव में उसने उसे बहुत ही खराब अवस्था में पाया। दीवार और छत पर से जाला लटक रहा था। मधुसूदन ने कपड़ों की गठरी एक तरफ रख दी। बदन से कपड़े उतार नहाने की धोती पहन ली और गठरी से एक अंगोछा निकाल कोठरी साफ करने लगा।

वह इस काम में बहुत उत्साह से लगा हुआ था। इस समय सुप्रिन्टेंडेन्ट-जेल, जमादार के साथ, वहां पहुँच गया। कोठरी नम्बर बारह के सम्मुख पहुंच जमादार ने मधुसूदन की ओर संकेत कर कहा, "हजूर, यह नया कैदी है।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट उसे कोठरी साफ करते देख कुछ झेंपा और बोला, "यह काम तो भंगी का है। तुम क्यों कर रहे हो?"

मधुसूदन, यह शब्द सुन, मिट्टी से लथपथ, कोठरी से बाहर निकल आया। एक हृष्ट-पुष्ट पुरुष को, सूट-बूट पहने, चपरासियों की सी पोशाक में दो-तीन आदमियों के साथ, वहां खड़े देख वह कहने लगा, "क्षमा करें। क्या मैं जान सकता हूँ आप कौन हैं?"

जमादार ने, जो सुप्रिन्टेंडेन्ट के पास ही खड़ा था, कहा, "वाह! देखते नहीं, सुप्रिन्टेंडेन्ट साहब हैं।"

मधुसूदन ने हाथ से अंगोछा, जिससे वह छत का जाला उतार रहा था, नीचे रख सलाम की और कहा, "क्षमा करें। मैं नहीं जानता था और जान भी कैसे सकता था? पहली ही बार तो आपके दर्शन हुए हैं। परन्तु श्रीमान, अगर यह काम भंगी का था तो मेरे पहुंचने से पहले ही हो जाता। खैर कुछ हानि नहीं हुई। मैंने तो केवल वही किया है जो एक कुत्ता अथवा बिल्ली भी कर लेती है। वे भी किसी स्थान पर बैठने से पहले अपनी दुम से उसे साफ कर लेते हैं।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने जमादार को डांटकर पूछा, "क्यों बे, जब तुझे कल बता दिया था तो सफाई क्यों नहीं की गई ?"

"हजूर, भंगी को कह दिया था। वह अभी आता होगा।"

"जल्दी बुलाओ और अभी ठीक करवाओ।"

इस समय सुप्रिन्टेंडेन्ट ने अपनी जेब से एक कागज निकाल कर उसे पढ़ते हुए पूछा, "तुम्हारा नाम मधुसूदन वल्द श्यामाचरण है ?"

"हां साहब।"

"तुम यहां बंदी तब तक हो जब तक संयुक्त-प्रांत की सरकार कोई दूसरा हुक्म नहीं भेजती। तुम्हें सरकार ने छः आने रोज़ खुराक के लिये मंजूर किये हैं। इससे अधिक अगर जरूरत हो तो अपने रिश्तेदारों से मंगवा सकते हो। महीने में एक चिट्ठी लिख सकते हो और एक बार किसी से मुलाकात कर सकते हो।"

इतना कहकर उसने वह कागज़ लपेटकर जेब में रख लिया और बिना कुछ सुने वहां से चला गया। मधुसूदन पुनः सफाई के काम में लग गया।

झाड़-पूंछकर कोठरी साफ कर ली। नल के पास एक मिट्टी का घड़ा रखा था। उसमें पानी भरकर उसने कोठरी धो डाली। अब उसने शौचादि से निवृत्त होने की ओर ध्यान दिया।

जब वह स्नान कर रहा था तो विभूतिनन्दन अंगड़ाइयां लेता हुआ नल के पास आकर खड़ा हो गया और बोला, "हैलो कॉमरेड, कब तशरीफ़ लाये हैं ?"

"तशरीफ़ !" इतना कह मधुसूदन प्रश्न करने वाले का मुख देखने लगा। विभूतिनन्दन ने मुस्कराते हुए कहा, "आप तो ऐसे स्नान कर रहे हैं, मानो जन्म-जन्मान्तर के पाप धो रहे हैं।"

मधुसूदन ने आंखें नीची कर कहा, "हां।"

"ओह ! यह चुटिया आपकी बहुत लम्बी है।"

मधुसूदन ने उत्तर दिया, 'हां।' अब वह धोती बदल रहा था।

गीली धोती उतारकर उसने सूखी पहन ली और उसको निचोड़कर हाथ में पकड़ लिया। इतना कह वह अपनी कोठरी की ओर चला आया। विभूति उसका जाना देखकर खिलखिला कर हंस पड़ा। मधुसूदन ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया।

कोठरी में पहुँच कर उसने आसन बिछा लिया और ध्यानावस्थित हो पूजन आरम्भ कर दिया। आज उसके इस नये जीवन का पहला दिन था। इस समय वह बारम्बार भगवान से यही प्रार्थना कर रहा था कि इस दुस्तर सागर से शीघ्र नौका पार लग जाय। स्वभावानुकूल उसने सन्ध्योपासना के पश्चात कीर्तन आरम्भ कर दिया :—

अंखियां हरि-दर्शन की प्यासीं।
देखन चहत कमल नयनन को, निसिदिन रहत उदासीं॥ अंखियां·····

जब गाने का कुछ रंग जमा तो दूसरे बन्दी, चुम्बक की ओर लोहे की भांति, आकर्षित हो मधुसूदन की कोठरी के बाहर आकर एकत्रित हो गये। विभूतिनन्दन भी शौच इत्यादि से निवृत्त हो अपनी कोठरी की ओर जा रहा था। वह मधुसूदन के गाने की आवाज सुन और उसकी कोठरी के बाहर दूसरे बंदियों को एकत्रित देख वहां पहुँच गया। मधुसूदन गा रहा था :—

कुब्जा को जिन पार उतारा, कंस मार भू भार उतारा।
उस सुन्दर चितवन देखन को, द्वार खड़ी है दासी॥ अंखियां·····

न जाने विभूतिनन्दन के मन में क्या आया कि अत्यन्त भद्दी आवाज में ई-ई-ई मधुसूदन की नकल उतारने लगा। जैसे किसी भयानक घटना के होने से स्वप्न टूट जाता है वैसे ही सुनने वालों का ध्यान टूट गया।

मधुसूदन तो अपने गाने में मस्त था, परन्तु श्रोताओं को यह भला प्रतीत नहीं हुआ। इस पर मधुसूदन की कोठरी से एक तरफ हट उन्होंने प्रश्न भरी दृष्टि से विभूतिनन्दन की ओर देखा। विभूतिनन्दन ने उन्हें कहा, "मेरी कोठरी में चले आओ। मैं एक बात बताता हूँ।" सब उसके पीछे २ चले गये। केवल हरिहर चक्रवर्ती नहीं गया। वह मधुसूदन की

कोठरी में चला गया और आसन के पास पलथी मारकर बैठ गया।

जब मधुसूदन आरती समाप्त कर चुका और उसने आंखें खोलीं तो चक्रवर्ती को सम्मुख बैठे देखा। उसने कहा, "ओह, आप यहां हैं!"

चक्रवर्ती ने मुस्कराते हुए कहा, "हां, और एक विशेष प्रयोजन से।"

"क्या है?"

"सब से बड़ा प्रयोजन तो आत्मतुष्टि थी। आठ वर्ष से मैंने कोई अच्छा गाना नहीं सुना था। आज सुनकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु एक बात और भी है। वह यह कि आपका यह आचार-व्यवहार यहां चल नहीं सकेगा।"

"कैसा आचार-व्यवहार?"

"यही पूजा, पाठ, भजन, कीर्तन, चुटिया, धोती, अंगौछा। यहां रहने वाले यह सब कुछ नहीं करते।"

मधुसूदन ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "क्यों? क्या यह यहां के नियम के विपरीत है? बुद्धि तो नहीं मानती।"

"नियम के विपरीत तो नहीं। हां, यहां की जल-वायु के अनुकूल नहीं है। जब मैं यहां आया था तो नित्य गीता का पाठ किया करता था, परन्तु उससे इतना भारी बवण्डर उठा कि गीता उसमें उड़ गयी।"

मधुसूदन ने फिर पूछा, "मैं आपके कथन का अभिप्राय समझा नहीं।"

"बात यह है कि हमारे नेता कॉमरेड विभूतिनन्दन पूरे नास्तिक हैं। वह किसी की आस्तिकता को सहन नहीं कर सकते।"

"और क्या वह चाहते हैं कि उनकी नास्तिकता सहन की जाय?"

"बहु-मत की यहां तूती बोलती है।"

"परन्तु अल्प-मत का भी तो कुछ अधिकार होना चाहिये।"

"यहां पर अल्प-मत वालों को खाने, पहनने और रहने का अधिकार है।"

"परन्तु पूजा-पाठ से तो किसी को कष्ट नहीं होता। मैं अपने साथ जो चाहूँ करूं, जो चाहूँ सोचूं और जैसे चाहूं रहूँ। जब तक मेरे व्यवहार से किसी के सोचने, काम करने और अन्य असुविधाओं में बाधा नहीं

होती, तब तक किसी को मेरे काम में बाधा डालनी उचित नहीं।"

"आप कहते तो ठीक हैं; परन्तु दूसरे पक्ष वाले आपके व्यवहार को इस कारण खराब कहते हैं कि यह देखने वालों को भीरु, अपाहिज, गुलाम और विचारहीन बनाता है।"

"केवल देखने-मात्र से?"

"हां।"

"तो वे मुझे न देखें।"

"परन्तु जब आप इतने ऊंचे स्वर से गाते हैं तो वे कान कैसे बन्द कर सकते हैं?"

"ओह! तो यह जेल में दूसरा जेल है।"

"हां, सब भारतवर्ष ही ऐसा है।"

"परन्तु आपने ऐसी अयुक्तिसंगत बात करने वाले को नेता क्यों बना रखा है?"

"केवल इस कारण कि वह हमारे अधिकारों की अफसरों से लड़-झगड़ कर रक्षा करता है।"

"किन अधिकारों की?"

"पीछे एक दिन रोटी बासी मिली थी तो मिस्टर विभूतिनन्दन सुप्रिन्टेंडेन्ट से झगड़ पड़े थे, जमादार को पीट दिया था, और बासी रोटी लाने वाले का मुख काला कर दिया था।"

"और फिर रोटी ठीक आने लगी थी?"

"हां। और सिगरट, चाय, साबुन, तेल, पाउडर सब चीजें जो हम चाहें और जिसके लिये हम दाम दें वे मिलने लगी हैं।"

"आपको समाचार-पत्र भी मिलते हैं?"

"नहीं। उनके लिये सरकार ने अभी खर्चा स्वीकार नहीं किया।"

"परन्तु जब आप सिगार इत्यादि के लिये खर्चा देते हैं तो समाचार-पत्र के लिये क्यों नहीं दे सकते?"

इस समय एक बन्दी चक्रवर्ती को बुलाने आया। उसने कहा,

"नेता बुलाते हैं।"

चक्रवर्ती उठकर चला गया।

इस समय जमादार एक नौकर के साथ खाना लेकर आया। जमादार ने मधुसूदन से पूछा, "क्या खाइयेगा ?"

"जो कुछ मिल सके।"

नौकर ने टोकरी, जिसमें रोटी, दाल, भाजी, चावल, सिगरट, चाय, गुड़, शक्कर इत्यादि खाने योग्य कुछ पदार्थ रखे थे, भूमि पर रख दी। जमादार ने इन सबको दिखाते हुए कहा, "यह ठेकेदार का आदमी है। जो कुछ आप चाहें छः आने के अन्दर २ ले सकते हैं।"

मधुसूदन ने नौकर से पूछा, "भाई तुम कौन हो ?"

"ब्राह्मण तिवारी।"

"और यह सब कुछ ब्राह्मण के हाथ का बना है ?"

"हां, बिलकुल।"

"तो भाई हमें चार रोटी, दाल और भाजी दे दो।"

"चार रोटी एक आना, भाजी एक आना, दाल मुफ्त। दो आने कुल।"

जमादार ने दो आने नौकर को दिये और बाकी चार आने मधुसूदन के सम्मुख फेंककर चला गया। नौकर अपनी टोकरी उठा उसके पीछे हो लिया।

मधुसूदन ने दो रोटी उस समय खा लीं और दो सायंकाल के लिये रख दीं।

जब जमादार विभूतिनन्दन के कमरे में पहुंचा तो वहां सब बंदियों की सभा हो रही थी। वह पहिले तो कुछ चकराया। कारण यह था कि एक बार पहिले जब उसे पीटा गया था तब भी सबने मिल कर सभा में राय कर ली थी। विभूतिनन्दन ने जमादार को कांपते देख मुस्कराते हुए कहा, "क्यों जमादार, वहीं क्यों ठहर गये ?"

जमादार ने डरते डरते कहा, "सरकार अगर कोई बात मेरे विपरीत

हो तो आप मुझे कह दें। मैं, जहां तक मेरा अधिकार है, आपकी रुचि के अनुसार ही करूंगा। मैं नहीं चाहता कि आप व्यर्थ में मुझे पीटने का कष्ट उठायें।"

इस पर विभूतिनन्दन ने खिलखिला कर हंसते हुए कहा, "मेरे यार, तुमने भी तो हमें कठोर दंड दिलवाया था।"

"परन्तु मुझे उससे क्या लाभ हुआ? मेरी मार तो वापिस नहीं हो गयी। मेरी तो हड्डियां अभी भी पीड़ा करती हैं। मैं नहीं चाहता कि फिर एक बार वही कुछ हो जो पिछले साल हुआ था।"

विभूतिनन्दन ने जमादार को आश्वासन दिलाते हुए कहा, "डरो नहीं। यह सभा तुम्हारे लिये नहीं है। अच्छा, तो नये बंदी ने क्या खाने को लिया है?"

जमादार ने नाक-भौं चढ़ाते हुए कहा, "सिरफ़ चार रोटी और भाजी। महा कंजूस और गंवार है, साहब।"

विभूतिनन्दन ने कुछ उत्सुकता से पूछा, "बाकी दाम का क्या किया है?"

"उठा कर जेब में रख लिये हैं।"

सब हंसने लगे। इसके पश्चात सब ने दिन भर के लिये खाने का सामान ले लिया। चक्रवर्ती के अतिरिक्त प्रायः सब का बिल छः आने से अधिक हो गया था। हरिहर चक्रवर्ती ने साढ़े पांच आने का सामान खरीद लिया और दो पैसे जमादार को टिप दे दी।

[ २ ]

ज्येष्ट का महीना था। दोपहर का समय, और धूप बहुत करारी थी। गरमी में और कोई काम न हो सकने के कारण बन्दी अपनी २ कोठरी में सो रहे थे। मधुसूदन कोठरी में चबूतरे पर चादर बिछा कर लेटा हुआ भूत और भविष्य का मन्थन कर रहा था। इतने में चक्रवर्ती वहां पहुंच गया। मधुसूदन उठ खड़ा हुआ और चक्रवर्ती को समीप चबूतरे पर बैठने का संकेत कर पूछने लगा, "आप लोग दिन भर क्या करते हैं?"

चक्रवर्ती ने उत्तर दिया, "प्रत्येक अपनी २ रुचि के अनुकूल जो

चाहे करता है। मैं तो खाना खाने के पश्चात आधा घण्टा आराम करता हूँ। फिर एक पुस्तक के लिखने में लग जाता हूँ। सायंकाल छः बजे कुछ ठण्डा हो जाता है। तब एक घण्टा बाहर अहाते में टहल लेता हूं। कभी कभी हम परस्पर कोई खेल खेल लेते हैं। सायंकाल दिन छिपने से पूर्व कुछ खा-पी लेते हैं और तब अपनी २ कोठरी में पहुंच जाते हैं। अंधेरे में कुछ हो नहीं सकता। इस कारण मैं चार-पांच घण्टे भगवत भजन में व्यतीत करता हूं। दूसरे लोग प्रायः इधर उधर की बातें कर समय व्यतीत कर देते हैं।"

"किस विषय पर पुस्तक लिख रहे हैं?"

"मनुष्य-जाति का पतन। आजकल के लोगों का विचार है कि मनुष्य जाति दिन प्रति दिन अधिक और अधिक उन्नत होती जाती है। इस विचार में असत्यता है। मैंने अपनी पुस्तक में यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि यह विचार असत्य और भ्रम-मूलक है।"

"आपका विचार है कि आज से दो सौ वर्ष पूर्व के लोग आजकल के लोगों से अधिक सभ्य थे।"

"सभ्यता का शब्द सदैव उन्नति का पर्यायवाचक नहीं होता। सभ्यता तो समय के अनुसार जीवन व्यतीत करने को कहते हैं। जीवन का ढङ्ग कौन अच्छा है और कौन बुरा, इसका मनुष्य जाति की सामूहिक उन्नति अथवा अवनति से कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं। उन्नति से मेरा अभिप्राय अधिक और अधिक सुख-शांति प्राप्त करने से है। परन्तु मिस्टर उपाध्याय, इस समय तो मैं आपके पास किसी अन्य प्रयोजन से आया हूं।"

"वह क्या?"

"यही कि आज हम सब बन्दियों ने अपनी एक सभा की थी और उस सभा ने मुझे आपसे एक सन्देश देने को कहा है।"

"हां तो कहिये।"

"वह यह है कि आप अपनी चुटिया कटवा दें। भगवत-भजन, आरती-कीर्तन बन्द कर दें। स्वयं कमरे की सफाई करना और इसी प्रकार

के छोटे दर्जे के काम करने छोड़ दें। ऐसा करने से आप इस बन्दी-कैम्प में एक ऐसी प्रथा चलाना चाहते हैं जिसमें हम बन्दियों के अधिकारों में कमी हो जाने की सम्भावना है और विचारों में पतन आजाने का भय है।"

मधुसूदन यह सुन चकित रह गया। उसने यह समझा कि उसे उल्लू बनाने के लिये उससे मजाक किया जा रहा है। मधुसूदन चक्रवर्ती के मुख की ओर देखने लगा। परन्तु उसे सर्वथा गम्भीर देखकर पूछने लगा, "मेरी चोटी से आप लोगों को क्या कष्ट होता है?"

"बदसूरत, भद्दी वस्तु देखने को किसका दिल चाहेगा?"

"क्या सहन में जो कूड़ा-करकट पड़ा है उससे भी मेरी चोटी अधिक भद्दी है?"

"परन्तु सहन की सफाई तो हमारे हाथ में नहीं।"

"तो क्या मेरी चोटी की सफाई आपके हाथ में है?"

"हमारे हाथ में तो नहीं, परन्तु हम आप पर सुगमता से प्रभाव डाल सकते हैं और जो बात सुगमता से हो सके उसे पहले किया ही जाता है। सहन की सफाई के लिये तो शायद भूख-हड़ताल करनी पड़े।"

मधुसूदन मुस्कराता हुआ बोला, "मिस्टर चक्रवर्ती, मेरी समझ में एक बात नहीं आती। वह यह कि जो बात आपके बस में है और जिसके करने से वास्तविक लाभ होगा वह तो आप नहीं करते और अनावश्यक बातों पर शक्ति का अपव्यय करते हैं। देखिये, मेरी सम्मति यह है कि हम सब लोग दिन में दो घण्टे इस सहन की सफाई करने में और यहां एक सुन्दर पार्क लगाने में व्यय किया करें। अधिकारियों से झगड़ा इस बात में करना चाहिये कि वे हम लोगों को इस बाग के बनाने के लिये हथियार और दूसरी आवश्यक वस्तुएं खरीदने की स्वीकृति दें। हम एक छोटा सा पुस्तकालय निर्माण करें। कम से कम एक दैनिक पत्र मंगवाया करें। यदि कुछ मासिक पत्रिकायें भी आ सकें तो अच्छा है। इस जेल के जीवन को अधिक से अधिक सुगम बनाने का यत्न करें। एक ओर

हम सरकार से अधिक और अधिक सुविधायें प्राप्त करने का यत्न करें और दूसरी ओर इस व्यर्थ के खर्च को बन्द कर कुछ बचायें। इस प्रकार ये सब योजनायें पूरी हो सकती हैं। भला इनके मुकाबले में मेरी चोटी, मेरा भजन-कीर्तन, मेरा ईश्वर पर विश्वास इत्यादि का क्या अस्तित्व है?"

"जिसका कुछ अस्तित्व नहीं उसको आप स्वयं ही क्यों नहीं मिटा देते? मिस्टर उपाध्याय, मैं जो कुछ कह रहा हूं वह हम में से बहुमत की इच्छा है। मैं स्वयं तो आपके संगीत को पसन्द करता हूँ, परन्तु मेरे साथी संगीत में तो कुछ रुचि रखते नहीं और आपके गाने का भावार्थ वह पसन्द नहीं करते। आपने जो योजनायें बताई हैं उन पर तो हम सब विचार करेंगे जब आप हम में सम्मिलित होंगे। और आपको हम अपने में सम्मिलित तब ही करेंगे जब आप हमारी उन इच्छाओं को पूर्ण करेंगे।"

मधुसूदन ने कुछ उत्सुकता से पूछा, "यदि मैं आपकी बात न मानूँ तो आप क्या करेंगे?"

"इसका हमने निर्णय नहीं किया।"

इस पर मधुसूदन खिलखिला कर हंस पड़ा। चक्रवर्ती इस हंसने का अभिप्राय नहीं समझ सका। मधुसूदन के हंसने का आशय समझने के लिये उसके मुख पर देखता रहा। जब चक्रवर्ती चुप रहा तो मधुसूदन ने आशय बताने के लिये कहा, "आपने तो इस जेल में भी एक राज्य स्थापित कर लिया है। आप उस राज्य के दूत बनकर आये हैं। आप सब बातें पक्के राज-दूतों की भांति करते हैं। क्यों यह ठीक है न? अच्छा तो सुनिये मैं आपके इस राज्य-प्रबन्ध से सहमत नहीं हूँ। मैं इससे विद्रोह करता हूँ। जैसे कोई मनुष्य भाग्य अथवा दुर्भाग्य से किसी अच्छी अथवा बुरी समाज में पैदा होता है वैसे ही मैं दुर्भाग्य से इस स्थान में आ टपका हूं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं इस स्थान की अयुक्ति-संगत बातों का अनुकरण करूं। जैसे एक समाज के अन्याय को दूर करने का उपाय उससे विद्रोह है वैसे ही मैं आपकी बातों का विरोध करता हूं।"

चक्रवर्ती यह सुन उठ कर चला गया। मधुसूदन हंसने लगा। ऐसी स्थिति में उसे गाने की सूझी और मुख में गुनगुनाने लगाः—

कर्म गति टारे नाहिं टरी।

मुनि वसिष्ट से पण्डित ज्ञानी सोधि के लगन धरी,

सीता हरण मरण दशरथ को वन में विपत परी॥......

चक्रवर्ती मधुसूदन की कोठरी से निकला तो सीधा विभूतिनन्दन के कमरे में पहुंचा। विभूतिनन्दन ने उत्सुकता से पूछा, "क्यों क्या हुआ?"

"कुछ भी परिणाम नहीं निकला। पत्थर पर पानी का मामला है।"

"अच्छा तो छोड़ो इसको। मैं स्वयं समझ लूंगा।"

चक्रवर्ती यद्यपि सबकी ओर से दूत बन कर गया था तो भी वह सब के मत से सहमत नहीं था। उसने पहिले सभा में भी विरोध किया था, परन्तु विभूतिनन्दन के प्रताव का बहुमत ने समर्थन कर दिया था। अब चक्रवर्ती ने फिर यत्न किया कि विभूतिनन्दन को शांति के मार्ग पर ले चले। उसने कहा, "मिस्टर नन्दन, मुझे तो वह जासूस प्रतीत नहीं होता। वह बहुत विद्वान आदमी जान पड़ता है। सब से बड़ी बात यह है कि वह सभ्य है और संगीत विद्या में निपुण है। उसके यहां रहने से हम लोगों को कुछ भी हानि की सम्भावना नहीं।"

विभूतिनन्दन ने कुछ उद्विग्न होकर कहा, "यह तुम्हारा विचार है न! तुम्हारे पास कोई प्रमाण तो नहीं है। मुझे तो विश्वास होगया है कि हम में फूट डलवाने के लिये और शायद कोई भेद की बात जानने के लिये पुलिस ने यह जासूस हम में छोड़ा है। अजीब बहुरूपियों का सा रंग बनाया है। पूरा महात्मा बन कर आया है। केवल सूखी रोटी खाकर जीना चाहता है और अब हमको जेल में सफाई करना, बाग लगाना और इसी प्रकार के लाभदायक कामों पर लगाना चाहता है। यह महापुरुष, मैं सत्य कहता हूँ, हमारा भारी अनिष्ट करने के लिये भेजा गया है।"

चक्रवर्ती ने पूछा, "तुम्हारे पास इस लांछन के प्रमाण क्या हैं?"

"उसकी ईश्वर-भक्ति, उसकी चोटी, उसकी धोती-अंगोछा और उसका

हृष्ट-पुष्ट होना। ये सब इस बात के प्रमाण हैं कि वह कोई ढोंगी है।"

"क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं कि वह विचारा कोई निरपराध पुलिस के चंगुल में फंस गया है?"

"कुछ भी हो मैं उसकी परीक्षा लिये बिना नहीं रहूँगा।"

[ २ ]

संगीत एक प्रबल आकर्षण है। इसका प्रभाव केवल उन लोगों पर नहीं होता जिनकी मानसिक अवस्था विकृत हो चुकी है। मनुष्य जितना सरल हृदय रखता है उतना ही संगीत उसके लिये आकर्षणमय हो जाता है। बालक, वृद्ध, पशु-पक्षी तो इससे विशेष लगाव रखते हैं। कहा तो यह जाता है कि हिंसक जानवर भी संगीत पर मोहित हो जाते हैं। इतना तो कम से कम मानना ही होगा कि यह मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने में विशेष भाग रखता है।

प्रातःकाल का समय था। झांसी बंदी-कैम्प के सुप्रिन्टेंडेन्ट अभी खाट पर लेटे खुर्राटे भर रहे थे, कि उनकी नींद बहुत ही मधुर गीत के शब्द से खुल गयी। कोई दूर, मीठे और ऊंचे स्वर में, भगवत-भजन कर रहा था।

सुप्रिन्टेंडेन्ट को इस कैम्प में आये तीन वर्ष हो चुके थे। कभी कभी ग्रामोफोन पर निकृष्ट प्रकार के गाने सुनने के अतिरिक्त अच्छा संगीत सुनने का अवसर नहीं मिला था। तीन वर्षों में आज पहिली बार उन्हें इतना सरल, मधुर, चित्त को शान्त करने वाला संगीत कर्णगोचर हुआ था। उन्होंने ध्यान से सुनना आरम्भ कर दिया। गाना था:—

आद नाद ब्रह्म विष्णु महेश।
तुम हो सकल जगत रखवारे॥
दयानिधे करुणा के सागर तुम सब के हो पालन हारे।
पतित-पावन दीनानाथ हो दुखियन कष्ट निवारण हारे॥

साथ साथ तानालाप भी आरम्भ हो गये थे। यह प्रातःकाल के समय का जादू था अथवा मधुसूदन की आवाज का माधुर्य कि सात बजे से पहिले न उठने वाले सुप्रिन्टेंडेन्ट आज पांच बजे ही उठ कर खाट पर

बैठ गये और सोचने लगे कि यह गाने वाला कौन हो सकता है। यह अनुमान लगा कि बंदियों में से कोई गा रहा है उन्होंने बंदियों के अहाते के ओर की खिड़की खोल दी। अहाते के पश्चिम की ओर तिमंजले पर जो खिड़कियां थीं, वे सुप्रिन्टेंडेन्ट के रहने के स्थान में थीं। खिड़की खुलते ही प्रातः समीर का एक झोंका भीतर आया और अपने साथ झोली भर मधुर गीत-रूपी फूल लाया।

सुप्रिन्टेंडेन्ट सूबा सरहद के जिला कोहाट के रहने वाले मिस्टर बन्नाराम एम० बी० बी० एस० थे। उन्हें नौकरी में आये दस वर्ष से ऊपर हो चुके थे। उनकी स्त्री लखनऊ के एक पंजाबी ठेकेदार की लड़की थी। वे अभी तक निःसन्तान थे और अकेले दोनों वहां रहते थे।

खिड़की खुलने से कलावती को (यह सुप्रिन्टेंडेन्ट की धर्मपत्नी का नाम था) आंखें खुल गयीं। पूछने लगी, "क्या है?"

"कोई बहुत अच्छा गा रहा है।"

कलावती ने ध्यान से सुनकर कहा, "कल जब आप दफ्तर गये हुए थे तब भी यही आदमी गाता था। बहुत अच्छा गाता है।"

"प्रतीत होता है कल जो नया बन्दी आया है वही है।"

"कल कोई नया बंदी आया है! तो वही है। यह कौवों में हंस क्यों?"

मि० बन्नाराम हंस पड़े। बोले, "हां, पहले लोग तो चीखें मारा करते थे।"

इतने में मधुसूदन ने दूसरा गीत आरम्भ किया। यह भैरवी में था।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

कलावती ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "यह तो कोई क्रांतिकारी प्रतीत नहीं होता।"

"क्यों?"

"मेरे मन में कुछ ऐसी धारणा बैठ गयी है कि क्रांतिकारी के अर्थ हैं—असभ्य, प्रकृति से दुष्ट, निर्लज्ज, क्रूर, कला-कौशल से वंचित, आत्मा-परमात्मा को न मानने वाला, धर्म-कर्म से विहीन, वृथा बोलने

वाला, अभिप्राय यह कि सर्व दुर्गुण सम्पन्न।"

कलावती के मुख से क्रांतिकारी की ऐसी व्याख्या सुन मि० बन्नाराम बहुत हँसे। फिर कुछ गम्भीर भाव धारण कर कहने लगे, "तुम्हारी यह धारणा बहुत अल्प अनुभव से बनी है। तुमने केवल इन दस-ग्यारह छोकरों को देख कर ही ऐसी धारणा बना ली है। यथार्थ में ये लोग जो बन्दी बनकर आये हैं क्रांतिकारी नहीं हैं। कुछ तो बेचारे सन्देह ही में पकड़ लिये गये हैं, और कुछ किसी पुलिस अफसर की निजी शत्रुता के कारण सरकार के महमान बन गये हैं। इनमें प्रायः कॉलेजों के विद्यार्थी हैं जो किसी के सम्मुख केवल शेखी बघारने के कारण ही बन्दी बना लिये गये हैं। इनमें कोई वास्तव में देश-भक्त है भी, कहना कठिन है। दूसरे देशों में जिन लोगों ने अपने देश को उन्नत करने के लिये अपना बलिदान किया है वे बहुत उच्च कोटि के मनुष्य हुए हैं। इनमें तो किसी एक में भी सच्चे देश-सेवकों का एक शतांश भर भी उत्साह, लगन, योग्यता और बलिदान करने की शक्ति नहीं है।"

गाने का रंग खूब जम रहा था। मधुसूदन गा रहा था :—

अंसुअन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई।

मीरा प्रभु लगन लागी होनी हो सो होई॥ मेरे तो गिरधर गोपाल···

कलावती मुग्ध हो रही थी। अकस्मात उसने पूछा, "क्या सत्य ही कोई मीरा हुई है?"

मि० बन्नाराम ने एक लम्बी सांस खैंच कर कहा, "क्या जानें? हां इतना तो सत्य है कि मीरा की यह कविता सजीव है। कितनी ही निराश, भग्न हृदय, दुखियारी अथवा सधवा स्त्रियों में इन भजनों ने मंत्र बन कर नई आशा और पवित्रता का संचार किया है।"

कलावती की आंखों में आंसू झलकने लगे थे।

मधुसूदन गा रहा था :—

अब तो बेल फैल गई·····

"हैं! यह क्या?" सुप्रिन्टेंडेन्ट ने अचम्भे में पूछा।

कारण यह था कि गाना एकदम बन्द हो गया था। कलावती और बन्नाराम दोनों लपक कर खिड़की में आगये और नीचे अहाते में देखने लगे।

विभूतिनन्दन पांव की ठोकरों से मधुसूदन को पीट रहा था। मधुसूदन अपनी कोठरी के सम्मुख बरामदे में बैठा था और अचम्भे में पीटने वाले की ओर देख रहा था।

विभूतिनन्दन मारता जाता था और जोर २ से चिल्ला रहा था, "सूअर! बदमाश! सोने भी नहीं देता। आया है बड़ा भक्त बन कर।" इस समय दूसरे बंदी भी अपनी २ कोठरी से निकल आये थे। कुछ तो मधुसूदन की गत बनते देख हंसने लगे थे। दूसरे खड़े तमाशा देखने लगे थे। हरिहर चक्रवर्ती जब आया तो वह विभूतिनन्दन को पकड़ कर दूर हटाने का यत्न करने लगा। मधुसूदन वैसे ही आसन पर बैठा था और किंचित नहीं डोला। चक्रवर्ती विभूति को पकड़ कर कुछ दूर ले गया। विभूति चक्रवर्ती से अधिक मजबूत था। उसने एक झटका दिया कि चक्रवर्ती दूर गिर पड़ा। वह भाग कर फिर आया और मधुसूदन को पांवों की ठोकरें मारने लगा।

कलावती ने मि० बन्नाराम से कहा, "इस पागल को रोकियेगा नहीं?" इस पर मि० बन्नाराम लपक कर दरवाजे के समीप लगी घन्टी के बटन को दबाने लगे। पश्चात उन्होंने मेज के दराज में से पिस्तौल निकाल लिया और वैसे ही, रात की पोशाक में, नीचे की तरफ भाग पड़े।

चक्रवर्ती उठा और भाग कर फिर विभूतिनन्दन को पकड़ कर एक तरफ हटाने लगा। कहने लगा, "मिस्टर नन्दन, जाने दो। यह अनुचित है। अब बस करो। जाने दो।"

परन्तु विभूतिनन्दन का अभी पेट नहीं भरा था। वह चक्रवर्ती और एक दो और बन्दियों के हाथ में छटपटा रहा था और मधुसूदन को गालियां दे रहा था।

सुप्रिन्टेंडेन्ट के घंटी बजाने का प्रभाव यह हुआ कि एक दर्जन

हथियार-बन्द सिपाही वहां अहाते में पहुंच गये और उनके पीछे २ वह स्वयं हाथ में पिस्तौल लिये वहां आ उपस्थित हुआ। कलावती खिड़की में खड़ी यह सब कुछ देख रही थी।

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने विभूतिनन्दन को हिरासत में कर लेने की आज्ञा दे दी। चक्रवर्ती के हाथों से विभूतिनन्दन पुलिस की हथकड़ियों में जकड़ लिया गया। सुप्रिन्टेंडेन्ट वहीं मेज-कुर्सी लगा सबके बयान लिखने लगा। उसने लिखा :—

आज प्रातः छः बजे बन्दी नम्बर बारह, मधुसूदन वल्द श्यामाचरण उपाध्याय अपनी कोठरी के सम्मुख बरामदे में बैठा गा रहा था और पूजा कर रहा था। विभूतिनन्दन बन्दी नम्बर चार अपनी कोठरी से निकला और उसको पीटने लगा। वह मधुसूदन के चुप रहने पर भी उसको मारता गया। लड़ाई का शोर सुन मैंने यहां आकर विभूतिनन्दन को हिरासत में ले लिया और उस पर बलवा करने का दोषारोपण किया। मुकदमा ज़ेर दफा...जेल रूल्ज़.....

पश्चात सुप्रिन्टेंडेन्ट ने विभूतिनन्दन को दोषारोपण अर्थात चार्ज पढ़ कर सुनाया और पूछा, "बताओ तुम दोष स्वीकार करते हो या नहीं?"

विभूतिनन्दन अब तक शांत हो गया था। खड़ा २ कहने लगा, "मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैंने मधुसूदन को पीटा है, परन्तु ऐसे आदमी को पीटना अपराध नहीं हो सकता।"

"क्यों?"

"इसने मेरी नींद भंग की है। इसने चिल्ला २ कर मेरे सोने के अधिकार में बाधा डाली है।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने हैरानी से पूछा, "यह चिल्ला रहा था क्या?"

विभूतिनन्दन ने उत्तर दिया, "हां, बहुत ज़ोर ज़ोर से।"

"तो तुम मानते हो कि तुमने इसे पीटा है?"

"हां, मगर इसने अपराध किया था।"

इसके पश्चात हरिहर चक्रवर्ती के बयान हुए। उसने बताया, "मैं

वरामदे में शोर सुन बाहर आया तो देखा कि विभूतिनन्दन मधुसूदन को पावों से ठोकरें मार रहा है। उसने बूट पहने हुए थे। मैंने उसको पकड़ कर दूर हटा दिया।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने पूछा, "तुम शोर सुनकर जागे थे या पहले ही जाग रहे थे?"

चक्रवर्ती ने उत्तर में कहा, "मैं प्रायः चार बजे जाग जाया करता हूँ। आज भी उसी समय जाग गया था। मेरे जाग जाने के एक घण्टा पश्चात मधुसूदन ने गाना आरम्भ किया। वह लगभग एक घण्टे तक गाता रहा होगा जब मैंने विभूतिनन्दन को अपनी कोठरी के बाहर से गुजरते देखा। पश्चात उसकी गालियों का शब्द सुन मैं बाहर आगया।"

तुम्हें मधुसूदन के गाने से कुछ कष्ट हुआ था?"

"कष्ट! बिलकुल नहीं। प्रत्युत मैं असीम आनन्द अनुभव कर रहा था।"

पश्चात सुप्रिन्टेंडेन्ट ने एक और बंदी से, जिसका नाम रामकृष्ण था, पूछा, "तुम्हारी नींद कब खुली थी?"

"मैं मधुसूदन का गाना सुन कर जगा था। मुझे गाने का शौक नहीं है, परन्तु मुझे उसके गाने से कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। मैं स्नान कर कोठरी की तरफ लौट रहा था कि विभूतिनंदन क्रोध में भरा हुआ मधुसूदन की तरफ आया और उसको लातों और घूंसों से पीटने लगा। मधुसूदन ने कुछ भी नहीं कहा।"

अब सुप्रिन्टेंडेन्ट ने मधुसूदन का बयान मांगा। उसने कहा, "मुझे कुछ नहीं कहना। मेरी केवल यह प्रार्थना है कि यह हमारा आपस का मामला है, इसमें आपको हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिये।"

मधुसूदन का बयान सुन सुप्रिन्टेंडेन्ट घबराया। वह पूछने लगा, "तो तुम्हें विभूतिनंदन के विपरीत कोई शिकायत नहीं है?"

"नहीं।"

"तुम गा रहे थे?"

"हां।"

"तुम्हारा विचार है कि तुम गाकर कोई अपराध कर रहे थे ?"

"मेरा विचार था नहीं, परन्तु अब मिस्टर नन्दन के कहने से ज्ञात होता है कि हां मैंने अपराध किया है। उसकी नींद खराब की है।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट हंस पड़ा। वह बहुत ध्यान से मधुसूदन के मुख की ओर देखने लगा। कुछ विचार कर उसने फिर पूछा, "क्या तुम अपने आपको दोषी समझते हो ?"

"हां।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने मुस्कराते हुए कहा, "सत्य ही तुम बहुत बड़े दोषी हो और तुम्हें इसके लिये दण्ड भोगना होगा। परन्तु तुम्हारी सिफारिश से मैं किसी दूसरे के अपराध को क्षमा नहीं कर सकता।"

मधुसूदन ने अब और भी दृढ़ता से कहा, "अपराधी तो केवल मैं ही हूँ। एक कैदी को नींद से जगा देना उसकी कैद को लम्बा कर देना है। कैदी जब तक जागता रहता है वह अपनी कैद और पराधीनता को अनुभव करता रहता है। सो जाने पर वह भूल जाता है कि वह कैदी है। इस समय वह प्रिय जनों, प्रिय स्थानों और अनेकानेक मनोवांछित बातों के स्वप्न देखता है। कैदी को इन स्वप्नों से जगा कर पुनः उसे कैदी होने का अनुभव कराना एक अति निर्दयता की बात है। मुझे ज्ञात नहीं था कि दिन के पांच बजे भी सोना चाहिये। यदि यह ज्ञात होता तो मैं कभी भी अपना भजन इतनी सुबह आरम्भ न करता। मैं अपने आपको पीटे जाने योग्य ही समझता हूँ।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने कहा, "परन्तु कानून तो यह कहता है कि दोषी को दण्ड देने का अधिकार केवल जज को ही है। यदि इस प्रकार सब लोग स्वयं ही कानून अपने हाथ में ले लें और दूसरों को दण्ड देने लगें तो संसार में इतना उपद्रव मचे कि यहां रहना दूभर हो जाय। विभूतिनन्दन को अपनी शिकायत मुझसे करनी चाहिये थी। इसी कारण मैं हर रोज तुम लोगों को देखने आता हूँ।

"केवल इतना ही नहीं। उसने तुमको अकस्मात क्रोध में आकर

नहीं पीटा। ऐसा प्रतीत होता है कि वह उठा है और उसने तुम्हें पीटने का निश्चय किया है। पश्चात सोच-विचार कर कि किस प्रकार पीटने में वह तुमको अधिक से अधिक चोट पहुंचा सकता है उसने बूट पहिने, बूटों के तस्मे बांधे। इस प्रकार तैयारी कर तुम्हें पीटने को बाहर आया। जो आदमी इतना विचार कर सकता है वह क्या यह नहीं सोच सकता कि दंड तो केवल सुप्रिन्टेंडेन्ट ही दे सकता है? उसका अधिकार नहीं कि एक साथी पर बिना अपराध सिद्ध किये टूट पड़े।

"इस कारण विभूतिनन्दन को कानून अपने हाथ में लेने के अपराध में और जेल में दंगा-फसाद करने के अपराध में, मैं एक दर्जन बेंत लगाने की आज्ञा देता हूँ। यह आज्ञा मुझे अपने अफसर से मंजूर करवानी होगी। तब तक के लिये मैं विभूतिनन्दन को एक अलग कोठरी में बन्द रहने की आज्ञा देता हूँ।"

यह सुन मधुसूदन ने कहा, "जब मैं, जिसे पीटा गया है, कोई दावा दायर नहीं कर रहा तो यह मुकदमा और यह दंड निराधार है।"

"जेल में सुव्यवस्था और शान्ति रखनी मेरा काम है। तुम्हारा नहीं। यदि इस दंगे से तुम्हें कहीं चोट लग जाती और तुम्हारी जान खतरे में पड़ जाती तो उत्तरदाई मैं होता, तुम नहीं थे।"

इतना कह कागज़ात मेज पर से उठा सुप्रिन्टेंडेन्ट वहां से चला गया। विभूतिनन्दन को कानस्टेबल पकड़ कर बाहर ले गये।

उनके चले जाने के पश्चात शेष वन्दी कुछ समय तक तो एक दूसरे का मुख देखते रहे। सबसे पहिले चक्रवर्ती ने इस चुप्पी को भंग किया। उसने कहा, "मैं ऐसी ही आशा कर रहा था।"

इस वाक्य ने सबको अपने अपने विचार-जगत से निकाल फिर चेतना के जगत में ला फेंका। एक ने कहा, "बहुत बुरा हुआ।" दूसरा बोला, "हमने यह तो निश्चय नहीं किया था।" तीसरे ने पूछा, "क्या निश्चय नहीं किया था?" उसने उत्तर दिया, "यह मारने-पीटने का तो प्रोग्राम नहीं था।"

इस प्रकार सब अपने अपने मन के उद्गारों को प्रकट करने लगे। इस समय चक्रवर्ती ने कहा, "अब क्या करना चाहिये?"

एक बोला, "जो जैसा करता है वैसा ही फल भोगता है। हम इसमें क्या कर सकते हैं?"

चक्रवर्ती ने कहा, "हां विभूतिनन्दन इस बार भी पहिले की भांति सीमा से बाहर हो गया था। उसको क्या अधिकार था कि इस प्रकार स्वयं ही दूसरों को दंड दे? और साथ ही उपाध्याय जी का कुछ दोष भी तो नहीं था। प्रातःकाल का गाना सो रहने से अधिक आनन्द देने वाला है। सच पूछो तो मैं तो संगीत में इतना रत हुआ था कि मैं बिलकुल भूल गया था कि मैं जेल में हूं।"

इस पर मधुसूदन कहने लगा, "कुछ भी हो। यह दंड बहुत अधिक है। हमें इसमें कमी करवाने के लिये कुछ न कुछ प्रयत्न करना चाहिये।"

एक ने पूछा, "हम क्या कर सकते हैं?"

किसी दूसरे ने कहा, "हम भूख-हड़ताल कर सकते हैं।"

चक्रवर्ती ने कहा, "परन्तु भूख-हड़ताल का कष्ट सहने को कौन तैयार है? मैं एक बार कर चुका हूँ और इस कष्ट का मैं वर्णन नहीं कर सकता। साथ ही हमारा पक्ष न्यायपूर्ण नहीं है।"

मधुसूदन ने कहा, "आप सब ठीक कहते हैं। मेरी राय भी यही है कि भूख-हड़ताल आप लोगों से चल नहीं सकती। परन्तु मेरी बात दूसरी है। मैं इस कष्ट को सहन कर सकता हूँ और यथार्थ में झगड़ा भी मेरा ही है। मैं अपने भाग के दोष के लिये प्रायश्चित करूंगा।"

इतना कह कर वह अपनी कोठरी में चला गया और ध्यानावस्थित हो विचार करने लगा। दूसरे बंदी अपने अपने कार्य में लग गये।

आज जमादार खाने का सामान उठवा कर लाया तो मधुसूदन ने कुछ भी नहीं लिया।

जमादार का विचार था कि कंजूसी से ऐसा किया जा रहा है। उसने कहा, "पंडित जी, इस प्रकार बिना खाये काम नहीं चलेगा। पैसों को

लेकर क्या करियेगा ? ये पैसे खर्च करने के लिये ही दिये जाते हैं।"

इस पर मधुसूदन ने कहा, "मैं छः आने भी नहीं लूंगा।"

"क्यों ?"

"मैंने व्रत रखा है। मैं अब मरण-पर्यन्त खाना नहीं खाऊंगा।"

"ओह ! तो तुम भूख-हड़ताल कर रहे हो ?"

"हां।"

"क्यों ?"

"इस कारण कि यहां के नेता विभूतिनन्दन को बिना कारण कठोर दंड दिया गया है।"

जमादार ने कहा, "ओह ! तो तुम सब आज कुछ नहीं खाओगे ?"

"मुझे दूसरों का कुछ ज्ञान नहीं। मैं तो केवल अपनी बात बता रहा हूँ।"

जमादार वहां से दूसरों के पास गया। सिवाय चक्रवर्ती के सबने खाना ले लिया। जब मधुसूदन को पता चला कि चक्रवर्ती ने खाना नहीं लिया तो वह बहुत हैरान हुआ। वह उसके पास गया और पूछने लगा, "आपने खाना नहीं लिया क्या ?"

"नहीं।"

"क्यों ? आप तो कहते थे कि हमारा पक्ष न्यायपूर्ण नहीं है।"

"हां, परन्तु वही पक्ष आप भी तो ले रहे हैं न।"

"मेरी बात दूसरी है।"

"कैसे दूसरी है ?"

"विभूतिनन्दन ने मुझे पीटा था और जब तक मैं शिकायत नहीं करता तब तक उस पर मुकदमा नहीं चलना चाहिये था और दंड नहीं होना चाहिये था।"

"मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह समझता हूँ कि उसने जेल का नियम तोड़ा है। इस कारण उसको दंड मिला है। आपको पीटना अथवा न पीटना तो एक दूसरी बात है।"

"जो आदमी बिना दोष के जेल में ठूंस दिया जाय उससे जेल-नियमों के पालन की आशा करना ठीक नहीं।"

"कुछ भी हो। मैं तो तब तक भूख-हड़ताल करूंगा जब तक आप करेंगे।"

"जब आप इसको अनुचित समझते हैं तो ऐसा करना ठीक नहीं।"

परन्तु इसका उत्तर चक्रवर्ती ने नहीं दिया और चुप रहा। उस दिन सायंकाल मधुसूदन और चक्रवर्ती को सुप्रिन्टेंडेन्ट ने दफ्तर में बुला भेजा। वहां पर विभूतिनन्दन भी उपस्थित था। सुप्रिन्टेंडेन्ट ने चक्रवर्ती से पूछा, "तुमने आज खाना नहीं खाया?"

चक्रवर्ती ने उत्तर दिया, "नहीं।"

"क्यों?"

"इसका उत्तर मधुसूदन देगा। मैंने तो सहानुभूति से भूख-हड़ताल कर दी है। जब वह खाना खायेगा तब मैं खा लूंगा।"

"यदि वह नहीं खायेगा तो?"

"तो मैं भी नहीं खाऊंगा।"

"तुम्हें स्वयं कुछ शिकायत नहीं है?"

"मुझे वही शिकायत है जो मधुसूदन को है।"

हताश सुप्रिन्टेंडेन्ट को मधुसूदन से पूछना पड़ा, "तुमने खाना क्यों नहीं खाया?"

"मुझे जेल के अफसरों से कुछ शिकायत है। वह यह कि एक तो विभूतिनन्दन पर मुकदमा नहीं चलाना चाहिये था। दूसरा यह कि यह दंड उसके अपराध से अधिक कठोर है।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने कुछ विक्षुब्ध होकर कहा, "जितना मैं तुम लोगों से नम्रता का व्यवहार करता हूँ उतना ही तुम्हारा व्यवहार अयुक्ति-संगत होता जाता है। क्या तुम यह मामूली सी बात भी नहीं समझ सकते कि उसने जेल का नियम तोड़ा है? और यह तो मेरा अधिकार है कि जेल में शांति और सुव्यवस्था स्थापित रखूं।"

"यदि इस बात को मान भी लिया जाय कि विभूतिनन्दन दोषी है तब भी दंड दोष से अधिक है। एक पढ़े-लिखे आदमी को, जिसको पहिले तो बिना मुकद्मा सिद्ध किये बंदी बना लिया गया है, बेंत लगाने का दंड देना अत्यन्त कठोरतापूर्ण है।"

इस पर सुप्रिन्टेंडेन्ट कुछ देर विचार-मग्न रहा और फिर बोला, "मैं तो यह समझता हूँ कि दंड कठोर नहीं। इस पर भी यदि मैं दंड कम कर दूं तो तुम भूख-हड़ताल तोड़ दोगे क्या?"

"इसका उत्तर तो यह जानकर दे सकता हूं कि दण्ड कितना कम किया गया है। मान लीजिये कि आप एक दर्जन बेंत लगाने के स्थान पर ग्यारह बेंत लगाने की आज्ञा कर दें तो मेरे विचार में आपने दण्ड कम नहीं किया। यह बेंतों की गिनती नहीं प्रत्युत उसके मानसिक प्रभाव के विपरीत मेरा आग्रह है।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने कुछ प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "मेरा विचार ऐसा करने का नहीं। मैं तो विभूतिनन्दन को कोई दण्ड नहीं दूंगा। केवल उसे यहां से बदल कर दूसरे कैम्प में भिजवा दूंगा। इसको चाहे तो दण्ड मानो चाहे रियायत।"

मधुसूदन बात को इतना शीघ्र सुलझते देख बहुत प्रसन्न हुआ। बोला, "यदि आप ऐसा करें तो मैं आपका धन्यवाद करूंगा।"

इस पर सुप्रिन्टेंडेंट ने चक्रवर्ती और मधुसूदन दोनों को जाने की आज्ञा दे दी। जब वे चले गये तो वह विभूतिनंदन से कहने लगा, "देखा, तुम्हें इनके व्यवहार से अपने व्यवहार का मुकाबिला कर लज्जित होना चाहिये। जिसको तुमने पीटा था वह तुम्हारे दण्ड को कम करवाने के लिये स्वयं कष्ट उठाने लिये उद्यत था।"

विभूतिनन्दन ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा, "साहब, मैं मूर्ख नहीं हूं। मैं भली भांति समझता हूं कि यह उपाध्याय खुफ़िया पुलिस का आदमी है और आपका व्यवहार और उसका व्यवहार सब पूर्व ही सोच-विचार कर निश्चित हो चुका था। यह सब मुझे बदनाम करने और मुझे अपने

साथियों के सम्मुख नीच और मूर्ख प्रगट करने के लिये था। आपका षड़यन्त्र सफल हुआ। मेरा परम मित्र मिस्टर चक्रवर्ती भी मुझसे विमुख हो गया है। ऐसे भड़काने वाले, मिथ्या मार्ग पर लेजाने वाले सरकारी एजेन्टों की बातों से मुझे धोका नहीं हो सकता। यदि मैं इस उपाध्याय को फिर पाऊं तो फिर पीटूंगा।"

सुप्रिन्टेंडेन्ट मुस्कराते हुए कहने लगा, "अच्छी बात है। जहां तक मेरा बस चलेगा अब तुम उसको नहीं पीट सकोगे।"

[ ४ ]

यद्यपि कुछ बन्दी विभूतिनन्दन के मधुसूदन को पीटने को अनुचित नहीं मानते थे और समझते थे कि मधुसूदन खुफिया-पुलिस का आदमी है, तो भी उनको विभूतिनन्दन के मधुसूदन की सहायता से बेंत लगाने से छूट जाने पर प्रसन्नता हुई थी। ये लोग मधुसूदन से, मधुसूदन की सभ्यता से सम्पर्क रखना उचित नहीं समझते थे, परन्तु उससे छेड़खानी करना भी ठीक न समझ तटस्थ रहते थे। चक्रवर्ती दिन प्रति दिन मधुसूदन के समीप और समीप आता जाता था और धीरे धीरे उसको विश्वास होता जाता था कि मधुसूदन निर्दोष फांस दिया गया है। प्रति दिन वे सायंकाल सहन में टहलते थे और परस्पर अनेकानेक विषयों पर वार्तालाप किया करते थे। कभी कभी उनमें घोर वाक्य-युद्ध भी हो जाता था। बहुत से विषयों में वे सहमत नहीं थे और उन पर बातचीत करते २ वाद-विवाद आरम्भ हो जाता था और ऐसे अवसरों पर दूसरे बन्दी भी बातचीत में भाग लेने के लिये आजाते थे।

सुप्रिन्टेंडेन्ट मधुसूदन के व्यवहार से अधिक प्रसन्न था। उसकी प्रसन्नता का सबसे बड़ा कारण मधुसूदन का प्रत्येक प्रातःकाल एक से दो घंटे तक कीर्तन-भजन करना था। सुप्रिन्टेंडेन्ट की स्त्री कलावती का यह नियम हो गया था कि प्रातःकाल चार बजे उठकर वह कीर्तन सुना करे।

एक दिन सुप्रिन्टेंडेन्ट ने मधुसूदन को एक तम्बूरा और करताल का एक जोड़ा दिया। मधुसूदन ने पूछा, "यह कहां से आया है और किसके

लिये है?"

"यह तुम्हारे लिये है। भेजने वाले ने अपना नाम बताने से इन्कार कर दिया है। उसने केवल यह कहा है कि 'मैं वह हूं जो तुम्हारे भजनों को सुनकर अतीव आनन्द प्राप्त कर चुकी हूँ।"

"ओह! तो यह कोई स्त्री है?"

"हां।"

"उन्होंने अपना पता भी नहीं बताया?" मधुसूदन के मन में पूर्णिमा का स्मरण हो आया था।

"नहीं, उन्होंने बताना उचित नहीं समझा।"

"ओह! वह आईं और बिना मिले चली गयीं।" मधुसूदन ने अपने मन में कहा। फिर उसने पूछा, "क्या यह भेंट देने वाला, नहीं वाली स्त्री झांसी में आई थीं?"

"यह हो सकता है, परन्तु उन्होंने केवल यही भेजी हैं।" इतना कह सुप्रिन्टेंडेन्ट मुस्कराता हुआ चला गया। यथार्थ में यह भेंट कलावती की ओर से थी और सुप्रिन्टेंडेन्ट यह प्रकट नहीं करना चाहता था।

कुछ ही काल में अन्य सुविधायें भी मिलने लगीं। बाग लगाने का सामान, पढ़ने को दैनिक पत्र और रात को पढ़ने के लिये रोशनी। ये बहुत बड़ी सुविधायें थीं। इन सब बातों के होने में कलावती का हाथ भी था। सुप्रिन्टेंडेन्ट का अपना एक छोटा सा पुस्तकालय था। उसमें से पुस्तकें भी इनको मिल जाती थीं।

तमाम सहन को बंदियों ने मिलकर एक छोटा सा पार्क बना डाला। उसमें फूल और घास लगा दिये गये। इसमें वर्षा ऋतु ने बहुत सहायता दी।

अब शीतकाल का आरम्भ था। सायं समय बंदी पार्क में बैठकर भजन गाते या सीखते थे। अखबार में से सामयिक बातों पर चर्चा होती थी और सब अपनी २ सम्मति देते थे। एक बार भारी विवाद हुआ। विषय भारत की भविष्य राज्य-प्रणाली था। अंत में हरिहर चक्रवर्ती ने

कहा, "मिस्टर उपाध्याय, हम आपके विचारों को बिलकुल नहीं समझ पाये। आप प्रजातंत्रवाद को ठीक नहीं समझते। आप एक राजा के शासन को भी नहीं मानते। तो फिर आप क्या चाहते हैं?"

मधुसूदन ने कहा, "अच्छी बात। पहले मैं आपको अपने मन की राज्य-प्रणाली का संक्षिप्त विवरण बताता हूँ। मैं एक व्यक्ति के शासन का अर्थ यह समझता हूँ कि वह एक व्यक्ति ही व्यवस्था बनाने वाला हो और वह स्वयं ही उस व्यवस्था को कार्य-रूप में चलाने वाला हो। राजा सब से बड़ा एक्जीक्यूटिव ( Executive ) अधिकारी भी हो और लेजिस्लेटिव ( Legislative ) अधिकारी भी, यह उचित नहीं। मैं यह चाहता हूं कि राजा अथवा कोई बड़ा अफसर प्रबन्ध करने पर नियत हो। चाहे तो वह प्रधान कर्मचारी पूर्व राजा का लड़का हो और चाहे कोई अन्य। शर्त केवल यह है कि वह योग्य हो। यह कर्मचारी देश के प्रबंध का उत्तरदाई हो।"

चक्रवर्ती ने उत्तेजित हो पूछा, "वह किस के सम्मुख उत्तरदाई हो? यदि वह अपने अधिकारों को उचित ढङ्ग से और लोगों के हित के लिये प्रयोग न करे तो कौन उससे पूछे और कैसे वह उसको पदच्युत कर सके?"

"देश में एक विद्वत-सभा हो। इस सभा में विशेष योग्यता और चरित्र के लोग ही सदस्य हो सकें। इस सभा को बनाने वाले विश्व-विद्यालयों के प्रोफेसर, स्कूल-कॉलेजों के अध्यापक और देश के दूसरे विद्वान आदमी हों। उदाहरण-रूप यह हो सकता है कि विद्वत्-सभा में डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर ही सदस्य बन सकें। साथ ही उनको सभा में भेजने के लिये उच्च कोटि के विद्वानों की मण्डली ही चुन सके। यह सभा राजा तथा अन्य प्रबंध करने वाले पदाधिकारियों के काम का निरीक्षण कर सकती है। यदि वे ठीक काम न करें तो उनको पदच्युत कर दे।"

"परन्तु जो एक समय राजा बन जायगा, उसके आधीन फौज तथा पुलिस हो जायगी। उस समय यदि वह विद्वत-सभा का कहना न माने तो वह सभा उस राजा अथवा प्रबन्धक को कैसे हटा सकेगी? होगा यह

कि राजा फौज के बल से विद्वत-सभा के सदस्यों को कैद कर लेगा और मनमानी करने लगेगा।"

"विद्वत्-सभा का मान देश में इतना होना चाहिये कि कोई प्रबन्धक अधिकारी ऐसा करने का साहस न कर सके। वे लोग तो सर्व-साधारण के शिक्षक होंगे, तो वे लोगों को अपने पक्ष में क्यों नहीं रख सकेंगे? फौज बिना लोगों की सहायता के जी नहीं सकती।"

"अन्त में सर्व-साधारण से राज्य-कार्य में सहायता लेनी ही पड़ी न।"

"हां, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि विद्वत्-सभा का चुनाव लोगों के आधीन हो।"

"ऐसा होने में हानि ही क्या है?"

"साधारण लोगों द्वारा चुनी हुई सभा विद्वानों तथा चरित्रवानों की सभा होगी यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। जन-साधारण में इतनी योग्यता और परख नहीं हो सकती, जितनी कि पढ़े-लिखे विद्वानों में होगी और राज्य-प्रबन्ध का काम उच्च से उच्च कोटि के लोगों के हाथ में होना चाहिये।"

"जन-साधारण में अधिक व्यवहारिक बुद्धि होती है जो पढ़े-लिखे विशेषज्ञों में नहीं। इस कारण उनसे चुनाव में गलती होनी अधिक सम्भव है।"

"या तो विद्वान शब्द का अर्थ आप नहीं समझते या केवल पक्षपात से बात करते हैं। इस दासता की अवस्था में भारतवर्ष के विद्वान अविद्वानों से मूर्ख हो सकते हैं, परन्तु यह विशेष परिस्थिति के कारण है। स्कूलों में अथवा महाविद्यालयों में शिक्षक तथा अन्य कहे जाने वाले विद्वान, अफसरों के पिट्ठू, रियायती पदवी प्राप्त किये होते हैं। परन्तु जन-साधारण की अवस्था तो इससे भी अधिक पतित है। दासता के कारण उनकी भी बुद्धि मलिन हो चुकी है और वे उन्हीं रियायती पदवी-धारियों को विद्वान समझते हैं। यदि एक विद्यालय के अध्यापक को आप बुद्धिमान नहीं मानते, तो फिर अपने लड़के को उसके पास पढ़ने

क्यों भेजते हैं ? क्या यह जानता की बुद्धि की मलिनता का प्रमाण नहीं ? जो मनुष्य यह नहीं समझता कि उसकी परम प्रिय वस्तु, अर्थात सन्तान, किनके पास रहकर और शिक्षा प्राप्त कर, सच्चरित्र, कुशल और ज्ञानवान होगी, वह भला अपने साधारण वोट के लिये कब विचारशील हो सकता है। जो प्रलोभन उसे अपनी सन्तान के भविष्य पर कुठाराघात करने पर उद्यत करते हैं क्या वही प्रलोभन उसे अपना वोट वेच देने को प्रस्तुत न कर देंगे ?"

"परन्तु कौन्सिलों के पिछले चुनावों में तो यह बात सिद्ध नहीं हो सकी। देखिये कितने लोगों ने कांग्रेस के नाम पर उम्मीदवारों को वोट दिये हैं। क्या यह इस बात का सूचक नहीं कि जन-साधारण में अच्छी-खासी परख होती है ?"

"क्या कांग्रेस से भेजे गये लोगों को चुनना कोई अच्छी परख का सूचक है। यह एक बात का सूचक अवश्य है। वह यह कि महात्मा शब्द से, अथवा भड़काने वाले व्याख्यानों से, हिन्दू कितने प्रभावित होते हैं। इस समय तो भारतवासियों की और मुख्य रूप से हिन्दुओं की यह अवस्था है कि कोई भी उनको यह विश्वास दिला दे कि वह उनको अंग्रेजों के चंगुल से निकाल देगा तो वे उसी को वोट दे देंगे। यह विश्वास तो बातें करने में चतुर अवश्य दिला सकते हैं, परन्तु यथार्थ में लोगों का भला कौन कर सकता है यह परख साधारण लोगों में नहीं है और न होने की आशा है।"

"लेकिन वे लोग जो ज्ञान, विज्ञान, राजनीति और सामाजिक बातों के सिद्धान्त-रूप में जानते हैं विश्व-विद्यालयों में अध्यापक बन जाते हैं और उनसे इस बात की आशा भी की जाती है। व्यवहारिक ज्ञान की न तो उनसे कोई आशा करता है, न वे ही रखते हैं। इसी कारण व्यवहारिक बातें, जो राज्य-कार्य चलाने में आवश्यक हैं, वे नहीं जानते और उनका राज्य के कामों में हस्तक्षेप अनर्थकारी होगा।"

"मिस्टर चन्द्र जी, यह आप भारतवर्ष के विद्यालयों की वर्तमान

अवस्था का वृत्तांत बता रहे हैं। यह सत्य है कि इस समय भारतवर्ष में महाविद्यालयों और विश्व-विद्यालयों के अध्यापक और विद्यार्थी संसार के व्यवहारिक ज्ञान से इतने दूर हैं कि वे कोरी बातें ही करना जानते हैं। यही कारण है कि शिक्षा के फैलने से युवकों में चरित्र और कार्य-कुशलता कम होती जाती है। यह कोई वांच्छनीय अवस्था नहीं। संसार के अन्य उन्नत देशों में ऐसा नहीं है। वहां एक प्रोफेसर अपने विषय को सिद्धांत से लेकर व्यवहार तक भली भांति जानता है और समझता है। यही कारण है कि वहां के युवक उत्तरोत्तर अधिक और अधिक उन्नत होते जाते हैं। यहां भारतवर्ष में पढ़े-लिखों का जीवन अपढ़ लोगों से कम संस्कृत और सुव्यवस्थित है। जर्मनी ने इस मार्ग में बहुत उन्नति की है। वहां शिक्षक कोई भी बड़े से बड़ा काम हाथ में लेने के योग्य होते हैं।"

चक्रवर्ती कुछ मुस्करा कर कहने लगा, "परन्तु उन देशों में भी, जहां अध्यापक इतने योग्य हैं, राज्य-कार्य की व्यवस्था देने में प्रोफेसरों का कोई हाथ नहीं।"

"हां! और यही कारण है कि उनका पतन अब कुछ वर्षों की बात है। इङ्गिलस्तान और युरोप के उन देशों में जहां बड़े २ विद्वान शिक्षा का काम कर रहे हैं, परन्तु राज्य-भार जन-साधारण से चुने लोगों के हाथ में है, एक विद्वान आदमी यह कहता है कि लेखनी तलवार से प्रबल होगी ( Pen shall supercede the sword ) वहां उसी देश के कहे जाने वाले राजनीतिज्ञ परस्पर द्वेष और अन्याय के पथ पर चल रहे हैं। जहां एक विद्वान आदमी यह कहता है कि योग्यता से लोगों का मान करो, जन्म से नहीं ( Worth, not birth shall rule mankind ) वहां उसी विद्वान के सजातीय राजनीतिज्ञ दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों से दुर्व्यवहार करते हैं। यह सब अनर्थ हो रहा है। ज्ञान, बुद्धि, न्याय, सत्य, और सच्चरित्रता की अवहेलना और अपमान हो रहा है और इसका परिणाम घोर विपत्ति होगी। बहुत शीघ्र ही संसार अपने आप बनाई चिता में जलने लगेगा।"

"तो क्या विद्वान जब शक्तिशाली हो जायेंगे वे मद-मस्त और दुर्जन न हो जायेंगे?"

"यथार्थ विद्वानों के पतन की, साधारण लोगों के पतन से, कम सम्भावना है।"

"परन्तु यथार्थ विद्वानों की खोज कौन करेगा?"

"विद्वानों की खोज विद्वान ही कर सकते हैं। जन-साधारण में विद्वानों की विद्वत्ता और अच्छे चरित्रवान के चरित्र की परख नहीं होती। एक साधारण आदमी भला कैसे जान सकता है कि राज्य जैसे दुसाध्य काम को कौन सत्य, न्याय और धर्म के अनुकूल कर सकेगा?"

इस पर एक और बन्दी बोल उठा, "मिस्टर उपाध्याय, आपकी युक्तियां तो ठीक हैं, परन्तु सर्व-साधारण की स्वतन्त्रता का क्या होगा? जनता कैसे समझेगी कि वे स्वतन्त्र हैं और अपने देश के राज्य-कार्य को चलाने में उनका भी हाथ है?"

"स्वतन्त्रता के मिथ्या अर्थ समझे जाते हैं। स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक बात करने की स्वतन्त्रता हो। यदि कोई मनुष्य आत्मघात करना चाहे तो हम उसको ऐसा करने नहीं देते। यदि कोई बालक आग से खेलना चाहे तो हम उसे रोक देते हैं। क्या ऐसा करना स्वतन्त्रता में बाधा डालना है? कदापि नहीं। क्या एक लोहार को दर्जी का काम करने से लाभ होगा? क्या एक धोबी से वैद्य का काम लेना उचित है? यदि यह उचित नहीं तो फिर राज्य-कार्य के लिये पदाधिकारी चुनना कैसे लोहार, चमार, दुकानदार, वकील, चपरासी और क्लर्क वगैरह से एक समान उचित माना जा सकता है। यह काम तो देश के उच्च कोटि के विद्वान और चरित्रवान लोगों का है। ये लोग ही अधिकारी-अनधिकारी में भेद-भाव कर सकते हैं। जनता को तो स्वतन्त्रता का आभास तब ही हो सकता है जब उनको खाने, पहनने, रहने और अन्य प्रकार के सुख प्राप्त हों। ऐसे राज्य को करना, जिसके [illegible] नहीं, स्वतन्त्रता नहीं कहाता।

"देश और संसार का सुख इस बात में है कि प्रजा-तंत्र राज्य-पद्धति के स्थान पर विद्वान, योग्य, निस्वार्थी और सदाचारी लोगों के राज्य स्थापित हों। बड़ी बड़ी कौंसिलें, बड़ी बड़ी सभायें राज के काम को चलाने के लिये उपयुक्त नहीं हो सकतीं। दो-चार यथार्थ योग्यता रखने वाले मनुष्य, जिनको अपने काम की सफाई देश के पढ़े-लिखे विद्वानों और सदाचारी लोगों के सम्मुख देनी हो, देश का काम बड़ी चतुराई से कर सकते हैं।"

"इसमें एक आपत्ति होगी। जिस सरकार के अफसरों पर वे निगहबानी रखते होंगे उसी के तनख्वाहदार नौकर होंगे।"

"ऐसा तो सर्वत्र और सदैव होता रहता है। हाईकोर्ट के जज सरकार से तनख्वाह नहीं पाते क्या? इसपर भी लोग उन्हें सरकारी अफसरों के आधीन नहीं समझते। जब एक पढ़े-लिखे और सचरित्र मनुष्य को यह पता लग जाय कि उसने सरकार के कामों का निरीक्षण करना है तो वह अपनी बुद्धि को खो नहीं बैठता। यही तो ज्ञानी की परख है।"

"तो क्या व्यवस्थापिका सभायें नहीं चाहियें?"

"वह विद्वत्-सभा ही व्यवस्थापिका सभा हो सकती है।"

इस दिन वाद-विवाद में देर हो गयी थी। चक्रवर्ती और उसके साथी यद्यपि मधुसूदन की नीति के पूर्ण रूप से अनुयायी नहीं हो गये थे तो भी उनके मन में उथल-पुथल मच गयी थी।

[ ५ ]

एक दिन चक्रवर्ती ने अत्यन्त हृदय-विदारक कथा सुनाई। बात आतंकवादियों के विषय में हो रही थी। मधुसूदन सदा की भांति कह रहा था कि आतंकवाद देश को स्वतन्त्र करने में सफल नहीं हो सकता। चक्रवर्ती का पक्ष यह था कि आतंकवाद से सफलता हो अथवा न हो यह है एक स्वाभाविक बात। उसका कहना था कि कोई मनुष्य हत्या करने को तब उद्यत होता है जब उसके मन को इतना दुख होता है कि वह पागल हो जाता है। ऐसी अवस्था में केवल दो मार्ग होते हैं, एक

आत्म-हत्या और दूसरा किसी दूसरे की हत्या करना। चक्रवर्ती ने अपनी आप-बीती की एक घटना सुनाते हुए कहा, "मेरे एक मित्र क्रांतिकारी दल के थे। पुलिस उनको पकड़ना चाहती थी और वह भागे हुए थे। एक बार वह मेरे घर में ठहरे हुए थे कि पुलिस उनकी टोह पाकर आ धमकी। वह मित्र पकड़ लिये गये और साथ मैं भी। मुझे पांच वर्ष का कठोर कारावास हुआ। यह घटना इलाहाबाद की थी और मुझे फतहगढ़ जेल में भेज दिया गया।

"मुझे वहां एक दूसरे कैदी के साथ रखा गया। मेरे साथी का नाम श्यामसुन्दर वर्मा था। वह बरेली हत्या-कांड का कैदी था। वह बेचारा खांसी और ज्वर से कई मास से पीड़ित था, परन्तु उसने इसकी अधिकारियों से कभी चर्चा नहीं की। जो कुछ रूखी-सूखी उसे मिलती थी वह खाकर धैर्य से पड़ा रहता था।

"जब मैं वहां पहुंचा तो श्यामसुन्दर गीता का पाठ कर रहा था। मुझे देख बहुत प्रेम से मिला। परिचय हो जाने के पश्चात उसने मुझे अपना रहस्य बताया। कहने लगा, 'मुझे तपेदिक है। मैं छः मास से अधिक नहीं जी सकता, परन्तु मैं अधिकारियों से इसकी शिकायत नहीं करना चाहता। व्यर्थ का शोर मच जायगा। घर वाले परेशान होंगे। जनता में चर्चा होगी। सरकार जब समझेगी कि मेरा जीवित रहना असम्भव है तो मुझे छोड़ देगी और फिर घर वाले रुपये की होली कर देंगे ताकि मैं बच जाऊं। परन्तु मैं बच नहीं सकता। इस कारण मेरा यह निश्चय है कि मैं किसी को न बताऊं और शांति से इस जीवन-यात्रा को समाप्त कर दूं।'

"मैंने कहा, 'यह तो आप ठीक नहीं कर रहे। घर वालों के साथ और उससे भी अधिक अपने साथ अन्याय कर रहे हैं।'

"उसने उत्तर दिया, 'मेरे साथ और मेरे घर वालों के साथ अन्याय तो उस दिन हुआ था जब मैं कैद किया गया था।'

"उसने मेरी आंखों के सम्मुख अपना रक्तविहीन मुख उठाकर कहा, 'मैं फिरोजपुर छावनी का रहने वाला हूँ। एक दिन सायंकाल एक स्त्री खेत में से कुछ हरी चरी काट रही थी। दो टोमियों की उस पर नज़र पड़ गयी। उस स्त्री से उन्होंने दुराचार किया। जब बात फैल गयी तो टोमियों पर कोर्टमार्शल किया गया और दोनों को दो दो मास की कैद हुई।

'मैं उन दिनों दसवीं जमात में पढ़ता था। मैंने एक उर्दू समाचार-पत्र में इस घटना का वृत्तान्त पढ़ा था। उसके पढ़ते ही मेरा रक्त उबलने लगा। उर्दू समाचार-पत्रों में बातें बढ़ाचढ़ा कर लिखी जाती हैं। इस बात की वास्तविकता जानने के लिये मैं एक दिन स्कूल से अनुपस्थित होकर उस गांव में पहुंचा जहां की वह स्त्री रहने वाली थी। गांव में एक बनिये के पास पहुँच कर मैंने दो पैसे की रेवड़ी खरीदीं, पीछे बात करने लगा। धीरे धीरे सब किस्सा मालूम कर लिया। वह स्त्री उस समय अफीम खाकर मर चुकी थी। गांव वालों और घर वालों की दृष्टि उसे देख लज्जा से झुक जाती थी। वह यह सहन नहीं कर सकी। घटना के दूसरे दिन वह छावनी में पहुँची और 'सी० ओ०' से उसने शिकायत की। शिकायत पर टोमियों की पहिचान हुई, जिस पर उन्होंने अपना दोष स्वीकार कर लिया। इस पर उनको दो दो मास का कारावास का दण्ड दिया गया। इस दण्ड होने के पश्चात एक दिन गांव के बाहर कुँए के समीप उस स्त्री की लाश मिली। डाक्टरी परीक्षा पर पता चला कि उसने अफीम खाई थी।

'यह कथा सुन कर मेरा सिर घूमने लगा था। मैं वहां से चला तो छावनी पहुंचा। वहां एक सिख सिपाही से मैंने उन गोरे सिपाहियों का पता पूछा। उस सिख सिपाही ने बहुत आनाकानी की, परन्तु मेरे बार बार आग्रह करने पर वह मेरी सहायता करने पर उद्यत होगया। वह मुझे गोरा-लाइन में ले गया। वहां कैन्टीन में ले जाकर उसने मुझे बबरची से मिला दिया। वह मुसलमान था। मुझे ऊपर-नीचे से देख कर पूछने

लगा, 'उनको देख कर क्या करोगे ?' मैंने उत्तर दिया, 'ऐसे ही।' इस पर वह कुछ काल तक सोचता रहा। फिर एक स्टूल की ओर संकेत कर बोला, 'बैठ जाओ।'

'लगभग एक घंटे के पश्चात बहुत से गोरे कैन्टीन में आये और डाइनिंग हॉल में चाय इत्यादि पीने लगे। कुछ और देर में चार और गोरे चाय पीने आये। इनमें से दो की ओर संकेत कर बबरची ने बताया कि वे हैं जो दो दिन हुए कैद से छूट कर आये हैं और छूटने की खुशी में दोस्तों को दावत दे रहे हैं।'

'मैं कुछ काल तक उनको देखता रहा। पश्चात वहां से चला आया। उसी समय मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं इनको मार डालूंगा।

'कई मास गुज़र गये। मैंने दसवीं की परीक्षा पास कर ली थी। इस पर भी मेरे मन में विचार दृढ़ था। उस विचार को पूर्ण करने के साधन न थे। परीक्षा के उपरान्त मैं प्रति दिन गोरा लाइन में एक चक्कर लगाया करता था, और प्रायः हर रोज उनको, कभी कैन्टीन में जाते, कभी वहां से आते और कभी सैर करते देखा करता था। मेरे मन में उनकी सूरत ऐसी अंकित होगयी थी कि अंधेरे में देखने पर भी उनको पहिचान सकता था।

'एक दिन, सायंकाल पांच बजे के समय, मैं गोरा-लाइन से लौट रहा था कि एक पठान छुरियां-चाकू सड़क के किनारे बेचता दिखाई दिया। मैं वहीं ठहर कर उसके चाकू देखने लगा। एक बहुत बढ़िया छुरी मुझे पसन्द आई। मैंने उसका दाम पूछा। पठान ने सवा रुपया बताया। मैं दाम सुन कर चुप कर गया। पठान ने छुरी की बहुत प्रशंसा की। कहने लगा, 'यह असली फौलाद की है। पुराने जमाने की एक तलवार में से बनाई है।'

'छुरी बहुत तेज थी। पठान ने एक बारीक तागा एक हाथ में लटका कर दूसरे हाथ में छुरी से एक वार से कट से काट दिया। मेरे मन में

जो बात समा रही थी वह एक रूप धारण करने लगी। मैंने पठान से कहा 'कुछ कम लो।' उसने कहा, 'खुदा की कसम, एक रुपया दो आना घर की लागत है।'

'मैं उदास हो उठ खड़ा हुआ। मेरे पास जेब में केवल आठ आने थे। पठान मेरे मुख की तरफ देख कर बोला, 'बाबू, क्या बात है? खुदा की कसम खाई और फिर भी यकीन नहीं आया।'

'मैं मुख से कुछ नहीं बोला, परन्तु इतना अच्छा अवसर हाथ से जाते देख मेरा मुख लाल हो गया। मेरी आंखें कुछ भीग गयीं। पठान मेरे मुख की तरफ देख रहा था। मैंने अपने आंसू छिपाने के लिये मुख फेर लिया और घर की ओर चल पड़ा। पठान ने पीछे से आवाज दी, परन्तु मैं नहीं रुका। अभी मैं एक फलांग भी नहीं आया था कि वही पठान लम्बे २ कदमों से चलता हुआ मेरे साथ आ मिला। मेरे पास पहुँच कर बोला, 'बाबू, तुम रोता क्यों है?'

'मेरा मुख फिर लाल हो गया। मेरे मुख से निकल गया, 'मेरे पास सवा रुपया नहीं है और मैं तुम्हारी खुदा की कसम झूठी नहीं करना चाहता।'

'कुछ पग मेरे साथ २ चल कर पठान ने कहा, 'देखो बेटा, छुरी का क्या करोगे? चाकू ले लो।'

'मैंने दृढ़ता से कहा, 'नहीं, मुझे चाकू नहीं चाहिये।'

'पठान ने कहा, 'लेकिन छुरी का क्या करोगे? यह तो कसाई के काम की है। यह बकरा काटने के काम में आती है।'

'मैंने कहा, 'हां, मुझे बकरा काटना है।'

'उसने मेरे मुख की ओर ध्यान से देख कर कहा, 'बकरा? नहीं, तुमने किसी अपने दुश्मन को कत्ल करना है।'

'मैं चुप रहा और चलता गया। वह मेरे आगे हो मेरा मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। मैंने क्रोध में कहा, 'हट जाओ, नहीं तो अभी हल्ला कर पकड़वा दूंगा।'

'पठान हंस पड़ा और बोला 'खुदा की कसम। सच बता दो। क्या

किसी के माशूक के दोस्त को मारने जा रहे हो?'

'मैंने फिर क्रोध में कहा, 'नहीं तुम नहीं समझ सकते।'

'इस पर पठान ने मेरा रास्ता छोड़ दिया और मेरे साथ २ चलने लगा। फिर मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगा और बहुत ही मीठी आवाज में कहने लगा, 'बेटा, मुझे बता दो। नहीं तो मैं तुम्हारे बाप से सब कुछ कह दूंगा।'

'न जाने मेरे मन में क्या आया। मन की दुर्बलता थी अथवा पठान की सहानुभूति, नहीं कह सकता। कुछ भी हो। मेरे आंसू, जो मैं बड़े यत्न से रोके हुए था, बहने लगे और मैंने उस औरत का सब क़िस्सा सुना दिया। इसके बाद मैंने अपना निश्चय बताया।'

'पठान ने पूछा, 'उस औरत से तुम्हारा क्या रिश्ता है?'

'मैंने उत्तर दिया, 'रिश्ता? रिश्ता कुछ नहीं। वह हिन्दुस्तानी औरत थी। उन लोगों को पूरा दण्ड केवल इस कारण नहीं दिया गया कि वह हिन्दुस्तानी औरत थी।'

'यह सुन पठान गम्भीर विचार में पड़ गया। मैं मुख सामने किये चला जाता था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उसने अपनी वास्कट की जेब में से एक मैला सा रुमाल निकाला और अपनी आंखें पोंछ लीं। मैंने उसकी ओर आंख नहीं फेरी। कुछ दूर तक वह चुपचाप मेरे साथ २ चलता गया। फिर उसने अपने थैले में हाथ डाल कर बड़ी छुरी निकाली और मेरे हाथ में देकर बोला, '[illegible], खुदा हाफिज।'

'मैंने जेब से आठ आने निकाल उसे देने चाहे। उसने वह लेने से इनकार करते हुए कहा, 'यह मेरी नजर है। सलाम।' इतना कह कर वह पीछे को लौट गया। इसके बाद मेरी उससे भेंट नहीं हुई।

'मैं अगले दिन फिर [illegible] में गया, परन्तु उसको नहीं देख सका। फिर कई दिन तक जाता रहा और मैंने उसको नहीं देखा। इस पर मैंने [illegible] से पूछा। उसने कहा कि उसकी कम्पनी तो बदली हो [illegible] है।

'मैं घर से कुछ रुपये चुराकर बरेली पहुँचा। छावनी में गया और तीन-चार दिन की खोज के पश्चात उनमें से एक को एक और गोरे के साथ घूमते देख लिया। इसे शुभ अवसर जान मैं निधड़क उनकी तरफ बढ़ा। वे अपनी बातों में इतने मस्त थे कि उनका ध्यान मेरी ओर नहीं आया। जब दो-तीन पग का अन्तर रह गया तो मैंने कोट से छुरी निकाल ली और लपककर उसके पेट में घुसेड़ दी। इसके बाद भाग जाने का मुझे विचार नहीं सूझा। मैं वहां खड़ा खड़ा यह कहने लगा, 'यह उस स्त्री से बलात्कार का फल है।'

'उस गोरे के साथी ने मुझे पकड़ना चाहा। मैंने हाथ से छुरी फेंक दी और भागने के लिये लौटा, परन्तु सड़क पर चलते हुए दो हिन्दुस्तानियों ने मुझे पकड़ लिया।

'इसके पश्चात मैं अर्ध-बेहोशी की हालत में होगया। वे मुझे पकड़ कर थाने में ले गये। अगले दिन मुझे मैजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित किया गया। मैंने सत्य सत्य सब वृत्तान्त सुना दिया। केवल बबरची और पठान की बात नहीं बताई।

'इसके पश्चात घर वाले आये। वे मेरी मूर्खता पर बहुत रोये-गाये। मेरी तरफ के वकील ने मेरे जुर्म को मान लेने पर बहुत बुरा-भला कहा, परन्तु मैं अपनी बात पर डटा रहा। मैंने सैशन कोर्ट में साफ साफ कह दिया, 'यह गोरा कात्ल था। तुम्हारे कानून ने इसको केवल दो महीने का मामूली दण्ड देकर छोड़ दिया था। मेरी आत्मा ने इसे अन्याय समझा। तुम न्याय के आसन पर बैठे हो। तुम्हें न्याय को बदनाम होने से बचाना चाहिये। मैंने भी वही किया है। मैंने गोरे को मारा है, परन्तु मैं दोषी नहीं हूँ। मुझे कोई दण्ड नहीं मिलना चाहिये।'

'इतना संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट बयान सुनकर मुकदमा लम्बा करने का न तो अवसर था और न ही आवश्यकता। दूसरे दिन मुझे फांसी दिये जाने की आज्ञा सुना दी गयी। इलाहाबाद हाईकोर्ट में मेरी अपील की गयी। वहां मुझे जन्म-कैद का दण्ड हुआ।

'मैं पांच वर्ष से इस कोठरी में बन्द हूँ। लगभग एक वर्ष से मुझे ज्वर आता है और खांसी का वेग बढ़ रहा है। अब तो अन्त बहुत समीप है।'

"इस सब कथा के उपरान्त हम दोनों में बहुत घनिष्टता हो गयी थी। मेरे वहां पहुंचने के लगभग तीन मास पश्चात एक दिन उसको इतने जोर की खांसी आई कि उसके मुख से खून आने लगा, और वह बेहोश हो गया। उसी संध्या को मैंने वार्डर से कह दिया। दूसरे दिन डाक्टर आया और परीक्षा कर कह गया कि इसे टी० बी० है।

"इस परीक्षा के पश्चात उसने मुझसे कहा, 'मैं अस्पताल में जाकर मरना नहीं चाहता।'

"मैंने पूछा, 'तो अब क्या करोगे?'

"उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। चटाई पर जा बैठा। गीता खोल कर पढ़नी आरम्भ कर दी। एक घण्टे तक पढ़ने के पश्चात मुझे पास बुलाकर कहने लगा, 'अब मेरा अन्तिम समय आगया है। मेरी यह गीता तुम ले लो। इसे पढ़ा करना। यह शांति का स्रोत है। मुसीबत में इसे पास रखना।'

"इतना कहकर वह आसन लगाकर बैठ गया। आंखें मूंद लीं। तीन-चार बार सांस चढ़ाया और फिर उसका सिर धीरे धीरे झुककर चटाई के साथ आ लगा।"

"इतने शांतिमय अन्त ने मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला। मैं नास्तिक था और तब से परमात्मा को मानने लगा हूं। पश्चात मेरी पांच वर्ष की कैद समाप्त हुई। मैं उसकी गीता को बगल में दबाये हुए जेल से बाहर निकला, परन्तु उसी समय फिर बन्दी बना लिया गया। तब से यहां पर हूं।"

[ ६ ]

उपरोक्त कथा ने मधुसूदन के मन पर बहुत प्रभाव डाला। वह हिंसा का विरोधी होते हुए भी श्यामसुन्दर के काम की निन्दा नहीं कर सकता

था। वह मन में सोचता था कि कुछ बात है जो उसकी हिंसा को भी अहिंसा से ऊपर ले गयी है। इसको सुनने के पश्चात वह यह नहीं कह सकता था कि हिंसा सदैव बुरी बात है। मधुसूदन के विचारों में परिवर्तन आ रहा था। वह धीरे धीरे हिंसा-पथ की ओर आकर्षित हो रहा था। वह सोचता था कि कभी कभी हिंसा भी अच्छी होती है।

बन्दी-कैंप में पायोनियर अखबार भी आता था। महात्मा गांधी का सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ हुआ तो बन्दी-कैंप में उस पर चर्चा होने लगी थी। मधुसूदन उस आंदोलन से सर्वथा तटस्थ था। उस आंदोलन में लोगों के धड़ाधड़ पकड़े जाने का समाचार पढ़कर अब उसके मन में जोश उत्पन्न नहीं होता था।

अकस्मात एक दिन कलकत्ते में लाठी-चार्ज का समाचार छपा। मधुसूदन ने पढ़ा कि पूर्णिमा को गोली लगी है। दूसरे दिन खबर मिली कि गोली तो पुलिस-अफसर पर चलाई गयी थी, परन्तु पूर्णिमा, जिसने पुलिस अफसर को बचाने के लिये अपने आपको आगे कर दिया था, बुरी तरह घायल हुई है। कुछ दिन पश्चात यह समाचार मिला कि पूर्णिमा की अवस्था शोचनीय है।

इस रात मधुसूदन को नींद नहीं आई। दूसरे दिन उसका कीर्तन और संगीत का अभ्यास बन्द हो गया। इस प्रकार कई दिन निकल गये। एक दिन हरिहर चक्रवर्ती ने उसके इस प्रकार शोकग्रस्त रहने और दिन भर सोये रहने का कारण पूछा। मधुसूदन ने केवल यह उत्तर दिया, "अब तो यहां रहना दूभर प्रतीत हो रहा है।"

चक्रवर्ती ने उसे सांत्वना देने के लिये कहा, "भाई उपाध्याय, अभी तो नौ मास ही व्यतीत हुए हैं। तुम मेरी ओर देखो, पांच वर्ष का कठोर कारावास और फिर अनिश्चित समय के लिये बन्दी। इसे भी तीन वर्ष हो चले हैं।"

मधुसूदन ने कहा, "यह आत्मा तो कैद नहीं है। यदि शरीर उसकी स्वतंत्रता में बाधक होगा तो इसे भी छोड़ना पड़ेगा।"

चक्रवर्ती मधुसूदन में विशेष परिवर्तन का अनुभव करने लगा था। दिन प्रति दिन वह समाचार-पत्र के प्रत्येक शीर्षक को उत्सुकता से पढ़ता था, मानों वह किसी विशेष समाचार की प्रतीक्षा में हो। जब शीर्षक पढ़ लेता तो समाचार-पत्र पढ़ने में उसे रुचि नहीं रहती थी। आजकल वह पूजा-पाठ और कीर्तन भी छोड़ बैठा था। प्रातः उठता, शौचादि से निवृत्त हो अहाते में टहलने लगता था। समाचार-पत्र के शीर्षक पढ़ खाना खा लेता। पश्चात अपने बिस्तर पर सो जाता। सायंकाल फिर अहाते में टहल कर समय व्यतीत करता था। मधुसूदन के साथी उसमें यह सब परिवर्तन देख रहे थे, परन्तु किसी को इसका कारण ज्ञात नहीं था।

एक दिन अधिक दिन चढ़ आने पर भी मधुसूदन के दर्शन नहीं हुए। समाचार-पत्र भी आगया, परन्तु मधुसूदन की कोठरी का दरवाजा नहीं खुला। हरिहर को संशय हुआ कि उपाध्याय बीमार हो गया है। उसने मधुसूदन की कोठरी का दरवाजा खटखटाया। भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला। चक्रवर्ती ने दरवाजे को धक्का दिया तो वह खुल गया। देखा मधुसूदन का बिस्तर बिछा है पर उस पर कोई लेटा नहीं। चक्रवर्ती अवाक मुख वहीं खड़ा रह गया। वह नहीं समझ सका कि मधुसूदन का क्या हुआ। वह कोठरी को वैसे ही छोड़ बाहर आगया। क्षण भर में यह समाचार सब को ज्ञात हो गया। अब टट्टीखाना देखा गया। जब वह वहां भी नहीं मिला तो हरिहर को मधुसूदन की बात स्मरण हो आई, 'अब तो यहां रहना दूभर हो रहा है।'

परन्तु वह गया कहां? कोई समझ नहीं सकता था। इतनी इतनी ऊंची दीवारों को फांदकर निकल जाना असम्भव था। किसी ने राय दी कि सुप्रिन्टेंडेन्ट को सूचना दे देनी चाहिये, परन्तु चक्रवर्ती ने सबको मना कर दिया। उसने कहा, "यदि वह भाग निकलने में सफल हो गया है तो एक एक क्षण का अवसर जो उसको इस समय मिल रहा है लाख लाख रुपये का होगा। सुप्रिन्टेंडेन्ट को सूचना मिलते ही चारों तरफ खोज आरम्भ हो जावेगी।"

नियमानुकूल सुप्रिन्टेंडेन्ट दिन के बारह बजे देख-भाल के लिये आया। आते ही चक्रवर्ती ने पूछा, "क्या मधुसूदन को आपने यहां से कहीं और भेज दिया है ?"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने अभिप्राय न समझते हुए कहा, "नहीं ! तुम्हारा मतलब ?"

"आज प्रातःकाल से वह कहीं दिखाई नहीं देता।"

"कौन ? उपाध्याय ?"

"हां !"

"सुप्रिन्टेंडेन्ट के मुख का रंग फीका पड़ गया। वह घबरा गया। उसने फाटक के पास जाकर खतरे की घन्टी बजा दी। जब सब सिपाही इकट्ठे होगये तो उनको बताया कि क्या होगया है और तुरन्त खोज आरम्भ होगयी। किले का कोना २ खोजा गया। किले के बाहर जंगल था। उसकी भी तलाशी ली गयी। केवल दो बातों का पता चला। एक तो यह कि किले के पश्चिम की दीवार में एक दरार में एक लकड़ी फंसी थी और उससे एक रस्सी बंधी थी जो किले के बाहर की तरफ लटक रही थी। किले की दीवार पर बाहर की ओर पांवों के बार बार खिसकने के चिन्ह बने हुए थे। यह दीवार बाहर की भूमि से सवा सौ फुट ऊंची थी और रस्सी भूमि से दस फुट ऊंची ही रह गयी थी। यह रस्सी उस सुतली को बटकर बनाई गयी थी जो सहन में बेलों को बांधने के लिये मंगाई गयी थी।

जंगल में दो दिन की खोज के पश्चात एक आधा, जंगली जानवरों से खाया, मनुष्य का शव मिला। शव की तो पहिचान नहीं हो सकी, परन्तु अनुमान सबका यही प्रतीत होता था कि मधुसूदन को किसी जंगली जानवर ने मारकर खा लिया है।

इस बात के पता चलते ही कि झांसी से कोई कैदी भाग गया है आसपास के पुलिस-थानों में और रेल के स्टेशनों पर सूचना कर दी गयी। इन्सपैक्टर जनरल आफ जेल्ज़ ने इस घटना की जांच की। वह

चक्रवर्ती मधुसूदन में विशेष परिवर्तन का अनुभव करने लगा था। दिन प्रति दिन वह समाचार-पत्र के प्रत्येक शीर्षक को उत्सुकता से पढ़ता था, मानों वह किसी विशेष समाचार की प्रतीक्षा में हो। जब शीर्षक पढ़ लेता तो समाचार-पत्र पढ़ने में उसे रुचि नहीं रहती थी। आजकल वह पूजा-पाठ और कीर्तन भी छोड़ बैठा था। प्रातः उठता, शौचादि से निवृत्त हो अहाते में टहलने लगता था। समाचार-पत्र के शीर्षक पढ़ खाना खा लेता। पश्चात अपने बिस्तर पर सो जाता। सायंकाल फिर अहाते में टहल कर समय व्यतीत करता था। मधुसूदन के साथी उसमें यह सब परिवर्तन देख रहे थे, परन्तु किसी को इसका कारण ज्ञात नहीं था।

एक दिन अधिक दिन चढ़ आने पर भी मधुसूदन के दर्शन नहीं हुए। समाचार-पत्र भी आगया, परन्तु मधुसूदन की कोठरी का दरवाजा नहीं खुला। हरिहर को संशय हुआ कि उपाध्याय बीमार हो गया है। उसने मधुसूदन की कोठरी का दरवाजा खटखटाया। भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला। चक्रवर्ती ने दरवाजे को धक्का दिया तो वह खुल गया। देखा मधुसूदन का बिस्तर बिछा है पर उस पर कोई लेटा नहीं। चक्रवर्ती अवाक मुख वहीं खड़ा रह गया। वह नहीं समझ सका कि मधुसूदन का क्या हुआ। वह कोठरी को वैसे ही छोड़ बाहर आगया। क्षण भर में यह समाचार सब को ज्ञात हो गया। अब टट्टीखाना देखा गया। जब वह वहां भी नहीं मिला तो हरिहर को मधुसूदन की बात स्मरण हो आई, 'अब तो यहां रहना दूभर हो रहा है।'

परन्तु वह गया कहां? कोई समझ नहीं सकता था। इतनी इतनी ऊंची दीवारों को फांदकर निकल जाना असम्भव था। किसी ने राय दी कि सुप्रिन्टेंडेन्ट को सूचना दे देनी चाहिये, परन्तु चक्रवर्ती ने सबको मना कर दिया। उसने कहा, "यदि वह भाग निकलने में सफल हो गया है तो एक एक क्षण का अवसर जो उसको इस समय मिल रहा है लाख लाख रुपये का होगा। सुप्रिन्टेंडेन्ट को सूचना मिलते ही चारों तरफ खोज आरम्भ हो जावेगी।"

नियमानुकूल सुप्रिन्टेंडेन्ट दिन के बारह बजे देख-भाल के लिये आया। आते ही चक्रवर्ती ने पूछा, "क्या मधुसूदन को आपने यहां से कहीं और भेज दिया है?"

सुप्रिन्टेंडेन्ट ने अभिप्राय न समझते हुए कहा, "नहीं! तुम्हारा मतलब?"

"आज प्रातःकाल से वह कहीं दिखाई नहीं देता।"

"कौन? उपाध्याय?"

"हां!"

"सुप्रिन्टेंडेन्ट के मुख का रंग फीका पड़ गया। वह घबरा गया। उसने फाटक के पास जाकर खतरे की घन्टी बजा दी। जब सब सिपाही इकट्ठे होगये तो उनको बताया कि क्या होगया है और तुरन्त खोज आरम्भ होगयी। किले का कोना २ खोजा गया। किले के बाहर जंगल था। उसकी भी तलाशी ली गयी। केवल दो बातों का पता चला। एक तो यह कि किले के पश्चिम की दीवार में एक दरार में एक लकड़ी फंसी थी और उससे एक रस्सी बंधी थी जो किले के बाहर की तरफ लटक रही थी। किले की दीवार पर बाहर की ओर पांवों के बार बार खिसकने के चिन्ह बने हुए थे। यह दीवार बाहर की भूमि से सवा सौ फुट ऊंची थी और रस्सी भूमि से दस फुट ऊंची ही रह गयी थी। यह रस्सी उस सुतली को बटकर बनाई गयी थी जो सहन में बेलों को बांधने के लिये मंगाई गयी थी।

जंगल में दो दिन की खोज के पश्चात एक आधा, जंगली जानवरों से खाया, मनुष्य का शव मिला। शव की तो पहिचान नहीं हो सकी, परन्तु अनुमान सबका यही प्रतीत होता था कि मधुसूदन को किसी जंगली जानवर ने मारकर खा लिया है।

इस बात के पता चलते ही कि झांसी से कोई कैदी भाग गया है आसपास के पुलिस-थानों में और रेल के स्टेशनों पर सूचना कर दी गयी। इन्सपैक्टर जनरल आफ जेल्ज़ ने इस घटना की जांच की। वह

स्वयं झांसी आया और दो दिन तक बन्दियों, पुलिस वालों, तथा सुप्रिन्टेंडेन्ट के बयान लिये जाते रहे। इस सब जांच से इन्सपैक्टर-जनरल इस परिणाम पर पहुँचा कि सुप्रिन्टेंडेन्ट मि० बन्नाराम असावधान व्यक्ति है। जहां तक मधुसूदन का सम्बन्ध था वह भी इसी परिणाम पर पहुंचा कि वह जंगल में बाघ से मार डाला गया है।

सुप्रिन्टेंडेन्ट को अपनी असावधानी के लिये झांसी से बदलकर सुल्तानपुर भेज दिया गया और उसकी वेतन-वृद्धि रोक दी गयी।

कुछ दिन पश्चात मिस्टर बन्नाराम अपना सामान इकट्ठा करवा तथा बंधवा रहे थे। अगले दिन उनको झांसी से चला जाना था। उनकी स्त्री खिड़की में खड़ी दूर जंगल की ओर देख रही थी। मि० बन्नाराम को जब काम से कुछ अवकाश मिला तो वह कलावती के पास आकर खड़े होगये। वह अपने विचारों में इतनी मग्न थी कि उसे पति के आने का पता नहीं चला। मि० बन्नाराम ने उसके ध्यान को आकर्षित करने के लिये कहा, "क्या सोच रही हो?"

यह सुन कलावती चौंक पड़ी। घूमकर पति की आंखों में देखने लगी। उसके मुख से केवल यह निकला कि कितना सुन्दर दृश्य है! मिस्टर बन्नाराम ने उत्तर दिया, "हां, परन्तु अब तो इसे छोड़ना ही होगा। सुल्तानपुर बहुत ही घटिया स्थान है। यह सब मेरे नम्र-हृदय होने का फल है।"

कलावती ने कहा, "परन्तु इसका भी तो कुछ परिणाम नहीं हुआ। जेल से भाग निकला तो शेर के मुख में गया।"

मि० बन्नाराम ने मुस्कराते हुए पूछा, "कैसे जानती हो कि शेर के मुख में गया है?"

"शेर नहीं तो किसी अन्य जंगली जानवर के मुख में गया होगा।"

मि० बन्नाराम की आंखों में विशेष चमक उत्पन्न होगयी और वह प्रेम से अपनी स्त्री की ओर देखने लगे। कलावती इस भाव का अर्थ समझ गई। उसने अति प्रेम भाव से मि० बन्नाराम की गाल पर हलकी सी

चपत लगा दी और यह कहती हुई कि, 'मुझे भी नहीं बताया', भाग कर दूर जा खड़ी हुई। इन्होंने लपककर उसे पकड़ लिया और गले से लगा लिया।

[ ७ ]

पूर्णिमा को अस्पताल से छुट्टी होगयी थी। घाव भर गया था, परन्तु वह अभी भी बहुत दुर्बल थी। उसकी भुजा, जिधर गोली लगी थी, अभी ठीक काम नहीं करती थी। इस कारण यह उचित समझा गया कि उसे कलकत्ते से रांची लेजाया जाय। रांची का जल-वायु स्वास्थ्य के विचार से अति हितकारी सिद्ध हुआ।

सेठ कुंजबिहारी भी सत्याग्रह-आंदोलन में पकड़े गये थे और छः मास का कारावास काट रहे थे।

क्रांतिकारी-आंदोलन शिथिल पड़ गया था। महात्मा गांधी के सत्याग्रह-आंदोलन के कारण धीरेन्द्र ने आतंक उत्पादक बातों को स्थगित कर दिया था। हारान का कारखाना टूट गया था और धीरेन्द्र वैसा अच्छा कारखाना बनाने में सफल नहीं हो सका।

अकस्मात समाचार-पत्रों में कांग्रेस की सरकार से सुलह की चर्चा होने लगी। डा० तेजबहादुर सप्रू और मिस्टर जयकर इस काम में गहरी दिलचस्पी लेने लगे। सबका विचार था कि अब कुछ ही दिनों में सब सत्याग्रही छूट जायेंगे। कई दिन की भाग-दौड़ के पश्चात डा० सप्रू और श्री जयकर अपने प्रयत्न में सफल हो गये और महात्मा गांधी तथा अन्य सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये। महात्मा गांधी ने गोलमेज-परिषद् में विलायत जाना स्वीकार कर लिया।

ये समाचार पूर्णिमा के लिये अति उत्साहवर्धक थे, और इनका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा हो रहा था।

एक दिन एक छोटा सा समाचार अखबार में निकला था। लिखा था, "झांसी डेटिन्यूज़-कैम्प से मधुसूदन नाम का एक बंदी भाग निकला है। पुलिस उसकी खोज कर रही है।" इस समाचार ने पूर्णिमा के मन में

आशाओं और शंकाओं की वे घटायें उत्पन्न कीं कि वह निश्चय कर कह नहीं सकती थी कि वह प्रसन्न है अथवा अप्रसन्न। इसके पश्चात अत्यन्त चिंता के साथ समाचार-पत्र की एक एक पंक्ति पढ़ी जाती। रांची भर ढूंढ कर लीडर दैनिक मंगवाया जाता। यह आशा की जाती थी कि मधुसूदन इलाहाबाद का रहने वाला है और लीडर में उसका समाचार जरूर छपेगा।

कई दिन पश्चात इन्सपैक्टर-जनरल की जांच का संक्षिप्त विवरण छपा। इस जांच में यह किस्सा लिखा था "जांच से यह प्रतीत हुआ कि जब मधुसूदन कूदा तो उसके चोट आगई थी। कूदने के स्थान पर रक्त के चिन्ह देखे गये। उस स्थान से आधे फ़र्लांग के फ़ासले पर उसका शव, आधा बाघ से खाया हुआ, मिला है।"

पूर्णिमा के लिये यह समाचार वज्रपात सिद्ध हुआ और जो स्वास्थ्य में लाभ रांची में पहुंचने से हुआ था वह कुछ घण्टों में ही मिट गया। नरोत्तम और उसकी मां स्वयं बहुत दुखी थे और पूर्णिमा को साहस बंधाने में अशक्त थे।

दिन प्रति दिन वह दुर्बल होने लगी। अब उसे धीमा धीमा ज्वर भी रहने लगा था। खाया-पिया कुछ लाभ नहीं करता था। रांची में चिकित्सा का उचित प्रबन्ध न रहने से नरोत्तम पूर्णिमा को कलकत्ते ले जाने को सोचने लगा। पूर्णिमा इसमें कुछ लाभ नहीं समझती थी। वह चाहती थी कि बनारस चली जाय। कलकत्ते जाने को वह पसन्द नहीं करती थी। नरोत्तम कहता था बनारस बहुत गन्दा स्थान है और वहां स्वास्थ्य सुधरना असम्भव है। इसी प्रकार विचार विचार में कई सप्ताह बीत गये।

दोपहर का समय था। पूर्णिमा को, नित्य की भांति, हलका ज्वर हो आया था और वह खाट पर विचार-मग्न पड़ी थी। उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि बाहर किसी परिचित के पांव की आहट है। इतने में दीवार पर जिस ओर उसका मुख था और जिस पर खिड़की में से प्रकाश पड़ रहा था एक परछाईं पड़ी। वह डर गई। उसने घूमकर खिड़की की ओर

देखा। किसी की पीठ दिखाई दी। इतने में कमरे का दरवाजा खुला और एक व्यक्ति बहुत मैले कपड़े पहिने हुए, फटा जूता, सिर से नंगा, मुख पर डाढ़ी और मूंछ बहुत बढ़ी बढ़ी, और हाथ में एक लकड़ी लिये जो एक पेड़ से तोड़ ली प्रतीत होती थी, कमरे में चला आया। पूर्णिमा इस भयंकर आकृति वाले पुरुष को देखकर घबरा गई। वह चीख मारने ही वाली थी कि आने वाले ने हाथ उठाकर चुप रहने का संकेत किया। पूर्णिमा विस्मय में उस पुरुष को देखने लगी। धीरे धीरे ज्ञान होने लगा। उस बढ़ी हुई मूंछ-डाढ़ी, मैले-फटे कपड़ों तथा थकावट से अस्त-व्यस्त आंखों के नीचे उसे मधुसूदन की मुस्कराहट दिखाई देने लगी। पहिले तो वह समझी कि उसे भ्रम हो गया है, परन्तु यह भ्रम और सन्देह अधिक काल तक नहीं टिका रह सका। उसके मुख से निकल गया "आप?" और वह खाट पर उठकर बैठ गई।

मधुसूदन ने समीप आकर कहा, "पूर्णिमा, तुम जीती हो। हे भगवन्! तुम्हारी अपार कृपा...।" इसी समय पूर्णिमा खाट पर बेहोश हो गिर पड़ी।

नरोत्तम कहीं बाहर गया हुआ था। जब लौटा तो एक भीख मांगने वाले को पूर्णिमा की खाट के पास कुर्सी पर बैठे और धीरे धीरे बातें करते देख क्रोध से भर गया। पूर्णिमा आज-कल सड़क पर घूमते हुए ज्योतिषी और फकीरों से बहुत कुछ पूछा करती थी। नरोत्तम इसे पसन्द नहीं करता था। आज उसने निश्चय कर लिया था कि कोई भी हो धक्के मार मारकर घर से बाहर निकाल देगा। बहुत आवेश में बोला, "क्या है बाबा? यहां किस लिये घुस आये हो?"

इतना कहते हुए उसने मधुसूदन को गर्दन से पकड़ दरवाजे की ओर धक्का देने के लिये हाथ बढ़ाया। पूर्णिमा खिलखिलाकर हंस पड़ी और मधुसूदन मुस्कराता हुआ उसकी ओर देखने लगा। नरोत्तम क्रोध में पागल हो रहा था। उसको पूर्णिमा के हंसने ने और भी नाराज कर दिया। कहने लगा, "दीदी, चुप रहो! मैं अब ऐसे ढोंगियों को यहां नहीं आने दे सकता।" इतना कह मधुसूदन को धक्के देता हुआ दरवाजे की

ओर ले चला।

पूर्णिमा ने यह देखकर कहा, "भैया, क्या पागलपन कर रहे हो? देखो तो यह कौन हैं?"

मधुसूदन दरवाजे पर पहुँच घूमकर नरोत्तम की ओर देखने लगा। वह अब भी मुस्करा रहा था। नरोत्तम पूर्णिमा के कहने पर मधुसूदन की ओर घूरकर देखते हुए बोला, "कौन हो जी तुम? बताते क्यों......" इसके आगे उसकी आवाज नहीं निकल सकी। उसे कुछ कुछ आभास होने लगा। मधुसूदन कभी पूर्णिमा और कभी नरोत्तम की ओर देख रहा था। वह नरोत्तम के विस्मय, लज्जा और भय की अवस्था देख हंसने लगा। नरोत्तम से अब न रहा गया। हाथ जोड़कर बोला, "दादा, क्षमा करना। मैं पहिचान नहीं सका।" मधुसूदन ने उसको पांवों पर झुकते देख पकड़कर गले से लगा लिया।

मां दूसरे कमरे में रसोई कर रही थी। इतना हल्ला सुन भागी भागी आई, और दरवाजे में ही नरोत्तम को एक भीख मांगने वाले से गले मिलते देख चकित हो देखने लगी। मधुसूदन की पीठ उसकी तरफ थी। नरोत्तम ने मां को देख लिया था। बोला, "दादा! मां"। मधुसूदन ने घूमकर मां के चरण स्पर्श किये। मां ने पहिचान तो लिया पर समझ न सकी।

मधुसूदन की मृत्यु का समाचार पाने के पश्चात पुनः उसका जीवित-जाग्रत मिल जाना अत्यन्त आनन्द का कारण था। कई घण्टे तक तो सब के सब उस समय के आनन्द में पागल हो गये। मन में इतने विचार थे, पूछने को इतनी बातें थीं और कहने को इतना कुछ था कि कोई नहीं जानता था कि कहां से आरम्भ करे। सबसे पूर्व पूर्णिमा ने यह बे सिर-पैर की मजलिस तोड़ी और कहा, "मां, इनको स्नानादि करने दो न। कहते हैं दो मास से स्नान भी नहीं किया।"

जब मधुसूदन स्नानादि कर स्वच्छ वस्त्र पहन रहा था, नरोत्तम बहुत बेचैनी से बरामदे में चक्कर काट रहा था। मधुसूदन के आजाने

से अनेकों नई समस्यायें उपस्थित हो गयी थीं। दूसरी ओर पूर्णिमा के मन में एक नई ही उथल-पुथल मच रही थी। वह सोच रही थी, "कैसे एक सत्याग्रही जेल से भाग सकता है अथवा जेल से भागे हुए को आश्रय दे सकता है?"

मधुसूदन ने खाना खाया और सो गया। वह कई दिन का थका-मांदा था। झांसी से कलकत्ता और कलकत्ते से रांची पैदल ही आया था। मार्ग में जहां कुछ खाने को मिला खा लिया नहीं तो भूखा ही चल पड़ा। सड़क के किनारे सो रहा। स्नान किये तो कई दिन हो चुके थे। कपड़े धोने और हजामत बनवाने के लिये तो अवकाश ही नहीं था। बीस मील से कम तो वह किसी दिन नहीं चला था। कभी कभी इससे भी अधिक चलना पड़ता था।

अब जब अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुंच कर उसने पूर्णिमा को जीता-जागता पा लिया था तो उसके आनन्द की सीमा नहीं रही थी। स्नान इत्यादि से निवृत्त हो, खाना खा जब सोया तो चौबीस घण्टे से पूर्व नहीं जाग सका। इस समय में नरोत्तम ने मधुसूदन के विषय में एक पूर्ण आयोजना विचार कर बना ली थी। पूर्णिमा अभी भी द्विविधा में पड़ी थी। वह यह निर्णय न कर सकी थी कि सत्याग्रही होने से वह मधुसूदन के विषय में क्या करे। बार २ उसका मन मधुसूदन को जीवित-जाग्रत पाने के आनन्द में इतना डूब जाता था कि वह सत्याग्रही के धर्म को भूल जाती थी। वह समझती थी कि मधुसूदन को आश्रय देना उसके सत्य के व्रत के विपरीत है। परन्तु प्रेम-पाश में बंधी हुई वह अपने मन की पुकार को बार २ दबा देती थी और वे सब मनोहर, सुहावने चित्र देखने लगती थी जो एक स्त्री, अपने सुहाग को सुरक्षित देख, देखा करती है। पूर्णिमा की मां के मन की अवस्था पूर्ण सन्तोष और आनन्द की थी। वह समझती थी कि अब पूर्णिमा का राजी हो जाना कुछ दिन की बात है।

दूसरे दिन मधुसूदन जब जागा और स्नान, ध्यान तथा भोजन कर

सकते हैं। कोठरी के बाहर के कोने के एक तरफ, एक पांव और दूसरी तरफ दूसरा पांव, और निकली हुई ईंटों के स्थान का आश्रय, यह सुभीता होने पर दीवार यदि पचास फुट ऊंची भी होती तो मैं चढ़ जाता। कोठरी केवल अठारह फुट ऊंची थी। छत पर पहुँच कर किले की दीवार के पास पहुंचा। पूर्व की ओर चांद निकल रहा था। उधर आकाश रोशन हो रहा था और दीवार की मुंडेर इस चांद के प्रकाश के सम्मुख स्पष्ट दिखाई देती थी। दीवार, जहां मैं खड़ा था, वहां केवल सोलह-सत्रह फुट ऊंची थी। मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही जब मैंने दीवार को ऊपर से फटा देखा। एक स्थान पर दीवार में दरार आगई थी और वह उज्वल प्रकाश के कारण स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मैं छत्त से नीचे उतर आया और अपनी कोठरी में से सुतली लेकर, जो बेलों को बांधने के लिये मंगवाई थी, लगभग बीस फुट लम्बी रस्सी बनाई। इसके एक सिरे को लगभग एक फुट लम्बी मजबूत लकड़ी के बीच में बांध दिया। इस सब काम में लगभग दो घण्टे लग गये। इस समय तक चांदनी छिटक आई थी। इस पर भी मैं निशंक छत्त पर चढ़ गया। छत्त पर चढ़कर लकड़ी को दीवार की दरार में फेंकने का यत्न करने लगा। तीन-चार प्रयत्न के बाद रस्सी के एक सिरे से बंधी लकड़ी उस दरार में फंस गई और मैं दीवार के उपर पहुंच गया। दीवार के बाहर जंगल था। भीतर से दीवार पैंतीस फुट ऊंची थी, परन्तु बाहर से जमीन से बहुत ऊंची थी। मैंने इसका अनुमान लगाना आरम्भ किया। अन्त में इस निर्णय पर पहुंचा कि सौ फुट से कम नहीं होगी। सौ फुट फांदना आसान नहीं था। अतएव उस दिन वापिस उतर आया, रस्सी दीवार की दरार से निकाल ली और अपनी कोठरी में बिस्तर के नीचे छिपाकर रख दी।

"अब बहुत सी बेलों को बांधने के बहाने बहुत सी सुतली मंगवाई और धीरे धीरे रात के समय एक लम्बी रस्सी बनानी आरम्भ कर दी। कई रातों के प्रयत्न के पश्चात मैं एक सौ फुट लम्बी रस्सी बनाने में सफल हुआ। अब शुक्लपक्ष आगया था और धैर्य से अन्धेरी रातों की

चुका तो नरोत्तम उसे पूर्णिमा के कमरे में ले गया। उसे ज्वर नहीं हुआ था। वह प्रत्यक्ष में तो प्रसन्न प्रतीत होती थी, परन्तु मन की द्विविधा में कभी २ खो जाती थी। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह कहीं निर्जन स्थान में हताश हो मार्ग भूले बैठी है।

नरोत्तम ने कमरे में आते ही कहा, "लो दीदी, कुम्भकरण को जगा लाया हूं। यह तो अभी भी सो जाने की सोच रहे थे।"

पूर्णिमा आज खाट से उठ आराम-कुर्सी पर बैठी थी। मधुसूदन को देख मुस्कराई और कहने लगी, "अभी तो केवल चौबीस घण्टे ही हुए हैं। इन्हें छः मास की छुट्टी है।"

मधुसूदन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "जब मनुष्य को असीम आनन्द होता है तो अचेतनता हो जाती है। नींद भी तो एक प्रकार की अचेतनता है।"

नरोत्तम, जो मधुसूदन को सुरक्षित रखने के विषय में पहले निश्चय कर लेना चाहता था, गम्भीर भाव धारणकर कहने लगा, "दादा, पहले तो यह बताओ तुम यहां पहुँचे कैसे?"

मधुसूदन ने आंखें नीची कर अपने भागने की कहानी वर्णन कर दी। उसने कहा, "एक दिन पायोनियर समाचार-पत्र में पढ़ा कि कलकत्ते में गोली चल गयी और पूर्णिमा घायल हो गयी है। सेठ साहब से मुझे यह पता लग गया था कि आप लोग कलकत्ते रहते हैं और पूर्णिमा ने कांग्रेस के अहिंसावाद को अपना लिया है। इस समाचार को पढ़ते ही मैंने निश्चय कर लिया कि जेल से भाग जाऊंगा। मुझे विश्वास था कि भागने में सफल हो जाऊंगा। मैंने असफलता का पाठ नहीं पढ़ा। उसी रात मैं कोठरी की छत पर चढ़ गया। यह एक कठिन बात थी, परन्तु जहां पक्की धारणा हो वहां बाधायें नहीं रहतीं। मैंने कोठरी की दीवार में देखा कि एक-दो स्थान पर ईंटें कुछ ढीली पड़ गई हैं। उनको हिलाया तो वे निकल गयीं और वहां पांव रखने को स्थान मिल गया। जो लोग पेड़ पर चढ़ना जानते हैं वे बहुत कम आश्रय से बहुत ऊंचाई तक पहुंच

सकते हैं। कोठरी के बाहर के कोने के एक तरफ, एक पांव और दूसरी तरफ दूसरा पांव, और निकली हुई ईंटों के स्थान का आश्रय, यह सुभीता होने पर दीवार यदि पचास फुट ऊंची भी होती तो मैं चढ़ जाता। कोठरी केवल अटारह फुट ऊंची थी। छत पर पहुँच कर किले की दीवार के पास पहुंचा। पूर्व की ओर चांद निकल रहा था। उधर आकाश रोशन हो रहा था और दीवार की मुंडेर इस चांद के प्रकाश के सम्मुख स्पष्ट दिखाई देती थी। दीवार, जहां मैं खड़ा था, वहां केवल सोलह-सत्रह फुट ऊंची थी। मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही जब मैंने दीवार को ऊपर से फटा देखा। एक स्थान पर दीवार में दरार आगई थी और वह उज्वल प्रकाश के कारण स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मैं छत्त से नीचे उतर आया और अपनी कोटरी में से सुतली लेकर, जो बेलों को बांधने के लिये मंगवाई थी, लगभग बीस फुट लम्बी रस्सी बनाई। इसके एक सिरे को लगभग एक फुट लम्बी मजबूत लकड़ी के बीच में बांध दिया। इस सब काम में लगभग दो घण्टे लग गये। इस समय तक चांदनी छिटक आई थी। इस पर भी मैं निशंक छत्त पर चढ़ गया। छत्त पर चढ़कर लकड़ी को दीवार की दरार में फेंकने का यत्न करने लगा। तीन-चार प्रयत्न के बाद रस्सी के एक सिरे से बंधी लकड़ी उस दरार में फंस गई और मैं दीवार के उपर पहुंच गया। दीवार के बाहर जंगल था। भीतर से दीवार पैंतीस फुट ऊंची थी, परन्तु बाहर से जमीन से बहुत ऊंची थी। मैंने इसका अनुमान लगाना आरम्भ किया। अन्त में इस निर्णय पर पहुंचा कि सौ फुट से कम नहीं होगी। सौ फुट फांदना आसान नहीं था। अतएव उस दिन वापिस उतर आया, रस्सी दीवार की दरार से निकाल ली और अपनी कोटरी में बिस्तर के नीचे छिपाकर रख दी।

"अब बहुत सी बेलों को बांधने के बहाने बहुत सी सुतली मंगवाई और धीरे धीरे रात के समय एक लम्बी रस्सी बनानी आरम्भ कर दी। कई रातों के प्रयत्न के पश्चात मैं एक सौ फुट लम्बी रस्सी बनाने में सफल हुआ। अब शुक्लपक्ष आगया था और धैर्य से अन्धेरी रातों की

प्रतीक्षा करनी पडी। अन्त में कृष्णपक्ष चतुर्दसी आई। मै रात के ग्यारह बजे की गजर सुनते ही उठा, रस्सी अपनी कमर से बाधकर और जूतों को कुर्ते की जेब में डाल, कोठरियों की छत्त पर चढ़ गया। वहा से दीवार की दरार में रस्सी फेकने मे इस दिन बहुत समय लगा। इस रात अन्धेरा होने से दरार स्पष्ट दिखाई नही देती थी। रस्सी को ऊपर फेकने पर जब लकड़ी वहा नहीं अटकती थी तो खट-खट का शब्द होता था। उस निस्तब्ध रात्रि में यह खट-खट का शब्द मन में भय उत्पन्न करता था। एक बार तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सुप्रिन्टेडेन्ट के मकान की खिडकी खुली है और उसमे से कोई देख रहा है। मुझे कुछ काल तक चुपचाप दीवार के साथ लगकर पडा रहना पडा। आखिर वह खिड़की बन्द हो गई और मैने फिर रस्सी फेकी। सौभाग्य से रस्सी इस बार दरार में फंस गई। बस फिर क्या था, दो मिनट में मै दीवार पर पहुंच गया। इसके पश्चात लकडी को दीवार मे किले के भीतर की ओर फंसा दिया। रस्सी के साथ लम्बी रस्सी कमर से खोल कर बाध दी और उसे किले के बाहर लटका दिया। अब सबसे कठिन काम आरम्भ हुआ। मुझे विश्वास था कि दोनों रस्सिया मिलकर जमीन तक पहुच जायेंगी। सवा सौ फुट नीचे उतरने पर जब मै रस्सी के अन्त तक पहुच गया तब भी मेरे पाव हवा में लटक रहे थे। रस्सी से मेरे हाथ छलनी हो चुके थे। उनमें से खून निकलने लगा था। मैने अपने नीचे देखा तो घटाटोप अन्धेरा था। कुछ अनुमान नही लगा सकता था कि जमीन कितनी दूर है। ऊपर लौट जाना असम्भव था। नीचे कूदकर बच जाना अनिश्चित था। परन्तु जब केवल एक ही मार्ग खुला हो तो निर्णय करने में देरी नहीं लगती। मैने भगवान का नाम लेकर रस्सी छोड दी। इसके अतिरिक्त और चारा ही कुछ नहीं था। हाथ जवाब दे रहे थे। ईश्वर की कृपा से मैं सही सलामत जमीन पर पहुंच गया। मुझे दस फुट से अधिक नहीं कूदना पड़ा था। जहा गिरा वहा कांटेदार झाडियां थीं। पाव कई स्थान से कट गये। मैने जेब से जूते निकाले और पहन लिये और वहां से एक ओर को

चल दिया।

"लगभग चार घण्टे चलने के पश्चात मैं एक बड़ी सड़क पर पहुंचा। अभी दिन नहीं निकला था। मैं अत्यन्त थका हुआ था, हाथों में सख्त वेदना हो रही थी। सुस्ताने के लिये सड़क के किनारे लेट गया। लेटते ही नींद आगई। जब सूर्य का प्रकाश माथे पर पड़ने लगा तो नींद खुली। मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि किसी से कुछ पूछूंगा नहीं जिससे कोई सन्देह न करने लगे। मैंने यह भी निश्चय कर लिया था कि रेलगाड़ी पर सवार नहीं होऊंगा। अब निश्चय करना था कि वह सड़क किधर को जाती है। मुझे कलकत्ते जाना था और सड़क वहां से दक्षिण-उत्तर को जाती थी। मैं उत्तर की ओर चल पड़ा। कुछ दूर जाकर मील का पत्थर मिला और वहा से मार्ग पाने में कठिनाई नहीं रही। इलाहाबाद में नहीं ठहरा। सीधा कलकत्ते चल पड़ा। कलकत्ते में कांग्रेस के दफ्तर से आपका पता पूछा और वहां से यहां आ पहुँचा हूँ। अपने प्रयत्न में कृतकार्य हुआ हूँ इससे मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही।"

नरोत्तम ने पूछा, "परन्तु समाचार-पत्रों में तो यह छपा था कि तुम्हें जंगल में बाघ ने खा डाला है।"

"खूब! परन्तु मैं तो अभी तक सही-सलामत हूँ। मुझे तो समाचार-पत्र पढ़ने का अवसर ही नहीं था। खैर यह भी अच्छा हुआ। अब मैं आसानी से नया जीवन आरम्भ कर सकूंगा।"

पूर्णिमा ने उत्सुकता से पूछा, "परन्तु आप भागे क्यों?"

नरोत्तम ने हंसते हुए कहा, "तुम्हारा सिर खाने के लिये। भला यह बताओ तुम इनके बाघ से खाये जाने का समाचार पाकर बीमार क्यों हो गयी थीं?"

पूर्णिमा चुप कर गयी। वह अपने मन में जो बात रखती थी, वह कह नहीं सकती थी। कभी २ वह यह समझने लगती थी कि उसका विचार मिथ्या है। मधुसूदन ने जेल से भागकर कुछ भी अनुचित नहीं

किया। फिर कभी २ उसे यह प्रतीत होता था कि भाग आने से उसे छिपकर रहना होगा। प्रत्येक बात में, प्रत्येक काम में और प्रत्येक स्थान पर मिथ्या बोलना होगा। उसके इस मिथ्या व्यवहार में उसके सम्बन्धी, मित्र और परिचितों को भी सहयोग देना होगा। यह असत्य का जीवन कैसे एक सत्याग्रही के लिये उपयुक्त हो सकता है, इस द्विविधा का निर्णय वह अपने भाई नरोत्तम से नहीं कराना चाहती थी। वह जानती थी कि उसके सम्मुख इस बात का कहना भी हंसी करवाना है।

मधुसूदन ने अब डाढ़ी-मूंछ रख लीं। उसने नाम भी बदल कर गोपाल रख लिया। वहां वह इस नाम से प्रसिद्ध होने लगा।



## दसवां भाग

## बुद्धि का फेर

नरोत्तम ने मधुसूदन के पिता को एक दिन पत्र लिखा कि "मधुसूदन की अकाल मृत्यु का समाचार सुनकर हम सबको अत्यन्त दुख हुआ है। पूर्णिमा का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और उसकी इच्छा है कि आप कुछ दिन के लिये यहां चले आवें। इससे आपके मन की अवस्था में परिवर्तन हो सकेगा। इसके अतिरिक्त आपसे एक अत्यावश्यक विषय में परामर्श भी लेना है जिसके लिये हमने सेट साहब को भी जो अब जेल से छूट चुके हैं यहां बुलवाया है। आप दोनों के यहां आने से विचार भली भांति हो सकेगा।"

श्यामाचरण को सरकारी रिपोर्ट की नकल मिल चुकी थी। वह बहुत उदास रहता था। इस निमंत्रण को पाकर उसने रांची जाने का निर्णय कर लिया। परन्तु वहां पहुंचकर उसके आनन्द की सीमा न रही। नरोत्तम ने उसे मधुसूदन से मिलने के पूर्व सब बात समझा दी थी और उसके इलाहाबाद न जाने का कारण भी वर्णन कर दिया था। पिता-पुत्र का मेल अत्यन्त हर्षोत्पादक हुआ था।

सेठ कुँजबिहारी भी कलकत्ते से बुला लिये गये थे और कुछ दिन रांची में बहुत ही खुशी के व्यतीत हुए। पूर्णिमा अब पहले से बहुत अच्छी अवस्था में थी। मकान से बाहर भी आने जाने लगी थी। ज्वर अथवा अन्य कष्ट अब नहीं रहे थे।

एक दिन पूर्णिमा और मधुसूदन दोनों टहलने गये हुए थे। सेठ कुँजबिहारी ने नरोत्तम और उसकी माता को अकेले बैठा देख अपने मन की बात कहने के लिये सुअवसर पाया। वह उनके पास आकर बैठ गये। बोले, "भैया, अब मेरे विचार में पूर्णिमा के विवाह का प्रबन्ध कर देना चाहिये। जब तक विवाह न हो तब तक कुछ न कुछ उच्छृङ्खलता युवक लोग करते ही रहते हैं। मुझे भय है कि महात्मा गांधी और वाइसराय महोदय की परस्पर पटेगी नहीं और तुरन्त ही फिर सत्याग्रह आरम्भ हो जायगा। यदि पूर्णिमा का उससे पूर्व विवाह न हुआ तो फिर सत्याग्रह में सम्मिलित होने से उसका रोकना कठिन हो जावेगा। उसका स्वास्थ्य अब ऐसा नहीं कि वह अब जेल की कठिनाइयां सह सके।"

पूर्णिमा की मां तो पहले ही मन में इस विषय पर विचार कर रही थी। वह समझी थी कि मधुसूदन के पिता और सेठ साहब दोनों का वहां होना इस निर्णय के लिये बहुत अच्छा अवसर है। अब सेठ साहब को यह प्रस्ताव करते देख बहुत प्रसन्नता से बोली, "मेरी भी यही राय है, परन्तु बिना गोपाल ( मधुसूदन ) के पिता की इच्छा के कैसे यह होगा?"

सेठ साहब बोले, "यदि आपकी राय हो तो मैं उनसे बात करूं।"

नरोत्तम ने तुरन्त उत्तर दिया, "हां, आप हमारे माननीय हैं और यदि यह बात अब आपके सम्मुख निश्चय होजाय तो अच्छा ही है।"

अभी ये बातें हो ही रही थीं कि श्यामाचरण शहर से, जहां वह ठहरा हुआ था, लम्बे लम्बे पग उठाता हुआ आ पहुँचा। आने पर उसे बैठा कर सेठ साहब ने कहना आरम्भ किया, "पण्डित जी, अब तुम अपने लड़के के विवाह के विषय में क्या विचार रखते हो?"

श्यामाचरण ने गम्भीर भाव धारणकर कहा, "मैंने अपनी पहली

आपत्ति के कारण घोर प्रायश्चित किया है। मैं समझता हूं कि मैंने ही उसे जेलखाने में भेजा था। न मैं आपत्ति उठाता और न ही वह निराश होकर रात को गंगा के किनारे घूमता फिरता। अब यद्यपि अनेक कठिनाइयां हैं तो भी अपनी ओर से इस विषय में आपत्ति नहीं उठाऊंगा।"

जिन कठिनाइयों की ओर श्यामाचरण ने संकेत किया था वे दूसरे लोगों को भी ज्ञात थीं. परन्तु नरोत्तम और सेठ साहब का विचार था कि उन कठिनाइयों को थोड़ी सी सावधानी से दूर रखा जा सकता है।

सेठ साहब ने कहा, "मैं तो कोई कठिनाई नहीं समझता। यदि तुम्हारा अभिप्राय उसके जेल से भाग आने के विषय में है तो मैं उसकी स्वतन्त्रता को इतने ही खतरे में मानता हूं जितना किसी भी भारतवासी की। दासता में फंसी जाति के किसी भी सदस्य को अपने आपको सुरक्षित समझना भूल है। उसका कोई भी काम, किसी भी समय, सरकार के विरुद्ध समझा जा सकता है और उसे फांसी पर लटकाया जा सकता है। हां, तुमको तो कोई आपत्ति नहीं है?"

"मैंने पहले आपत्ति उठाई थी तो उसका परिणाम बुरा ही रहा था। अब आपत्ति क्या उठाऊं? सब कुछ तो मुझसे पूछे बिना ही तय होगया है। अब मुझे लड़की वालों की ओर से ना करने का सन्देह होता था। यदि उन्हें स्वीकार है तो मुझे भी स्वीकार है।"

इसके पश्चात विवाह कहां हो, कब हो, कैसे हो इत्यादि बातों पर विचार होने लगा। सेठ साहब ने मधुसूदन के लिये किसी कारोबार का भी आश्वासन दिलाया। सेठ साहब कई लाख रुपया लगाकर कोई फिल्म-कम्पनी खोल देने का विचार करते थे।

इस समय मधुसूदन और पूर्णिमा घूमकर वापिस आगये थे। उन्हें आता देख सब चुप होगये। एकदम बातें बन्द होती देख पूर्णिमा को सन्देह होगया कि उसी के विषय में बातें होरही थीं। उसने एक कुर्सी को समीप खिसका और उस पर बैठते हुए कहा, "क्या षड्यन्त्र रचा जा रहा है?"

नरोत्तम हंस पड़ा और श्यामाचरण अपने स्थान से उठकर मधुसूदन से बात करने चला गया। पूर्णिमा नरोत्तम को हंसते देख बोली, "आप सबके मुखों को देखने से यह प्रतीत होता है कि आप मेरी निन्दा कर रहे थे। भैया ठीक है न ?"

नरोत्तम ने तुरन्त उत्तर दिया, "कैसे कहती हो निन्दा ? हम तो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे।"

"तब तो मेरा अनुमान ठीक निकला। प्रशंसा और निन्दा में कुछ भेद नहीं होता। यह तो चित्र के दो पक्ष हैं। जो बात एक के मुख में निन्दा-रूप है वही दूसरे के मुख में प्रशंसा का रूप धारण कर लेती है।"

"तो तुम निन्दा-प्रशंसा में कोई भेद नहीं मानती ?"

"भेद तो कहने वाले के मन में होता है। उदाहरण में, यदि कोई कहे कि पूर्णिमा सिनेमा में काम करती है तो इसके अर्थों में छिपा भाव, प्रशंसात्मक अथवा निन्दात्मक, कहने वाले की मानसिक प्रवृत्ति पर निर्भर है।"

"तब तो बात सिद्ध होगई कि हमने तुम्हारी प्रशंसा की है। बात करने वाले हम थे और हम कहते हैं कि हम तुम्हारी प्रशंसा करते थे।"

"भला सुनूं तो कि क्या प्रशंसा करते थे ?"

"सुनाऊं ? अच्छा सुनो। हम कह रहे थे, हमारी पूर्णिमा रानी है। वह बहुत सुन्दर और सयानी है। अब ब्याहने योग्य होगयी है। रानी सुसराल जायगी। स्वसुर के कान कतर लायगी........।"

पूर्णिमा ने नरोत्तम के कान पर हलका सा घूंसा लगाते हुए कहा, "झूठा कहीं का।"

यह कह वह उठ खड़ी हुई और अपने कमरे में चली गई। उसकी मां भी उसके साथ साथ वहां पहुँच गई। जब पूर्णिमा खाट पर बैठ गई तो समीप एक कुर्सी पर बैठ कहने लगी, "बेटी, सेठ साहब कह रहे थे कि अब समय आगया है कि मधुसूदन को कहीं काम पर लगा दिया जाय। इसके साथ उसके विवाह की चर्चा भी चल पड़ी थी।"

पूर्णिमा एकदम गम्भीर होगयी और घूमकर मां की ओर देखते हुए बोली, "फिर ?"

"फिर क्या ? अब तिथि निश्चित करनी रह गयी है।"

"परन्तु विवाह होगा किससे ?"

मां ने मुस्कराते हुए कहा, "पगली सी। और किससे होगा ? तुमसे।"

पूर्णिमा, जो अब खाट पर लेट रही थी, उठकर बैठ गयी और बोली, "मां, तुम नहीं जानती। मेरा विवाह उनसे नहीं हो सकेगा।"

"क्यों ?"

"उन्हीं से पूछ लो न !"

"परन्तु हमने तो उनके पिता को मनवा लिया है।"

"ठीक है। परन्तु विवाह पिता का तो नहीं हो रहा है।"

मां ने अब चिन्तित भाव से पूछा, "तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? मैं नहीं समझी। मैं अभी मधुसूदन से पूछती हूँ।" यह कह वह कमरे से बाहर निकल आई।

बरामदे में नरोत्तम और सेठ साहब बैठे निमन्त्रण-पत्र बना रहे थे। नरोत्तम कह रहा था, "अभी बहुत हल्ला नहीं होना चाहिये। मधुसूदन अभी सुरक्षित नहीं है।"

सेठ साहब कह रहे थे, "तो यह पच्चीस की सूची पर्याप्त है।"

नरोत्तम की मां दोनों को तैयारी में इतना व्यस्त देख कुछ अधीर हो बोली, "निमन्त्रण तो पीछे बनते रहेंगे, पहले मियां-बीबी की अनुमति तो ले लो।"

नरोत्तम भौंचक हो मुँह देखने लगा। मां ने कहा, "हां, पहले मधुसूदन को बुलाकर पूछो तो कि क्या बात है ?"

नरोत्तम उठकर श्यामाचरण और मधुसूदन के पास पहुंचा। वे बाहर लान पर कुर्सी लगाये बातें कर रहे थे। वह मधुसूदन को अपने साथ बरामदे में ले आया और उसे सेठ साहब के पास बैठाकर पूछने लगा, "दादा, क्या बात है ?"

मधुसूदन ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "किस विषय में आप पूछ रहे हैं ?"

"विवाह के विषय में।"

मधुसूदन ने कुछ गम्भीर भाव धारणकर कहा, "मेरा विवाह ? हां, एक समय था कि यह चर्चा चली थी। उस समय मैंने अस्वीकार कर दिया था। पश्चात मैं पकड़ा गया। अब मैं भागा हुआ कैदी हूं। इस कारण मुझे साहस नहीं हुआ कि इस विषय पर फिर चर्चा चलाऊं और दूसरे पक्ष की ओर से भी कभी चर्चा नहीं हुई। पिता जी अभी यही बात कर रहे थे। मैंने उन्हें भी कहा है कि जब मैं निष्कलंक था और पूर्ण स्वतन्त्र था तब उन्होंने और मैंने मना कर दिया था और अब जब मेरे जीवन का पग २ भय से पूर्ण है मैं कैसे विवाह के लिये अनुरोध कर सकता हूँ।"

"तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है ?"

"आपत्ति ! यह तो केवल कृतज्ञता का विषय हो सकता है।"

"तो सब ठीक है, परन्तु दीदी से तय कर लो न।"

मधुसूदन आंखें नीची किये चुपचाप बैठा रहा।

नरोत्तम ने उत्साहित करते हुए कहा, "दादा, डरते क्यों हो ? जाओ न भीतर, तय कर आओ।"

सेठ साहब ने कहा, "अब अधिक देर तक ठहरना लाभदायक नहीं होगा। विवाह हो ही जाना चाहिये। सब कुछ तैयार है, केवल तुम लोगों की स्वीकृति की देरी है। पूर्णिमा से पूछा गया तो वह बोली कि तुमसे पूछ लिया जाय और तुम कहते हो कि कभी चर्चा ही नहीं चली। यह तुम लोगों ने क्या रगड़ा फैलाया है ? तनिक भीतर जाओ और मालूम कर आओ।"

अब मधुसूदन की समझ में आया कि पूर्णिमा ने आपत्ति उठाई है। इसकी उसे आशा न थी। उसका विचार था कि जब भी वह समय आयगा वह मान जायगी। परन्तु आपत्ति उठाने में उसका क्या प्रयोजन

है वह यह जानने के लिये अधीर हो उठा। अतएव वह उठकर पूर्णिमा के कमरे में चला गया।

पूर्णिमा उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। उसे विश्वास था कि मां मधुसूदन से पूछेगी और वह कुछ नहीं समझ सकेगा। इस कारण उससे पूछने आवेगा। अब उसे कमरे में आता देख, कुर्सी पर बैठने का संकेत कर, एक लिफाफा उसके हाथ में दे दिया।

मधुसूदन हैरान था। उसने लिफाफे पर पता पढ़ा। पूर्णिमा का नाम और रांची का पता लिखा था। उसने पूछा, "यह क्या है?"

"इसमें से निकाल कर पढ़िये।"

उसने लिफाफे में से चिट्ठी निकाल ली। वह पहले ही खुला हुआ था। भेजने वाले का नाम था वी० वी० बैनर्जी।

बाबू विपिनबिहारी बैनर्जी बिहार प्रान्त के एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थे। पूर्णिमा को गोली लगने की सारी कहानी सुन चुके थे और उसके साहस और विचारों को सराहते थे। जबसे पूर्णिमा रांची आई थी वह कई बार उसकी कुशल-क्षेम पूछने के लिये पटने से चलकर वहां आये थे।

,बाबू विपिनबिहारी बिहार के सत्याग्रहियों में सर्व श्रेष्ट माने जाते थे। जीवन की सादगी और आत्म-त्याग के कारण, कई लोग उन्हें बिहार के गांधी के नाम से भी सम्बोधन करते थे। अपने प्रांत में सबसे प्रथम जेल भेजे गये थे, और अब कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य होने से महात्मा जी के आशय और विचार के सच्चे प्रतिपादन करने वाले समझे जाते थे।

जब से मधुसूदन भागकर आया था पूर्णिमा के मन में द्वन्द्व-युद्ध चल रहा था। एक ओर मधुसूदन के प्रति प्रेम था और दूसरी ओर सत्याग्रह-धर्म। मन की इस द्विविधा मिटाने के लिये उसने मिस्टर बैनर्जी से अपनी समस्या लिख उत्तर मांगा था। और यह उत्तर था जो मधुसूदन के रहते ही मिला था। उसमें लिखा था :—

बेटी पूर्णिमा, चिरञ्जीव रहो।

यह जानकर कि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर रहा है बहुत सन्तोष हुआ

है। तुमने जो दूसरे विषय में पूछा है उसमें मेरी सम्मति यह है कि चाहे कोई कितने ही अन्याय से बन्दी बनाया गया हो, उसे जेल से भागना नहीं चाहिये। सच्चे सत्याग्रही का धर्म है कि न तो किसी बन्दी के भागने में सहायक हो और न किसी भागे हुए बन्दी को आश्रय दे। जेल से भागकर हम अपनी भीरुता प्रकट करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि हम दुःख और कष्ट सहन नहीं कर सकते। जिस लक्ष्य के लिये अथवा जिस नीति का अवलम्बन करते हुए, हम न्याय अथवा अन्याय से, मुकदमा करके अथवा बिना मुकदमा चलाये, बन्दी बनाये गये हों, हमें अपने विचार अथवा नीति की यथार्थता सिद्ध करने के लिये कष्ट सहन करने को तत्पर रहना चाहिये। जेल से भाग आने से तो यह प्रकट होता है कि कष्ट न सहन कर सकने से ऐसा कर रहे हैं। यह बात हमारे सिद्धान्त के लिये ठीक नहीं। हम चोर-डाकू नहीं जो हमें जेलखाने के तथा अन्य कष्ट सहन करने में लज्जा आती हो। हमारे लिये तो जेल के दरवाजे खुले भी छोड़ दिये जावें तो वहां से आने की आवश्यकता नहीं। यह तो बन्दी करने वाले का धर्म है कि वह कहे कि तुम जाओ, तुम्हें पकड़ कर मैंने भूल की है।

सत्याग्रह का रूप यह है कि हम जो जानते हैं, करते हैं अथवा कहते हैं। उसको छिपाकर नहीं कहते अथवा करते। स्पष्ट सब के सामने कहते व करते हैं और उसके परिणामों से भागना हमारा काम नहीं।

मेरे विचार में तुम्हें अभी रांची में ही रहना चाहिये। ईश्वर की कृपा से तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो पुनः अपने काम में लग सकोगी।

बी० बी० बैनर्जी

मधुसूदन ने चिट्ठी पढ़कर पूर्णिमा को वापिस कर दी। कुछ काल तक दोनों आंखें नीची किये अपने विचार में मग्न रहे। पूर्णिमा की आंखों से टपटप आंसू गिर रहे थे। मधुसूदन ने उसे देखा, परन्तु कुछ समझ नहीं सका। चिट्ठी का अभिप्राय तो वह समझ गया था, परन्तु आंसुओं के अर्थ नहीं समझ पाया था। उसने बात को स्पष्ट करने के

लिये पूछा, "तुमने इनको मेरे भागने के विषय में लिखा था ?"

"मैंने नाम नहीं लिखा, न ही पूरा परिचय दिया था। साधारण रूप से बात लिखकर उनकी सम्मति मांगी थी। मेरा प्रश्न यह था कि अन्याय से बनाया गया बन्दी, जब अवसर मिले, भाग सकता है अथवा नहीं और एक सत्याग्रही उसे भागने में अथवा आश्रय देने में सहायता दे सकता है अथवा नहीं। उनका उत्तर यह है।"

"और तुम इस सम्मति को ठीक समझती हो ?"

"यह एक सत्याग्रह-आन्दोलन के नेता की सम्मति है और मैं उस आन्दोलन में एक साधारण सिपाही हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी स्वतन्त्र सम्मति स्वार्थ से लिप्त हो सकती है।"

"तो तुम क्या चाहती हो ?"

"मेरी कुछ समझ में नहीं आता। जो बात आपको मानयुक्त प्रतीत हो सो करें।"

मधुसूदन विचार-सागर में डूब गया। कितनी ही देर तक दोनों अपने २ मन के भावों में विलीन रहे। अन्त में मधुसूदन अपने स्थान से उठा और कमरे में इधर उधर टहलने लगा। अकस्मात वह खड़ा हो गया और बोला, "पूर्णिमा देवी, तुम कांग्रेस की अहिंसात्मक नीति में विश्वास रखती हो ?"

"तो क्या आप विश्वास नहीं रखते ? आप ही ने तो यह मार्ग मुझे दिखाया था।"

"छोड़ो मेरी बात। तुम बताओ कि अब क्या हिंसात्मक उपायों से विश्वास उठ गया है ?"

"हां, भारतवर्ष के लिये ही **नहीं, प्रत्युत** सारे संसार के लिये अहिंसा

"क्या सोचने के लिये समय चाहते हैं ?"

"मेरे लिये अब मानयुक्त मार्ग क्या है, यही तो तुमने पूछा है न ?"

जब मधुसूदन पूर्णिमा के कमरे से बाहर आया तो उसका रंग पीला पड़ गया था। उसकी आंखों की ज्योति क्षीण हो चुकी थी। हाथ कांप रहे थे। वह बरामदे में आ, कुर्सी की पीठ को पकड़, आश्रय ले खड़ा हो गया और सेठ साहब की ओर देखकर बोला, "आज कुछ तय नहीं हो सका। कल तक निर्णय हो जायगा।"

मां ने मधुसूदन के मुख का रंग देख किसी अनिष्ट की सम्भावना की। वह तुरन्त उठकर भीतर चली गयी। नरोत्तम मधुसूदन का हाथ पकड़कर बाहर ले गया। वहां पहुंच उसने पूछा, "दादा, क्या हुआ ? क्या तुम मुझे बता सकते हो ?"

मधुसूदन ने उत्तर दिया, "आज नहीं, कल।"

मां ने भीतर जाकर देखा पूर्णिमा विह्वल हो रो रही थी। उसने लड़की की पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा, "बेटी पूर्णिमा, क्या हुआ ? तुम इतना पढ़-लिख कर कैसी नादान बन रही हो। क्या मधुसूदन ने कोई अनुचित बात की है जिसको तुम भूल नहीं सकती ?"

पूर्णिमा खाट पर मुख ढांपकर लेट गयी।

नरोत्तम, मां और सेठ साहब किसी को भी यह समस्या समझ में नहीं आई। बहुत सोच विचार के पश्चात यही निश्चय हुआ कि अगले दिन तक प्रतीक्षा की जाय।

मधुसूदन नित्य प्रति के विपरीत आज शीघ्र ही पिता के साथ शहर में मकान पर चला गया। मार्ग में पिता ने पूछा, "बेटा, क्या विवाह तय हो गया है ?"

"पिता जी, नहीं। विवाह नहीं होगा।"

श्यामाचरण बहुत घबराया। पूछने लगा, "क्यों ?"

मधुसूदन ने आंखें सामने रखकर चलते हुए कहा, "आप नहीं चाहते थे न। अब वह नहीं चाहती।"

लिये पूछा, "तुमने इनको मेरे भागने के विषय में लिखा था ?"

"मैंने नाम नहीं लिखा, न ही पूरा परिचय दिया था। साधारण रूप से बात लिखकर उनकी सम्मति मांगी थी। मेरा प्रश्न यह था कि अन्याय से बनाया गया बन्दी, जब अवसर मिले, भाग सकता है अथवा नहीं और एक सत्याग्रही उसे भागने में अथवा आश्रय देने में सहायता दे सकता है अथवा नहीं। उनका उत्तर यह है।"

"और तुम इस सम्मति को ठीक समझती हो ?"

"यह एक सत्याग्रह-आन्दोलन के नेता की सम्मति है और मैं उस आन्दोलन में एक साधारण सिपाही हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी स्वतन्त्र सम्मति स्वार्थ से लिप्त हो सकती है।"

"तो तुम क्या चाहती हो ?"

"मेरी कुछ समझ में नहीं आता। जो बात आपको मानयुक्त प्रतीत हो सो करें।"

मधुसूदन विचार-सागर में डूब गया। कितनी ही देर तक दोनों अपने २ मन के भावों में विलीन रहे। अन्त में मधुसूदन अपने स्थान से उठा और कमरे में इधर उधर टहलने लगा। अकस्मात वह खड़ा हो गया और बोला, "पूर्णिमा देवी, तुम कांग्रेस की अहिंसात्मक नीति में विश्वास रखती हो ?"

"तो क्या आप विश्वास नहीं रखते ? आप ही ने तो यह मार्ग मुझे दिखाया था।"

"छोड़ो मेरी बात। तुम बताओ कि अब क्या हिंसात्मक उपायों से विश्वास उठ गया है ?"

"हां, भारतवर्ष के लिये ही नहीं, प्रत्युत सारे संसार के लिये अहिंसा का मार्ग ही एक मार्ग है।"

मधुसूदन अन्तिम आशा से भी विहीन होकर हाथ जोड़कर नमस्ते कह बोला, "मैं इसका उत्तर कल दूंगा। मैं सोचने के लिये समय चाहता हूँ।"

"क्या सोचने के लिये समय चाहते हैं ?"

"मेरे लिये अब मानयुक्त मार्ग क्या है, यही तो तुमने पूछा है न ?"

जब मधुसूदन पूर्णिमा के कमरे से बाहर आया तो उसका रंग पीला पड़ गया था। उसकी आंखों की ज्योति क्षीण हो चुकी थी। हाथ कांप रहे थे। वह बरामदे में आा, कुर्सी की पीठ को पकड़, आश्रय ले खड़ा हो गया और सेठ साहब की ओर देखकर बोला, "आज कुछ तय नहीं हो सका। कल तक निर्णय हो जायगा।"

मां ने मधुसूदन के मुख का रंग देख किसी अनिष्ट की सम्भावना की। वह तुरन्त उठकर भीतर चली गयी। नरोत्तम मधुसूदन का हाथ पकड़कर बाहर ले गया। वहां पहुंच उसने पूछा, "दादा, क्या हुआ ? क्या तुम मुझे बता सकते हो ?"

मधुसूदन ने उत्तर दिया, "आज नहीं, कल।"

मां ने भीतर जाकर देखा पूर्णिमा विह्वल हो रो रही थी। उसने लड़की की पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा, "बेटी पूर्णिमा, क्या हुआ ? तुम इतना पढ़-लिख कर कैसी नादान बन रही हो। क्या मधुसूदन ने कोई अनुचित बात की है जिसको तुम भूल नहीं सकती ?"

पूर्णिमा खाट पर मुख ढांपकर लेट गयी।

नरोत्तम, मां और सेठ साहब किसी को भी यह समस्या समझ में नहीं आई। बहुत सोच विचार के पश्चात यही निश्चय हुआ कि अगले दिन तक प्रतीक्षा की जाय।

मधुसूदन नित्य प्रति के विपरीत आज शीघ्र ही पिता के साथ शहर में मकान पर चला गया। मार्ग में पिता ने पूछा, "बेटा, क्या विवाह तय हो गया है ?"

"पिता जी, नहीं। विवाह नहीं होगा।"

श्यामाचरण बहुत घबराया। पूछने लगा, "क्यों ?"

मधुसूदन ने आंखें सामने रखकर चलते हुए कहा, "आप नहीं चाहते थे न। अब वह नहीं चाहती।"

श्यामाचरण ने केवल यह कहा, "भगवान की जैसी इच्छा।"

[ २ ]

दूसरे दिन पूर्णिमा कुछ सुस्त थी। बहुत दिन चढ़े तक खाट पर पड़ी रही। नरोत्तम ने उसे जाकर जगाया, "दीदी, दस बज रहे हैं। क्या स्नान इत्यादि नहीं होगा?"

"नहीं, आज स्नान को जी नहीं चाहता।"

"उठो। दवाई खा लो न।"

"उनकी कोई सूचना आई है या नहीं?"

"किन की? मधुसूदन की? नहीं अभी नहीं। कब आने को कह गया था?"

"आज।"

"तो आज तो अभी आरम्भ हुआ है। आजायगा। तुम तो अभी सोकर उठी नहीं, वह कहां उठा होगा?"

पूर्णिमा उठ खड़ी हुई। शौचादि से निवृत्त हो कमरे की खिड़की में जा बैठी। दूध आधा पी लिया। खाना आधा खा लिया। परन्तु दृष्टि खिड़की से बाहर सड़क पर लगी हुई थी। प्रतीक्षा करते करते दो बज गये, तीन बजे। यह डाक का समय था। डाकिया कोठी में डाक लेकर आया। सेठ साहब की चिट्ठियां थीं, नरोत्तम की दो चिट्ठियां थीं और एक पूर्णिमा की थी। नरोत्तम ने डाक ले ली थी। चिट्ठियां छांटते समय ही उसने देख लिया था कि उसकी चिट्ठियों में एक मधुसूदन की भेजी हुई थी। पूर्णिमा की चिट्ठी भी उसी की लिखी थी। उसने पूर्णिमा की चिट्ठी भीतर भेज दी और अपने नाम वाली पढ़ने लगा। लिखा था:—

प्रिय भैया नरोत्तम,

इस प्रकार की निकृष्ट सूचना देने के लिये मुझे स्वयं उपस्थित होने में लज्जा प्रतीत होती है। साथ ही अब समय कम रह गया है। गाड़ी छूटने में एक घण्टा है और पिता जी से अभी विदा लेनी है। मैंने कल कहा था कि आज उत्तर दूंगा। सो मेरा विचार वही है जो

पूर्णिमा का है। एक सच्चे सत्याग्रही को मुझ जैसे भगोड़े से विवाह तो दूर रहा उसे आश्रय देना भी उचित नहीं।

मैं क्या करूंगा, अभी नहीं बता सकता। मेरे मन में भारी संघर्ष चल रहा है। पुनः जेलखाने में चला जाऊं अथवा स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करूं। एक ओर महात्मा गांधी और पूर्णिमा का आदेश है, दूसरी ओर स्वतन्त्र रहने की प्रबल इच्छा। मैं क्या करूंगा निश्चय नहीं कर पाया।

एक बात निश्चित है कि अपना काला मुख अब आप लोगों को नहीं दिखाऊंगा। आप लोगों की सुहृदयता मैं जन्म भर नहीं भूल सकता।

माता जी को मेरी विनीत वन्दना देना। कभी कभी निकम्मे मधुसूदन को याद कर लिया करना। तुम्हारा "दादा"

नरोत्तम चिट्ठी पढ़ पूर्णिमा के पास गया। उसको यह पढ़कर कि 'मेरा विचार वही है जो पूर्णिमा का है,' क्रोध आरहा था। तो अब पूर्णिमा ने उसे ठुकरा दिया है। वह मन में सोच रहा था कि यह पगली लड़की अपने मन को न समझ कर अन्धों की भांति महात्मा गांधी के सिद्धान्तों का अनुसरण कर रही है। वह पूर्णिमा को डांटने गया था, परन्तु उसे आराम-कुर्सी पर आंखें मूंद वासना लगाये देख और उसकी आंखों से रक्त-विहीन गालों पर अश्रुओं की बूंदें टपकते देख ठहर गया। उसका क्रोध दया में बदल गया। वह चुपचाप बाहर चला आया।

सेठ साहब ने जब मधुसूदन की चिट्ठी पढ़ी तो आग-बबूला हो गये। बोले, "दुष्ट! पाजी! बिना सूचना दिये और मिले भाग गया है।"

नरोत्तम ने कहा, "क्या जाने अभी न गया हो?"

सेठ साहब फड़क उठे, जैसे बुझते दिये को तेल मिल जाय। कुर्सी से उठकर बोले, "चलो, चल कर देखें।"

दोनों श्यामाचरण के निवास-स्थान पर पहुंचे। नरोत्तम का अनुमान ठीक था। दूसरों को चिट्ठी लिख छुट्टी ले ली थी, परन्तु पिता से छुट्टी पाना आसान न था। जब वे वहां पहुंचे तो मधुसूदन पिता के पास बैठा

कुछ बतला रहा था। श्यामाचरण हाथ पर ठुड्डी रखे सुन रहा था।

सेठ साहब तथा नरोत्तम को आता देख मधुसूदन ने उठकर उनको सम्मान से बैठाया। कहने लगा, "मुझे बारह बजे की गाड़ी से चला जाना था, परन्तु पिता जी मेरे जाने की स्वीकृति नहीं देते। मैं इनके सम्मुख कभी झूठ नहीं बोला और न ही बोलना चाहता हूं। अतएव सब परिस्थिति स्पष्ट वर्णन कर दी है। इस पर आप कह रहे हैं कि यदि मैं चला गया तो आप आत्मघात कर लेंगे। इसी समझाने-बुझाने में गाड़ी छूट गयी है।"

इस पर सेठ साहब ने क्रोध में कहा, "मुझे तुम्हारी नालायकी पर क्रोध आरहा है। मै पूछता हूँ कि मुझे तुमने सब कुछ क्यों नहीं बताया? क्या मैंने जो कुछ तुम्हारे लिये किया है उसका यही फल होना चाहिये?"

मधुसूदन ने क्षमा मागते हुए कहा, "मेरी धारणा थी कि आपको सब कुछ ज्ञात है। क्या पूर्णिमा ने आपको नहीं बताया?"

"वह क्या बताती? वह तो तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में थी और अब उसको पूछने का अवसर ही कहां था।"

"तो क्या उसने आपको नहीं बताया कि मेरा जेल से भाग आना मेरे उसके विवाह में बाधक है?"

अब नरोत्तम ने उत्सुकता से पूछा, "किसने बाधा उठाई है?"

"हमारे सिद्धान्तों ने। मैं भ्रम में पड़ गया था और मोहवश जेल से भाग आया था। यह पूर्णिमा को भ्रम में नहीं डाल सका। उसकी बुद्धि निर्मल थी और सांसारिक मोह-ममता उसे अपने पथ से भ्रष्ट नहीं कर सकी।"

सेठ साहब ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "क्या बहकी २ बातें कर रहे हो? क्या तुम्हारा अभिप्राय यह है कि इस उदण्डता में तुम दोनों का हाथ है?"

"उदण्डता? उदण्डता कैसी? मैंने जानबूझ कर तो कोई ऐसी बात नहीं की। हां भूल यह है कि जेल से भाग आया हूं और पूर्णिमा

ने मुझे सुझा दिया है कि यह भूल थी। इस कारण मैं अपने आपको पुलिस के हवाले कर देना चाहता हूं।"

नरोत्तम यह सब सुन क्रोध से लाल हो गया। कहने लगा, "नहीं। हम तुमको ऐसा नहीं करने देंगे। हम तुम्हारे सिद्धान्तों को सत्य नहीं समझते।"

"परन्तु पूर्णिमा का सत्याग्रह-व्रत जो भंग होता है।"

"सत्याग्रह-व्रत? यह किस वेद में लिखा है?"

"महात्मा गांधी ऐसा कहते हैं। पूर्णिमा के मन में संशय था, इस कारण उसने महात्मा जी के एक लेफ्टिनेन्ट को पत्र लिखा और उसका उत्तर कल पूर्णिमा ने मुझे दिखाया था।"

"ठीक है। परन्तु महात्मा जी क्या तुम्हारे गुरु हैं? तुमने कब उनसे दीक्षा ली थी? पहले तो तुम महात्मा जी को हिन्दू सभ्यता का विरोधी मानते थे। अब क्या तुम उनकी अनुमति बिना उठ बैठ भी नहीं सकते?"

"मैंने दीक्षा ली है अथवा नहीं, यह विवादास्पद बात नहीं। मुख्य बात यह है कि पूर्णिमा वही ठीक समझती है जो महात्मा जी समझते हैं।"

नरोत्तम ने कुछ नरम होकर कहा, "देखो दादा, पूर्णिमा मेरी बहिन है सही, परन्तु तुम मेरे परम मित्र हो। मैं तुम्हें पूर्णिमा से विवाह के लिये कहने नहीं आया। मैं तो यह कह रहा हूँ कि तुम्हें अपने आपको पुलिस के हवाले नहीं कर देना चाहिये। यह अन्याय है, पाप है। संसार भर में कोई कानून नहीं जो तुम्हें कैद कर सके। केवल एक कानून है जो तुम्हें कैद कर सकता है। केवल एक कानून है और वह है शक्ति। शक्ति के आश्रय तुम बन्दी बनाये गये थे। यदि तुम्हारे पास भी शक्ति होती तो सरकार तुम्हें बन्दी न बना सकती।"

"और अब मेरे पास कहां का बल आगया है जो सरकार का मुकाबिला कर सकूं?"

नरोत्तम ने अपनी बात की पुष्टि करते हुए कहा, "तुम्हारे पास बुद्धि है, शारीरिक बल है, और इनका उचित प्रयोग करने से ही तुम कैदखाने

से छूट सके हो। तुमने सरकार को परास्त कर दिया है और जब तक तुम अपनी बुद्धि का उचित प्रयोग करते रहोगे तुम सरकार को परास्त करते रहोगे।"

"तुम मेरे जेल से भाग आने को बल बुद्धि के कारण समझते हो। यथार्थ में यह छल-कपट और कुटिलता है।"

"नहीं, यह नीति है। कोई राजनीति का अवलम्बन किये बिना स्थिर नहीं रह सकता। अतएव किसी भी राज्य को परास्त करने के लिये नीति का अवलम्बन करना ही होगा। जिसको तुम छल कहते हो उसे नीति-शास्त्र में चतुराई कहते हैं।"

"नरोत्तम भैया, चतुराई जब स्वार्थ-सिद्धि के लिये प्रयोग में लाई जावे तो उसे धोखा कहते हैं।"

"परन्तु जब स्वार्थ न्याय-युक्त और धर्मानुकूल हो तो उसकी सिद्धि परमावश्यक है। यदि तुम अपने न्याय-युक्त स्वतन्त्र रहने के अधिकार की रक्षा करने की इच्छा भी छोड़ देते हो तो तुम मनुष्यत्व से गिरकर भेड़-बकरी की भांति पशुपन स्वीकार करते हो।"

"ये युक्तियां पुराने संस्कारों का फल है। महात्मा गांधी की नीति इसके विपरीत है। उनका कहना है कि तुम अपने धर्म का पालन करो, तुम्हारे अधिकारों की रक्षा स्वयं हो जायगी।"

"और तुम्हारा धर्म यह है कि जेलखाने में जा बैठो।"

"परन्तु जेलखाने में मैं अपनी इच्छा से तो गया नहीं।"

"अब तो अपनी इच्छा से जा रहे हो।"

"और यदि पकड़ा गया तो?"

"यदि पकड़े गये तो वैसे ही जेल में चले जाना जैसे पहले चले गये थे। जो बात पहले हुई है फिर भी हो सकती है। हां, इतना अन्तर अवश्य है कि अब तुम सावधान हो, पहले नहीं थे।"

मधुसूदन निरुत्तर हो रहा था। उसने वही किया जो ऐसी परिस्थिति में पड़कर लोग करते हैं। वह झुँझला उठा और बोला, "भैया, तुम्हारी

बात मेरी समझ में नहीं आती। इसका कारण यह है कि जिस वातावरण में मैंने शिक्षा-दीक्षा पाई है वह उससे भिन्न है जिसमें तुम रहे हो। हिंसात्मक और अहिंसात्मक उपायों में से तुम एक को उचित समझते हो, मैं दूसरे को। हम दोनों का मार्ग पृथक पृथक है।"

अब सेठ साहब से, जो इतनी देर से यह वाक्-युद्ध देख रहे थे, न रहा गया। कहने लगे, "मधुसूदन, यह क्या अंनर्गल बात कर रहे हो? तुमने जेल से भागकर कौन सी हिंसा की है? तुम्हारी बातें विचित्र हैं। जेल से भागकर सरकार के अन्याय से भाग आये तो हिंसा हो गयी और दूसरी ओर पूर्णिमा ने एक अत्याचारी देश-द्रोही पुलिस-इन्सपैक्टर की जान बचाने में अपनी जान जोखम में डाल दी तो यह अहिंसा हो गयी। क्या तुम लोग हिंसा-अहिंसा के अर्थ भी नहीं समझ सकते? एक देश-हितैषी की जान ले लेना अहिंसा है और एक दुष्ट आतताई के पंजे से छूट जाना हिंसा है। तुमने तो तर्क-शास्त्र की भी मिट्टी पलीत कर दी है।"

मधुसूदन अब कुछ नहीं बोल सका। चुप हो रहा। सेठ साहब ने कुछ सांस लेकर कहना जारी रखा, "उठो, छोड़ो इन झगड़ों को। देखो, तुम्हारा अपने पिता के पास रहना ठीक नहीं। पिता को बिदा कर दो और तुम मेरे साथ कलकत्ते चलने के लिये तैयार हो जाओ।"

मधुसूदन अब भी चुप था और सेठ साहब को नाराज नहीं करना चाहता था। यद्यपि वह अभी तक इस बात से सहमत नहीं हुआ था कि महात्मा गांधी की सम्मति ठीक नहीं तो भी उसका मन नरोत्तम और सेठ साहब की युक्तियों से डांवाडोल अवश्य हो गया था। उसने बहुत धीमी आवाज़ में कहा, "आप कब चलेंगे?"

"आज रात की गाड़ी से।"

"मैं चलूंगा।"

"ठीक है।" कहकर सेठ साहब और नरोत्तम उठ खड़े हुए। श्यामाचरण से एक-दो मिनट तक सांत्वना की बातें कर कोठी की

ओर चल पड़े।

[ ३ ]

पूर्णिमा को फिर ज्वर आने लगा था। डाक्टर ने तपेदिक़ के रोग का निदान किया था। इसके लिये रांची का जलवायु कलकत्ते और बनारस से अच्छा माना जाता है। अतएव पूर्णिमा अभी वहीं थी।

वह अपने आपको सत्याग्रह की वीराङ्गना मानती थी अथवा मूर्ख, कहना कठिन है। उसे यह रोग निराशा से हुआ था अथवा किसी अन्य कारण से, इसमें भी मत-भेद है। पूर्णिमा को यह ज्ञात था कि मधुसूदन ने अपने आपको पुलिस के हवाले नहीं किया। इससे वह यह समझती थी कि हिंसा-अहिंसा के विषय में वह उससे सहमत नहीं है। इसी कारण उसने पुनः रांची आने से मना कर दिया होगा। वह जानता है कि यहां आकर वह इस घर में नहीं आ सकता, क्योंकि पूर्णिमा उसे जेल जाने की सम्मति देगी। वह सत्याग्रही होने से उसके जेल से भाग आने को पसन्द न करती है और न करेगी। पूर्णिमा अधिक कुछ सोच ही नहीं पाती थी। यथार्थ में सिद्धान्त और प्रेम में संघर्ष चल रहा था। कभी एक पलड़ा भारी हो जाता था और कभी दूसरा। वह अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच पाती थी।

नरोत्तम ने कई बार इस समस्या को उसके मन में स्पष्ट करने का यत्न किया, परन्तु उसे तो व्यक्तिगत स्वार्थ जाति के स्वार्थ से तुच्छ ही प्रतीत होता था। वह कह देती थी, "यह चर्चा व्यर्थ है। जो हो गया सो होगया। बार बार उस बात को दुहराने से दुख होता है।"

इस बात का कोई उत्तर नहीं था। एक बार मां ने यहां तक कह दिया, "एक पत्र उनको लिख दो न।"

"क्यों?"

"तुम बीमार हो, यह सूचना उनको जानी ही चाहिये।"

"तो मां, क्या वह नहीं जानते कि मैं बीमार हूँ?"

"जानते तो हैं, परन्तु आने से इन्कार करते हैं।"

"क्यों ?"

"यह तो तुम ही जान सकती हो। तुम लोगों ने जो झगड़ा किया है वह मेरी समझ में तो आता नहीं। मैं बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं, जो तुम्हें समझा सकती।"

इस पर पूर्णिमा चुप कर जाती थी। वह मन में कहती थी, "वह हठी हैं तो मैं भी अपने बाप की बेटी हूँ। मुझे ही क्या पड़ी है कि उनको पत्र लिखूँ ?"

इधर एक दिन नरोत्तम मधुसूदन के पास पहुंचा। वह कलकत्ते में सेठ साहब के पास रहता था और सिनेमा-कम्पनियों के लिये नाटक और संगीत-ध्वनि बनाया करता था। नरोत्तम ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा, "दादा, दीदी बहुत बीमार हैं।"

मधुसूदन को सेठ साहब के नाम पर आने वाली चिट्ठियों से यह ज्ञात होता रहता था। उसने पूछा, "क्या रोग है अब ?"

"डाक्टर तो तपेदिक बताते हैं। परन्तु मेरी राय में तुम यदि वहां चले चलो तो वह निश्चय ठीक हो जायगी।"

"नरोत्तम भैया, क्या उसे ज्ञात है कि मैं कलकत्ते में स्वतन्त्र घूम रहा हूँ ?"

"हां, वह यह जानती है।"

"तो उसके बीमार होने का कारण मैं समझता हूँ और इसका इलाज मैं कर दूंगा। आप लोगों ने मुझे जेल जाने से रोककर भारी भूल की है। वह यही समझती है कि मैं उसके मत को नहीं मानता और इस कारण मैंने उससे सम्बन्ध भी त्याग दिया है। यथार्थ में, मैं समझता हूं कि जब उसे यह ज्ञात होगा कि मैंने खुशी २ अपने आपको सरकार के हवाले कर दिया है तो वह प्रसन्न होगी और उसको विश्वास हो जायगा कि मेरा प्रेम उससे अभी भी वैसा ही है।"

नरोत्तम मधुसूदन की बात सुन चकित रह गया। उसने कई बार पूर्णिमा से यह जानने का यत्न किया था कि वह पुनः मधुसूदन को

मिलना चाहती है या नहीं और इसका उत्तर वह कुछ नहीं देती थी। नरोत्तम इस चुप रहने का कारण समझता था कि वह मधुसूदन को वापिस बुलाना चाहती है, परन्तु लज्जावश संकोच करती है। अब मधुसूदन से उक्त विवेचना सुनकर उसे सन्देह होने लगा था कि शायद ऐसा ही हो। वह चुप कर रहा और अपने विचार की परीक्षा करने का ढंग सोचने लगा।

दूसरी ओर मधुसूदन अब जेल जाने की चुपके २ तैयारी करने लगा। वह एक दिन चुपचाप घर से निकल कर अपने आपको पुलिस के हवाले कर देना चाहता था, परन्तु सुप्रिन्टेंडेन्ट बन्नाराम की सुहृदयता का स्मरण कर उसकी इच्छा यह हुई कि वह अपने आपको उसी के हवाले करे। वह सोचता था कि उसके भाग आने से जो बदनामी बन्नाराम की हुई है वह उसी के हाथ से पकड़े जाने से कुछ सीमा तक मिट जायगी।

अतएव मधुसूदन उसका पता लगाना चाहता था कि वह कहां है। उसी दिन जिस दिन नरोत्तम से यह बातचीत हुई थी मधुसूदन चौरंगी में एक ट्राम गाड़ी में से उतरा तो भीड़ में, जो ट्राम में चढ़ रही थी, बन्नाराम दिखाई दिया। मधुसूदन पहले तो घबराया, परन्तु इसे अपने विचारों की पूर्ति के लिये सुअवसर जान पुनः ट्राम में सवार हो गया और बन्नाराम की बगल में जा बैठा। बन्नाराम उसे देख पहचान गया और ट्राम चलने से पूर्व ही फिर नीचे उतर आया। मधुसूदन उसके साथ २ ही था। बन्नाराम ने उसे आंख से संकेत कर अपने साथ आने को कहा। वे दोनों एक रैस्टोरेंट में घुस गये। एकान्त में एक कोने में बैठ चाय के लिये कह बन्नाराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "तुम यहां कहां?"

मधुसूदन ने कहा, "जब से मधुसूदन मारा गया मैं कलकत्ते में रहता हूं और मेरा नाम गोपाल है।"

बन्नाराम ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा, "शाबाश जवान! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। सुनाओ, यहां क्या करते हो?"

मधुसूदन ने अपना काम बताकर कहा, "आपसे मिलने के लिये मैं सोच रहा था।"

"क्यों ? क्या तुमको मुझसे डर नहीं लगता ?"

"डर ? डर कैसा ?"

"मैं तुमको फिर जेल में डलवा सकता हूं।"

"मुझे जेल जाने से डर नहीं लगता।"

"यदि जेल से नहीं डरते तो भागे क्यों थे ?"

"यह एक लम्बा किस्सा है। आप कहां रहते हैं ? मैं आपसे नहीं मिलना चाहता था। तब आप मुझे पुनः जेल में डालकर अनुगृहीत करेंगे।"

"अनुगृहीत ? तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। खैर अब मुझे बहुत कम अवकाश है। मैं आज ही सायंकाल कलकत्ते से चला जाना चाहता हूँ। मैं सुल्तानपुर (अवध) जेल का सुप्रिन्टेंडेन्ट हूं। कभी आना हो तो आजाना, परन्तु गोपाल नाम से। मधुसूदन तो मर गया है। उसका मर जाना ही अच्छा था।"

[ ४ ]

नरोत्तम रांची पहुँचा तो पहले ही अवसर पर उसने पूर्णिमा के विचारों की टोह लेने का यत्न किया। पूर्णिमा दवाई खाकर आराम-कुर्सी पर बैठी थी। नरोत्तम समीप बैठा कलकत्ते का समाचार सुना रहा था। पहले वह मधुसूदन के विषय में कुछ नहीं बताया करता था। इस बार उसने सेठ साहब तथा अन्य मित्रों का वृत्तान्त सुनाकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया :—

"परन्तु दादा की अवस्था अति शोचनीय थी। वह प्रकट में तो प्रसन्न है परन्तु भीतर ही भीतर उसको घुन लगा प्रतीत होता है। मुख पर अब वह तेज नहीं जो पहले था। संगीत इत्यादि भी अब बन्द है। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी भारी निर्णय को करने वाला है। मैंने उसे एकान्त में पूछा भी था और उसका उत्तर यही था कि दो-चार दिन में सुन लोगे। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि वह अपने मन की बात बता दे। उसने मेरे विदा होने के समय मुझे कहा कि पूर्णिमा को मेरा

नमस्कार कहना। यह नमस्कार जिस भाव में कहा था वह मुझे पसन्द नहीं आया। परन्तु मेरे कुछ कहने से पूर्व ही वह वहां से चला गया। मैं गाड़ी में सवार हो चुका था और गाड़ी की सीटी बज चुकी थी।"

पूर्णिमा ने बहुत प्रयत्न से अपने भावों को दबाते हुए कहा, "तो तुम उन्हें अपने साथ क्यों नहीं ले आये?"

"तुम्हारे विचारों और इच्छा को न जानने से ऐसा साहस नहीं कर सका।"

"तो तुम लोग क्या यह समझते हो कि मैं उनसे नाराज हूँ?"

"तुम्हारे व्यवहार से तो यही प्रतीत होता था। और हां, वह कह रहा था कि जेल में मुझे कुछ भी कष्ट न था। आप लोग जेल से इतना घबराते क्यों हैं?"

पूर्णिमा के मुख से अकस्मात निकल गया, "उफ! ग़ज़ब हो गया। मैंने उसे कभी नहीं कहा कि उसे जेल जाना चाहिये। मैं स्त्री थी। मैं समझती थी कि मेरे विचारों में त्रुटि होने पर भी वह मेरे हाथ को दृढ़ता से पकड़कर मुझे मार्ग पर ले आवेगा। मुझे क्या प्रतीत था……"

वह एक गम्भीर विचार में पड़ गयी। फिर अकस्मात कुर्सी से उठ कर बोली, "भैया, एक काम करो। कलकत्ते तार दे दो कि सेठ साहब उनको साथ लेकर यहां एकदम चले आवें।"

"सेठ साहब? उनको अवकाश होगा?"

"हां, अवश्य आजायेंगे। शीघ्रता करो। विलम्ब न करो।"

नरोत्तम यह जानकर कि मुआमिला सुधर रहा है बहुत प्रसन्न हुआ। वह उसी समय तार-घर चला गया और वहां से एक उक्त विषय की तार सेठ साहब को दे दी।

सायंकाल तार का उत्तर कलकत्ते से आया। लिखा था, "गोपाल लापता है। उसकी खोज हो रही है। मैं आ रहा हूं।"

पूर्णिमा के लिये यह वज्राघात सिद्ध हुआ। दूसरे दिन नित्य प्रति के अनुसार जब नरोत्तम पूर्णिमा के कमरे में गया तो वह प्रातःकाल के

समाचार-पत्र पर सिर टेके पड़ी थी। नरोत्तम ने बुलाया। वह नहीं बोली। नरोत्तम जब समीप गया तो उसने देखा कि समाचार-पत्र रक्त से लथपथ हो रहा है। उसने घबराकर पूर्णिमा का सिर ऊपर उठाया तो देखा कि उसकी आंखों की पुतलियां घूम चुकी थीं। नरोत्तम ने नाड़ी देखी। वह नहीं मिली।

घर में हलचल मच गयी। नौकर डाक्टर को बुलाने गया। मां ने ठंडे पानी से मुख धोना आरम्भ कर दिया। नरोत्तम कभी बाहर, कभी भीतर बेचैनी से घूम रहा था। डाक्टर के आने के पूर्व पूर्णिमा का शरीर ठंडा हो चुका था। अकस्मात नरोत्तम के मन में एक विचार आया। वह भाग कर गया और समाचार-पत्र पढ़ने लगा। समाचार-पत्र का जो पृष्ठ खुला था उस पर लिखा था कि महात्मा गांधी रेग्युलेशन-बन्दियों को छुड़वाने में असफल रहे। नरोत्तम समझ गया कि इस समाचार ने उसकी रही-सही आशा भंग कर दी होगी और यही मृत्यु का तात्कालिक कारण हुआ है।

सेठ साहब जब पहुँचे तो पूर्णिमा की अर्थी तैयारी की जा रही थी।

[ ५ ]

उक्त घटना के दो दिन पश्चात की बात है। मधुसूदन प्रतापगढ़ स्टेशन पर सुल्तानपुर जाने की गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने समय बिताने के लिये 'दैनिक लीडर' खरीदा। उसे खोलते ही उसकी दृष्टि पूर्णिमा के देहांत के समाचार पर पड़ी। यद्यपि वह जानता था कि उसकी अवस्था सोचनीय है तो भी वह समझता था कि उसके जेल चले जाने से अवस्था सुधर जायगी।

मधुसूदन के लिये संसार सार-रहित प्रतीत होने लगा। वह प्लेटफार्म की एक बेंच पर बैठ गया और मन के वेग को रोकने लगा। उसे आत्मघात के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग ही प्रतीत नहीं होता था। वह समझ ही नहीं सका था कि यह हो क्या गया है। अभी एक वर्ष की भी बात नहीं थी कि वह अति प्रसन्न था। अपनी अवस्था से सन्तुष्ट था। भविष्य उसके लिये अत्यन्त सुहावना चित्र उपस्थित करता था और एक

अति सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित कन्या उसके प्रेम में सर्वस्व देने को तैयार थी। सब कुछ सरल, सुगम तथा सुलभ प्रतीत होता था। परन्तु वह बनारस गया और पासा पलटा। वह कैदी हो गया और संसार में अति प्रिय वस्तु को भी खो बैठा।

सुल्तानपुर की गाड़ी आई। वह मशीन की भांति बिना विचार किये अथवा इच्छा किये उठा और गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी चल पड़ी।

उसे किंचित भी होश नहीं था कि वह क्या कर रहा है और कहां जा रहा है। गाड़ी सुल्तानपुर स्टेशन पर पहुँची। वहां उतर कर स्टेशन से बाहर निकल आया और जेल की तरफ चल पड़ा।

बन्नाराम अपने बंगले में घास पर अपनी स्त्री कलावती के पास बेंत की कुर्सी पर बैठा था। कलावती का मुख फाटक की ओर था। वह मधुसूदन को भीतर आता देख पहिचान गयी। बन्नाराम उसे कलकत्ते में मधुसूदन से भेंट का वृत्तान्त सुना रहा था। उसे पहिचानते ही वह चौंक कर उठ खड़ी हुई और उसके मुख से निकल गया, "वह आगया है।'

बन्नाराम ने घूमकर फाटक की ओर देखा। वह भी उसे देख हैरान हुआ। उसने उसे मिलने के लिये कहा था अवश्य, परन्तु वह इस समय और इतनी जल्दी उसके आने की आशा नहीं करता था।

मधुसूदन समीप पहुँच हाथ जोड़ नमस्कार कर खड़ा हो गया। बन्नाराम ने एक कुर्सी और मंगवाई और उसे बैठाया। पश्चात प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

मधुसूदन आधे होश में था। वह मन में समझता था कि वह कुछ कहने और करने के लिये आया है, परन्तु जो कुछ उसके मन में था वह पूर्णिमा की मृत्यु का समाचार सुनकर उलट-पलट हो गया था। अब उसके मन में इतनी गड़बड़ थी कि वह समझ ही नहीं सकता था कि कहां से आरम्भ करे। वह चुप था।

कलावती ने समझा कि उसके कारण वह चुप है। अतएव वह उठ खड़ी हुई और वहां से हटने वाली थी कि बन्नाराम ने कहा "बैठी रहो।

तुम इनके विषय में बहुत पूछती रहती थीं न। लो अब पूछ लो।"

मधुसूदन को सम्बोधन कर बन्नाराम ने कहा, "मिस्टर गोपाल, यह मेरी धर्मपत्नी है। यह आपके विषय में बहुत दिलचस्पी लेती रही हैं। बताइये आपका आना कैसे हुआ ?"

मधुसूदन ने हाथ जोड़कर कलावती को प्रणाम किया और बहुत यत्न कर केवल इतना ही कह सका, "मैं जो कलकत्ते में कह रहा था।"

बन्नाराम ने कहा, "उस समय मैं जल्दी में था और आपकी बात समझ नहीं सका था। हां, तो अब बताइये कि आप क्या चाहते हैं ?"

मधुसूदन ने कहा, "मैं अपने आपको बन्दी करवाने आया हूँ। मैंने सोचा था कि आपके प्रबन्ध में भागा था और अब आपसे ही पकड़ा जाऊं तो ठीक रहेगा। मेरे भाग जाने से आपकी बदनामी हुई थी और मुझे पकड़ लेने से आपका नाम होगा।"

बन्नाराम यह बात सुन अवाक् रह गया। उससे कुछ उत्तर देते नहीं बना। उसने कभी ऐसी अनहोनी बात सुनी ही नहीं थी। भला कोई अपने आप भी बन्दी बनने आता है। वह चकित हो मधुसूदन का मुख देखता रह गया।

कलावती इतनी हैरान नहीं थी। उसने पूछा, "फिर बन्दी होने के लिये आना था तो भागे ही क्यों थे ?"

मधुसूदन के मस्तिष्क में एक आंधी चल रही थी। वह बातों का सिलसिला नहीं बांध सकता था। उसने उत्तर दिया, "वह मर गयी है।"

"कौन मर गयी है ?"

अब मधुसूदन की समझ में आया कि ये लोग तो उसकी बाबत कुछ नहीं जानते। वह भूल गया था कि उसने पूर्णिमा का किस्सा इन्हें नहीं बताया। बोला, "क्षमा करिये। आप नहीं जानतीं। वह मेरी भावी पत्नी थी। उसकी बीमारी का समाचार सुनकर मैं भागा था। अब वह मर गयी है और मेरे लिये बन्दी-गृह से बाहर कोई स्थान नहीं। वह स्थान संसार से दूर है और शायद मुझे सुख-शांति वहीं पर मिलेगी।"

बनाराम अब भी चुप था। कलावती ने फिर पूछा, "आपका अपराध क्या था जो पकड़े गये थे?"

"मेरा अपराध? मेरी समझ में तो कुछ नहीं था।"

"क्या आप क्रान्तिकारी अथवा विद्रोही नहीं हैं?"

"नहीं। मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया।"

"आपने किसी राजनीतिक संस्था अथवा आतंकवादी से सम्पर्क नहीं रखा क्या?"

"मैंने अपनी जानकारी में कोई ऐसी बात नहीं की।"

"आपने राजनीति पर शायद कभी व्याख्यान दिया होगा?"

"नहीं। मैंने कभी किसी भांति का व्याख्यान नहीं दिया।"

"ओह! तो आपके कहने का अभिप्राय यह है कि आप निरपराध पकड़े गये थे?"

"मैंने जो कुछ किया वह यह था—सेठ कुँजबिहारी इलाहाबाद के एक धनी आदमी हैं। उनको किसी ने एक पत्र भेजा कि पचास हज़ार रुपया क्रान्तिकारी दल के लिये निश्चित स्थान पर पहुंचा दिया जाय। सेठ साहब मेरे हितचिन्तक, पूज्य और बड़े हैं। उन्होंने मुझे यह सब बता दिया और साथ ही पुलिस में रिपोर्ट कर दी। जिस स्थान पर रुपया मांगा था वह मेरे एक मित्र के मित्र का था। मुझे विश्वास हो गया कि शायद मेरे मित्र अथवा उसके मित्र का यह काम है। इस कारण मैं अपने मित्र को सचेत करने बनारस गया जहां रुपया मांगा था। जब मैं अपने मित्र के घर पहुंचा तो वहां केवल उसकी बहिन और मां थीं। मित्र नहीं था। मैंने वहां पहुंचने का सब वृत्तान्त सुनाया। इस पर उन्होंने कहा कि यह चिट्ठी उनके मित्र के किसी शत्रु ने भेजी प्रतीत होती है। वह निश्चय से जानती थीं कि उनके मित्र ने कोई ऐसा पत्र नहीं लिखा। मुझसे यह सुनकर कि पुलिस उनके मित्र के मकान पर छापा डालना चाहती है वह मां और बेटी अपने मित्र को सचेत करने चली गईं। जब वे बहुत देर तक नहीं लौटीं, तो मैं वहां गया और पुलिस के फंदे

में फंस गया।

"यथार्थ में वह पत्र उनके मित्र के किसी शत्रु ने लिखा था। वह घर पर भी नहीं था। मैंने ज्योंही मकान में झांक कर देखा तो पकड़ा गया। जब पुलिस ने देखा कि मेरे विपरीत कोई अपराध सिद्ध नहीं हो सका तो मुझे रैग्युलेशन-बन्दी बना लिया गया।"

"और वह मां और बेटी?"

"वे दूर से ही पुलिस को देखकर वापिस आगई थीं और पकड़ी नहीं गयीं।"

यह कथा सुन बन्नाराम को क्रोध आगया और बोला, "तुमने भारी मूर्खता की। तुम औरतों के पीछे क्यों गये थे?"

"वह मेरे मित्र की बहिन और मेरी भावी पत्नी थी।"

कलावती ने फिर पूछा, "उसे क्या बीमारी थी?"

"जब मैं बन्दी था तो एक दिन पायोनियर में एक समाचार छपा था कि पूर्णिमा, यह उस लड़की का नाम था, एक पुलिस-अफसर को गोली का निशाना बनने से बचाती बचाती स्वयं घायल होगयी थी। उसकी अवस्था शोचनीय हो गयी तो मेरे मन में भाग निकलने की सूझी और मैं अपने प्रयत्न में सफल हुआ। जब मैं उसके पास पहुंचा तो उसकी अवस्था सुधरने लगी। वह स्वस्थ हो गयी। जब मेरा उससे विवाह लगभग निश्चित हो गया तो उसने कहा कि मेरा जेल से भाग आना सत्याग्रह सिद्धान्त के विपरीत है। वह पिछले सत्याग्रह-आन्दोलन में बहुत अग्रसर होकर भाग ले रही थी। यथार्थ में वह गोली से घायल भी उस समय हुई थी जब पुलिस के लोग उस पर और उसके सत्याग्रही साथियों पर लाठियां बरसा रहे थे; किसी नवयुवक को पुलिस की लाठियां चलाते देख क्रोध आगया और उसने एक पुलिस-अफसर पर गोली चला दी। पूर्णिमा ने समय पर देख लिया और उस पुलिस-अफसर के आगे खड़ी हो गयी। परिणाम यह हुआ कि वह घायल हो गयी थी।

"इस विषय में उसने सत्याग्रही नेताओं से भी सम्मति ली थी।

उनकी सम्मति यह थी कि मुझसे विवाह करना तो दूर रहा मुझसे सम्पर्क रखना भी उचित नहीं। मैंने यही समझा कि उसको प्रसन्न करने का सर्वोत्तम उपाय पुनः जेल में चला जाना है। परन्तु अब तो वह मर गयी है और मुझे अपने चित्त की शांति के लिये भी जेल ही एक स्थान प्रतीत होता है।"

'ओह!' कलावती ने तो केवल यही कहा। परन्तु बन्नाराम ने कहा, "तो यह कहना चाहिये कि तुम्हारी मुसीबतों की जड़ यह लड़की ही थी। उसी के कारण तुम पकड़े गये। उसी के लिये तुमने अपने जीवन की बाज़ी लगाकर वह जीवट का काम किया जो असम्भव ही था। तुम्हारे वहां से भाग आने का सुनकर सब चकित होते थे और अब उसी के आदेश से तुम पुनः जेल जाने को तैयार हो।"

कलावती ने स्त्री-सुलभ सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "उस बेचारी का क्या दोष है? यह तो मिथ्या विचारों का परिणाम है। क्या जाने उसने क्यों प्रियतम वस्तु पाकर भी त्याग दी? प्रतीत होता है कि बीमारी ने उसके मस्तिष्क को भी खराब कर दिया था।"

मधुसूदन ने पूर्णिमा की सफाई देते हुए कहा, "वह मुझे बहुत प्रेम करती थी। एक समय था कि मैं सर्वथा निर्धन, निस्सहाय और बेरोज़गार था। उस समय उसने मेरी पत्नी बनना स्वीकार कर लिया था। मैंने इन्कार किया था, कारण यह कि मैं गरीब था। परन्तु वह प्रतीक्षा करने पर तैयार होगयी थी। उसकी धारणा थी कि मैं अपने निर्वाह के लिये जब भी चाहूं पैदा कर सकता हूं। जब मैंने उसका विचार इतना दृढ़ देखा तो मैंने अपने कारोबार का प्रबन्ध सोचा। इसी बीच में मैं पकड़ा गया और वह अनिश्चित काल तक मेरी प्रतीक्षा करने पर तुल गयी।

"उसकी शोचनीय अवस्था का समाचार पढ़कर मैं जेल से भागा और मेरे भागने का समाचार पढ़ वह और भी बीमार हो गयी। मेरे [illegible] पूर्णतः स्वस्थ होगयी थी, परन्तु उसका मस्तिष्क [illegible] विचार का प्रभाव दिखाता था। [illegible] के प्रतिपादन

करने वालों ने लिखा है कि एक भागे हुए कैदी को आश्रय देना एक सत्याग्रही के लिये उचित नहीं। बस यही कारण था कि उसके मन की प्रबल इच्छा का मटियामेट उसके अपने हाथों से हुआ। मुझे उसने वापिस जेल जाने को कहा। मैं चला आया और वह स्वयं फिर बीमार होगयी। अब अन्त यह है कि वह तीन दिन हुए मर गयी है। मरने तक उसके प्रबल सिद्धान्तों का संघर्ष उसकी मन की इच्छाओं से होता रहा है और अन्त तक सिद्धान्त ही प्रबल रहे हैं।"

बन्नाराम ने सारी कथा सुनी और कठोर मुद्रा धारण कर कहा, "उस मूर्ख स्त्री ने अपना जीवन, सुख और शांति का नाश किया, तुम्हारे सुख और जीवन में विष घोल दिया और अब हमारे जीवन को भी खराब करना चाहती है। यह सब इस कारण कि कोई महात्मा अपने अधूरे ज्ञान के बल पर सांसारिक व्यक्तियों के साथ तजरुबे कर रहा है। किसी का कुछ भी अधिकार नहीं कि वह दूसरों के जीवन के साथ खेल खेले। वह खेल जो अभी केवल-मात्र खोज कही जा सकती है।

"भला यह बताओ कि जब तुम बिना अपराध पकड़े गये थे, तो वहां से निकल आना क्या उस हिंसा का विरोध नहीं जो तुम पर की गयी थी? फिर उस पर आपत्ति क्यों की गयी? चाहे कुछ भी हो। तुम लोग जो मन में आवे करो, परन्तु तुम लोगों की मूर्खता से मैं अपने को बरबाद नहीं होने दूंगा।"

मधुसूदन ने कुछ अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "आपकी बरबादी? यह कैसे? मैं तो यह समझता हूँ कि यदि आप मुझे पकड़ लेंगे तो अपने अफसरों से मान पायेंगे।"

बन्नाराम ने उत्तर दिया, "नहीं। तुम इन बातों को नहीं समझ सकते। पहले तो मेरे रिकार्ड में यह धब्बा लगा कि मेरे प्रबन्ध में एक कैदी भाग गया। अब यदि तुम जीवित पकड़े गये तो एक और धब्बा लगेगा। वह यह कि मैंने उस लाश को गलत पहिचाना जो तुम्हारी बताई गई थी। उस लाश को पहिचानने वालों में मैं मुख्य था। तो अब

तुम्हारा अभिप्राय यह है कि मैं अपने आप ही अपनी ग़लती की घोषणा कर दूं। मुझसे यह नहीं होगा और यदि तुमने फिर मधुसूदन बनने का यत्न किया तो तुम मेरी दया और उदारता के लिये मुझे दण्ड दोगे।

"देखो गोपाल, मुझे पहले दिन ही ज्ञात हो गया था कि तुम भाग कर जीवित निकल गये हो। मुझे यह भी विदित था कि वह मृत शरीर एक अहीर युवक का था। मैंने उसके बाप को पचास रुपया देकर वहां से भगा दिया था। यह इस कारण कि मैं तुम्हारे पुनः पकड़े जाने की सम्भावना को मिटा देना चाहता था। मैं और कलावती जब तुम जैसे सुशील, योग्य, और गुणी युवक को अपनी युवा अवस्था की घड़ियां जेल में व्यर्थ खोते देखते थे तो भगवान से प्रार्थना किया करते थे कि तुम्हें स्वतन्त्रता मिले और तुम अपना तथा संसार का भला कर सको।

"अब यदि तुम पकड़े गये तो मेरी सब आयोजना व्यर्थ जायगी।"

कलावती ने इस समय चाय के लिये कहला भेजा था। चाय आगयी। मधुसूदन बन्नाराम की बातें सुन सन्न रह गया था। वह यह नहीं समझ सका था कि उसके आत्म-समर्पण से किसी को हानि भी हो सकती है। वह गम्भीर विचार में पड़ गया। सब से विशेष बात उसके लिये कलावती की उससे सहानुभूति थी। वह इस नई परिस्थिति की उलझन में ऐसा व्यस्त था कि कलावती को कई बार कहना पड़ा 'चाय पी लीजिये। धैर्य धरिये।'

इसके पश्चात जब मधुसूदन को सुध आई, उसने खड़े होकर हाथ जोड़कर कहा, "क्षमा करें। मुझे इस बात का पता नहीं था कि आपने मेरे लिये इतना कुछ किया है। इस सब को जानने के पश्चात अब मेरा यह धर्म होगया है कि बिना आपकी अनुमति प्राप्त किये कोई ऐसी बात न करूं जिसमें मधुसूदन का उल्लेख उठ खड़ा हो। मैं अब गोपाल हूं। आपकी इच्छा है कि मैं यही रहूं। यथा शक्ति ऐसा ही होगा।"

[ ६ ]

म ठोकरों से दिमाग़ हिल गया था। वह आगे-

पीछे की कुछ भी बात सोच अथवा समझ नहीं सकता था। वह बन्नाराम से विदा हो वापिस पैदल चल पड़ा। 'अब क्या?' यह सोचता जाता था। इस सोच को वह अपने बनारस में पकड़े जाने से आरम्भ करता था और एक २ घटना का दृश्य उसकी दृष्टि के सम्मुख खिंच जाता था। कलावती और बन्नाराम के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ने उसके मन को कुछ शांति दी थी और इस स्थान तक सोच कर वह अपने मन से प्रश्न करता था 'अब क्या हो?' इस प्रश्न के उठते ही उसका मस्तिष्क भिन्ना उठता-था। उसकी विचार-धारा यहां आकर रुक जाती थी। यदि वह आगे की सोचने लगता तो उसके मन में अंट-संट विचार आते थे जिनमें न तो कोई क्रम होता था और न ध्येय।

लक्ष्यहीन वह चला जाता था। संज्ञाहीन, दिशा-भ्रम और निष्प्रयोजन चला जाना ही उसकी समझ में आता था। अब वह पथ-च्युत होगया और खेतों में चलने लगा। वह अनुभव करता था कि कई गांव मार्ग में आये हैं, परन्तु उसका मन उसे चलने के लिये ही कहता था। किंचित-मात्र भी ठहरने पर उसके मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती थी। वह फ़िर चल पड़ता था।

चलते २ रात होगयी, फिर दिन होगया, फिर रात होगयी। यह क्या? उसे थकावट ही नहीं हुई। मन में आया 'पेड़ के नीचे ठहर जाऊं।' फिर सोचने लगा, 'लक्ष्य तो मिला नहीं, ठहर कर क्या करूंगा?' फिर चलने लगा। न भूख, न प्यास सताती थी। उसे ऐसा [illegible] होता था कि उसे किसी निश्चित स्थान पर पहुंचना है और वह नि. [illegible] स्थान दूर परन्तु उसके सम्मुख है। वह नाक की सीध पर चलता चला जाता था। धीरे २ समय का ज्ञान लुप्त होगया।

कई दिन पश्चात लखनऊ में क़ैसरबाग के चौराहे पर एक पागल जिसकी डाढ़ी-मूंछ लम्बी २ हो गई थीं, कपड़े चिथड़े हो चुके थे, पांवों में अस्थिरता, आंखों में व्याकुलता, मुख पर झुर्रियां और विकराल बाल सिर पर थे, खड़ा था। छोटे २ लड़के उसे कंकर-पत्थर मार रहे थे।

कोई पीछे से आता था और उसकी लाठी घसीट लेता था। जब वह उस ओर देखता था तो दूसरी ओर कोई फटी धोती की लांग निकाल जाता था।